पर्वतीय राज्यों की राजनीति
में
भूटान

पर्वतीय राज्यों की राजनीति में भूटान

□

डॉ० आर. सी. मिश्रा
दक्षिण एशिया अध्ययन केन्द्र
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

1989

प्रकाशक :
राजस्थान प्रकाशन
त्रिपोलिया बाजार,
जयपुर–2

कम्पोजिंग :
जनरल कम्पोजिंग एजेन्सी
किशनपोल बाजार,
जयपुर–3

मुद्रक :
मॉडर्न प्रिण्टर्स,
गोधों का रास्ता
जयपुर–3

संस्करण :
प्रथम, 1989

मूल्य :
65.00

लेखक :
डॉ. आर० सी० मिश्रा

Parvatiya Rajyon Ki Rajniti, Mein Bhufan

परम पूज्य पिताश्री स्व० प्रोफेसर हुक्मचंद चतुर्वेदी को

सादर समर्पित

[जन्म 10 फरवरी 1910] [निधन 19 अप्रेल, 1988]

PROFESSOR R.P. AGARWAL
Msc. PhD (Lucknow), PhD (London), FNASC
VICE-CHANCELLOR

UNIVERSITY OF RAJASTHAN
JAIPUR-302 004

FOREWORD

I am glad that Dr. R. C. Mishra has written this book entitled. *Bhutan and the Himalayan Kingdom. I am sure, readers will find it useful in enriching their knowledge about the economic and political scene in the above region.

JULY 1, 1988

R. P. Agarwal

*Pervatiya Rajjyan Ki Rajanti, Main Bhutan

क्रम

प्रस्तावना

भूटान के किसी पक्ष पर लिखना एक दुर्लभ कार्य है। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में मुश्किल से भूटान पर कुछ प्रकाशित साहित्य मिल पाता है। जिन विशेषज्ञों ने भूटान पर लिखा है वह 1947 से पूर्व का साहित्य है। परन्तु 1947 के बाद का आज तक का साहित्य ढूंढ़ना निसन्देह एक मुश्किल प्रयास होता है।

जिन विद्वानों ने भूटान के समसामयिक पक्ष पर लिखा है चाहे राजनीतिक, आर्थिक या सामाजिक हो, वह सब व्यवस्था से बंधकर लिखा है। भूटान में पल रहा भारत के प्रति असंतोष शायद ही कभी भारतीय समाचार पत्रों व पत्रिकाओं में प्रकाशित होता हो। शोधकर्त्ताओं के समक्ष एक व्यावहारिक समस्या निरन्तर रहती है कि अमुक समस्या का विश्लेषण तथा समीक्षा किस स्तर से की जाय जिससे वह व्यवस्था की भाषा से दूर भी न हो तथा सत्य भाषण का निर्वाह भी हो जाय। यद्यपि दोनों का समानान्तर रूप से निर्वाह करना निश्चित रूप से मुश्किल कार्य हो जाता है। दो-तीन विद्वान लेखकों का यहां जिक्र करना जरूरी होगा जिनको भारतीय सरकार द्वारा उन्हे भूटान कुछ वर्ष रहने के लिए भेजा था। उन्होंने भूटान के आर्थिक सामाजिक तथा राजनीतिक पक्ष पर पुस्तकें प्रकाशित की परन्तु जिस पक्ष की पाठकों को निरन्तर तलाश रही उसका पूर्णतया अभाव मिला। कहने का अर्थ है कि तीनों लेखकों ने भूटान के कमजोर पक्ष का कोई जिक्र नहीं किया। चूंकि तीनों लेखक व्यवस्था के अंग थे इसलिये उन्हें केवल व्यवस्था की भाषा का ही प्रयोग करना था। एक प्रश्न उठता है कि क्या शोधकर्त्ता भी व्यवस्था का अंग बन-चुका है जिसे स्पष्ट बात लिखने में हिचकिचाहट होती है। इसका उत्तर भी 'हां' में उभर कर आता है। शोधकर्त्ता के एक कैरियर का सवाल है। उसे भी व्यवस्था के अभिन्न अंग रहकर आगे बढ़ना है। व्यक्तिगत आकांक्षाएं तथा व्यवस्था से सम्भावित मिलने वाले लाभों ने शोधकर्त्ता को मुक्त नहीं होने दिया है। सो फिर शोध के क्षेत्र में उतरने वाले समस्त शोधकर्त्ता शोध तो कर रहे हैं लेकिन बात वही कर रहे हैं, जो व्यवस्था चाहती है। वैसे शोध की प्रक्रिया अत्यधिक सभी बंधनों से मुक्त मानी गई है परन्तु व्यक्ति की बाहरी सीमाएं उसे इस

तरीके से बांध देती हैं जिनसे सामान्य व्यक्ति को छुटकारा पाना बहुत मुश्किल है। भूटान में जाकर जो कुछ मैंने देखा है उसका प्रकाशित साहित्य से संबंध टूटता सा अनुभव करता हूँ। मेरी भी सीमाएं हैं जिनसे मैं बंधा हुआ हूँ।

हिमालयी क्षेत्रों की अपनी-अपनी समस्याएं हैं। पर्वतीय क्षेत्र तथा उत्तर-पूर्वी सीमा से जुड़े पर्वतीय प्रदेश नेपाल-भूटान की आन्तरिक समस्याओं को बढ़ाने में निरन्तर सहायक रहे हैं। नेपाल में भारतीय नेपाली तथा उद्योग-पति वहाँ की आर्थिक व्यवस्था के संजोने में व्यवधान बने हुए हैं, भूटान में नेपाली समस्या उत्तरोत्तर जोर पकड़ती जा रही है। भूटान में ये वे नेपाली लोग हैं जिन्होंने भूटान में जनतांत्रिक आन्दोलन 1950 से 53 तक जारी रखा था। उन्होंने भूटान स्टेट कांग्रेस दल का गठन भी किया जिस पर बाद में भूटान नरेश ने प्रतिबन्ध लगा दिया जो आज भी लागू है। प्रतिबन्ध लगाना एक बात है परन्तु असंतोष तथा आन्तरिक विद्रोह को आज भी शान्त नहीं कर पाये हैं। जो चीज निरन्तर व्याप्त है वह है असंतोष तथा राजतंत्रीय व्यवस्था के प्रति आक्रोष। वर्षों से पल रहा असंतोष तथा आक्रोष निश्चित ही किसी दिन उनके सपने को साकार करेगा। जनतांत्रिक आन्दोलन यदि खुले रूप में नहीं आ पाया है तो प्रच्छन्न रूप से पूरी तरह मौजूद है। अनुकूल अवसर की तलाश स्वयं में इस तथ्य को उजागर करती है कि नेपाली लोग भूटान में जनतांत्रिक व्यवस्था को स्थापित करने के लिए सतत् प्रयत्नशील हैं। यह कैसे कह दिया जाय कि भूटान में सब कुछ ठीक है। नेपाली लोगों को किसी भी माध्यम से दबाया जा सकता है। उनके असंतोष तथा आक्रोष को पत्र-पत्रिकाओं, में छपने से रोक सकते हैं लेकिन यदि ज्वाला निरन्तर धधक रही है तो वह किसी क्षण अपना विकराल रूप अवश्य धारण करेगी।

भूटान की राजतंत्रीय व्यवस्था के अन्दर ही दरार पैदा हो रही है। इससे सम्बन्धित एक घटना तो बहुचर्चित है जब 1964 में भूटान के शाही परिवार के एक महत्वपूर्ण व्यक्ति तथा प्रधानमन्त्री जिगमे दोरजी की हत्या कर दी गई जिसके परिणामस्वरूप समस्त 'दोरजी' परिवार के सदस्यों को देश निकाला दे दिया था तथा 'प्रधानमन्त्री' के पद को समाप्त कर दिया गया था। 1964 की उक्त महत्त्वपूर्ण घटना के बाद कुछ वर्ष शान्ति रही लेकिन दो शाही परिवार–'दोरजी व वांगचुक' के बीच आन्तरिक वैमनस्यता समाप्त नहीं हो पाई। यही कारण है कि भूटान आज भी इस आन्तरिक संघर्ष से पीड़ित है। आर्थिक विकास तथा आधुनीकरण के हो जाने से भूटान में एक नये प्रकार का समाज उभर कर आ रहा है जिसका लगाव पाश्चात्य सभ्यता की ओर बढ़ रहा है।

प्रस्तुत कृति पिछले एक दशक का परिणाम है। हिमालयी क्षेत्रों में जाने का दो तीन बार अवसर मिला और उसका उपयोग करने का भी प्रयत्न निरन्तर जारी रहा। यह कृति आंशिक रूप से अपने स्वतंत्र चिंतन या समझ का परिणाम है। किसी भी शोधकार्य में उससे जुड़ी हुई उसकी शोध पद्धति बहुत महत्वपूर्ण होती है। कभी-कभी शोध प्रक्रिया में एक द्वन्द्व उठ खड़ा होता है वह यह कि किस स्रोत पर अपनी विश्वसनीयता निर्भर रखें—लिखित साहित्य पर या जो स्वयं की आखें देख रही हैं। हिमालयी क्षेत्र के विशेषज्ञ Leo Rose ने अपनी पुस्तक में स्पष्ट लिखा है कि, "At times unpublished part of literature becomes more important and relevent than the published documents." इस वाक्य में भाव यही है कि शोधकार्य की प्रक्रिया में यदि स्वंय के नेत्रों में तटस्थ भाव रखने की ताकत है और उनमें अतिरिक्त भावना को दबाने की क्षमता है तो वह दृष्टि लिखित व प्रकाशित साहित्य से ज्यादा विश्वसनीयता रखेगी। आज के शोध कार्यों में आम तौर से यह कहा जाता है कि अमुक लेखक ने यह मार्क्सवादी विचारधारा को साथ में रखकर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं या अमुक लेखक के विचार दक्षिणपंथी हैं। कहने का अर्थ है कि यदि शोधकार्य की प्रक्रिया में एक विशेष प्रकार की विचारधारा की भूमिका महत्वपूर्ण होगी तो उस बौद्धिक कृति में तटस्थ दृष्टि का अभाव हुए बिना नही रहेगा। यदि समस्त तथाकथित विचारधाराओं का अनुकूल तथा परिस्थिति के अनुसार प्रयोग होगा तो शोधकार्य में निश्चित सन्तुलित दृष्टि होगी। यह सब कुछ मुझे इसलिये लिखना पड़ा कि जो कुछ भी मैंने अपने नेत्रो से हिमालयी क्षेत्रों की राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति देखी है उसके ठीक विपरीत प्रकाशित साहित्य में पढ़ने को मिला है। मेरी आपत्ति सबसे पहले उस शोध पद्धति पर है जिसे लगभग गणितीय बना दिया गया है। शोध पद्धति में Quesaionaire या Inteirviews की पद्धति का जो व्यावहारिक स्वरूप अपनाया गया है वह अत्यधिक यांत्रिक हो गया है। दोनों ही पद्धति में यान्त्रिकता आ जाने के कारण उसके परिणामों में भी विश्वसनीयता घटती जा रही है। एक और अतिरिक्त विशेषता का होना आवश्यक है वह यह कि शोध कार्य के प्रति शोधकर्त्ता का दृष्टिकोण। यदि शोधकर्त्ता का दृष्टिकोण 'शोध समस्या' के प्रति उदासीन है या भारयुक्त है या उससे जल्दी से जल्दी मुक्त होने का भाव है ऐसी स्थिति में औपचारिक दृष्टि से तो उस कार्य को मान्यता मिल जायेगी लेकिन गुणात्मक पक्ष खोखला ही रह जायेगा।

भूटान दो बार गया। भूटान से लगी हुई सीमा जलपायगुड़ी, नई जलपायगुड़ी, सिलीगुड़ी, दार्जिलिंग तथा कलिमपोंग है और दूसरी ओर सिक्किम है। सिक्किम भी औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों ही दृष्टि से हो आया हूँ। भूटान पर प्रकाशित साहित्य ने मेरी देखी हुई आंखों को झुठला सा दिया है। भारत-भूटान के संबंध कैसे हैं? भारत की हिमालयी नीति क्या रही है? भूटान तथा अन्य पर्वतीय क्षेत्रों में आपसी संबंध कैसे हैं? क्या समस्त पर्वतीय क्षेत्र प्रतिस्पर्धा में जी रहे हैं या उनमें एकता की झलक है? समस्त पर्वतीय क्षेत्रों का भारत के बारे में क्या सोचना है? क्या भारत की हिमालयी नीति में कोई एकरूपता थी या उस नीति में आक्रामक या उप-निवेशवाद की गंध निरन्तर रही? क्या पर्वतीय क्षेत्रों में बढ़ता हुआ असंतोष एक यथार्थ है या उनमें मांगों की पूर्ति करवाने की नाटकीय शैली है? ये कुछ प्रश्न हैं जिनके उत्तर देने का पुस्तक में प्रयास किया गया है।

लेखक कोई निर्णयात्मक दावा नहीं करता कि उसकी दृष्टि में पूर्ण तटस्थ भाव रहा है परन्तु तटस्थ भाव को निरन्तर रखने का प्रयास अवश्य किया है।

लेखक का यह मानना है कि भारत की भूमिका पर्वतीय क्षेत्रों में हमेशा महत्वपूर्ण रहेगी तथा समस्त पर्वतीय क्षेत्र चाहे वह नेपाल हो या भूटान सिक्किम—एकता के सूत्र में नहीं बंध पायेंगे और आपस में निरन्तर प्रतिस्पर्धा का भाव रहेगा। पारस्परिक प्रतिस्पर्धा ही उनकी एकता के भाव को तोड़ती रहेगी जिससे भारत पर दबाव कम होगा।

प्रस्तुत कृति में घड़ी-घड़ी यान्त्रिक रूप से 'फुटनोट' लगाने की शैली को प्रोत्साहन नहीं मिला है। मेरी शैली अपनी समझ से हटकर है उसकी समीक्षा या आलोचना को स्वीकार करने का पहले से ही मानस है।

पुस्तक का प्रत्येक अध्याय अपनी अपनी स्वतंत्र समस्या का विश्लेषण करता हुआ समग्र क्षेत्रीय घटनाओं से अवश्य जोड़ता है। उत्तरा अंचल की समस्या भिन्न प्रकार की होते हुए एक मूल प्रश्न में अवश्य जोड़ती है कि पूर्वांचल के समस्त राज्यों के बीच पारस्परिक सीमा विवाद एक स्थायी यथार्थ होने के कारण औपचारिक पूर्वांचल लोक परिषद उसे एकता के सूत्र में बांध नहीं पायेंगे। पारस्परिक विवाद निरन्तर है उसका लाभ केन्द्र को मिलता रहेगा। इसी प्रकार GNLF की मांग में दिखने वाली एकता में दरार स्पष्ट दिखाई देने लगी है। एकता के नाम पर मंच बनाना तथा मंच पर ऊंचे स्वर में बोलने से एकता नहीं होती। एकता का साकार रूप पार-

स्परिक हितों के त्याग से होता है, झपटने से नही। आज दक्षिण एशिया के समस्त राष्ट्रों में विरोधी पक्ष क्यों कमजोर दिखाई देता है? कारण स्पष्ट हैं। एक दल में अंत:विवाद तथा विरोध इतने घर कर गये हैं कि उनमें सही रूप से एकता नही आ सकती जिसके परिणामस्वरूप सत्तापक्ष को उससे और भी बल मिलता है। यही स्थिति भारत में भी है। किसी भी विरोधी दल को लीजिये। चाहे वह जनता पार्टी हो या लोकदल (अ या ब)। चाहे तेलगूदेशम हो या ADMK। व्यक्ति अधिक महत्वपूर्ण है, संस्था नही। चरणसिंह के चले जाने मात्र से ही संस्था टूट गई। रामचन्द्रन के निधन के तुरन्त बाद ADMK का हाल जो दिखाई दिया, उसका जिक्र करने की कोई आवश्यकता नही। जनतापार्टी मे चंद्रशेखर या हेगडे ही महत्वपूर्ण है। पाकिस्तान में विरोधी पक्ष की अत्यधिक दुर्बल पक्ष ने सैनिक व्यवस्था को और मजबूत किया है। बांगलादेश में जनरल इरशाद चुनाव कराने के बाद भी मन में यही भाव लिए हुए हैं कि विरोधी पक्ष में यदि पारस्परिक दरार नही होती तो क्या वे चुनाव में सफल हो पाते? नेपाल भूटान में यद्यपि राजतंत्रीय व्यवस्था होते हुए भी आंशिक रूप से जनतान्त्रिक व्यवस्था का आवरण है। दोनों ही पर्वतीय राष्ट्रों मे विरोधी पक्ष सक्षम न होने के कारण राजतंत्रीय व्यवस्था को कम चुनौती है। श्रीलंका भी इसी रोग से पीड़ित है। वास्तविक दृष्टि से तो उस समय श्रीलंका में समस्या पैदा होगी जब तथाकथित 70% सिंघली समुदाय की एकता मे पहले से ही अंत:विवाद खुले रूप मे आयेगा पाकिस्तान तथा बांगलादेश के बारे में भी यह संभावना व्यक्त की जा रही हैं कि दोनो ही राष्ट्रों में सैनिक शासन तभी समाप्त होगा जब सैनिक प्रशासन के सत्ता पक्ष में अंत:विरोध अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचेगा।

उक्त सैद्धान्तिक पक्ष के आधार पर पुस्तक में एक तर्क प्रस्तुत करने का प्रयास है कि समस्त पर्वतीय क्षेत्रों मे पारस्परिक विवाद पहले से ही मौजूद होने के कारण भारत पर किसी भी मंच से दबाव तो डाल सकते हैं लेकिन दवाव डालने की क्षमता में वृद्धि नही कर सकते। भूटान ने 1980 के बाद से अपनी स्वय की पहिचान का निर्माण किया है। अपनी विदेश नीति में भी सामान्य स्वरूप से हटकर परिवर्तन प्रस्तुत किये है। भूटान के अन्तराष्ट्रीय व्यवहार को देखकर यह लगने लगा है कि वह भारत के प्रति अपना दृष्टिकोण बदल रहा है। साथ में विशेषज्ञों का यह भी कहना है कि भूटान ने नेपाल के रवैये को अपनाया है और नेपाल व भूटान एक मिलकर भारत पर किसी भी रूप मे दबाव को बढ़ा सकते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय मंचो पर वोट

के माध्यम से या अपनी अभिव्यक्तियों के जरिये उनमें तथाकथित एकता दिखाई दे लेकिन यथार्थ दृष्टि से उनमें निकटता आना संभव नहीं। नेपाल भूटान के बीच पारस्परिक स्पर्धा का भाव उन्हें निकट नहीं आने देगा।

जब गोरखालैंड की समस्या 1979 से शुरु हुई तो यह कहा जाता था कि पर्वतीय क्षेत्रों के सभी नेपाली समुदाय एकजुट कर नारा बुलंद करेंगे अपनी मांग की पूर्ति करवाने में सफल होंगे। लेकिन बाद में वह तथाकथित एकता धीरे धीरे टूटती गई और आज सुभाष घीसिंग अपने ही समुदाय में अकेले पड़ गये।

प्रस्तुत कृति पूर्ण है या अपूर्ण, सार्थक है या निरर्थक, उपयोगी है या अनुपयोगी इस सब का निर्णय विषय से सम्बन्धित विद्वानों पर छोड़ रहा हूँ। जैसा समझ में आया उसको ज्यों का त्यों रख दिया है। हिन्दी भाषा को सरल तथा प्रचलित या बोलचाल की शैली में ही लिखने का प्रयास किया है। कहीं कहीं अंग्रेजी के शब्द भी बीच बीच में आ गये हैं वह एक सहज अभिव्यक्ति का सूचक है।

जिन लोगों का सहारा मिला, उनको बिना औपचारिकता अपनाये अपनी कृतज्ञता व्यक्त करना एक कर्तव्य समझता हूँ। सबसे पहले जिस संस्था से मैं जुड़ा हुआ हूँ वह मेरे लिए महत्वपूर्ण है। दक्षिण एशिया अध्ययन केन्द्र से मैं 1975 से जुड़ा हुआ हूँ जिसमें रहकर बौद्धिक कार्य निरन्तर करने का अवसर मिला। यह वह शोध संस्थान है जिसमें निरन्तर दक्षिण एशिया से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार विमर्श होते रहते हैं जिनको सुनकर हर जिज्ञासी अपने आपको शिक्षित हो सकता है। मैं समस्त रिसर्च स्टाफ के सदस्यों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिनके सम्पर्क से ज्ञानवर्धन का अवसर मिल सका। मैं संस्थान के पूर्व निदेशक प्रोफेसर इकबाल नारायण तथा वर्तमान निदेशक प्रोफेसर रमाकान्त के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने मुझे दो बार भूटान तथा सिक्किम के लिए फील्ड ट्रिप करने का मौका दिया। परिवार एक ऐसी संस्था है जिससे व्यक्ति पहले सीखना प्रारम्भ करता है। परिवार का अर्थ है माता पिता जिनके सानिध्य में सभी अच्छी बातें सीखने को मिलती हैं। आज जब समाज की गति भोगवाद तथा सुखदवाद की ओर तेजी से बढ़ रही है तथा पढ़ने का लिखने का रुझान या दृष्टिकोण बौद्धिक क्षेत्रों से ही लोप होता जा रहा है उस स्थिति में भी यदि कुछ पढ़ने लिखने की रुचि शेष है उसे मैं परिवार के संस्कार की देन समझता हूँ। परिवार में

माता-पिता के अतिरिक्त कुछ एसे सदस्य हैं जिनसे मेरा निरन्तर विमर्श होता रहा है चाहे विषय सामाजिक हो या राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय। निरन्तर विचार विमर्श करने की प्रक्रिया ने मुझे अधिक शिक्षित किया है। इसके लिए डॉ. सुरेश मिश्रा (भाई) अध्यक्ष इतिहास विभाग राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर डॉ. आर. एन. चतुर्वेदी, डा. उमेश चतुर्वेदी (रीडर–इतिहास विभाग–राजस्थान वि. वि. जयपुर) डा. आर. एस मिश्रा (इतिहास विभाग–राज. वि. वि. जयपुर) के योगदान महत्वपूर्ण हैं।

भावनात्मक दृष्टि से निरन्तर जीवट बनाये रखने के प्रयास में मेरे सबसे छोटे चाचाजी श्री धर्मगोपाल चतुर्वेदी (एडवोकेट) भरतपुर के प्रति ऋणी हूँ जिनके सहज तथा सरल व्यवहार से एक अलौकिक प्रेरणा मिलती रही है।

लेखक डा० आर. के. वशिष्ठ (वरिष्ठ प्राध्यापक फैकल्टी ऑफ फाइन आर्टस) राज. वि. वि. जयपुर) के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने बार-बार आग्रह कर हिन्दी पांडुलिपि को उचित प्रकाशक तक पहुँचाने में मदद की।

—आर. सी. एम.

भारत और पर्वतीय राज्य

(नेपाल–भूटान–सिक्किम)

अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर दो राष्ट्रों के संबंधों का विश्लेषण कई स्तरों पर करने के बाद ही निकटतम सही तस्वीर सामने आती है। लौकिक दृष्टि से जिन संबंधों की चर्चा होती है उनको किन्ही मापदंडों को आधार रख कर पारस्परिक संबंध अच्छे-बुरे या ठीक-ठीक घोषित कर दिये जाते है। पर अकेले लौकिक दृष्टिकोण कभी-कभी पर्याप्त नही होते। उससे हट कर एक अलग दृष्टि की आवश्यकता होती है जिसका प्रयोग कम ही किया जाता है। अच्छे या बुरे संबंध का निर्णय केवल निश्चित मापदंडों के आधार पर नहीं हो सकता। यदि दार्शनिक दृष्टिकोण भी हमेशा लौकिक दृष्टिकोण के साथ चले तो निर्णय एक दम सही न हो परन्तु निकटतम सही बैठ सकता है तथा संबंधों की भावी प्रवृत्ति के बारे में पता लगता है। जो प्रत्यक्ष नही है और कई वर्षो तक उसके बारे में मालूम भी न हो लेकिन भविष्य मे उस अदृष्ट प्रवृत्ति के बारे में सोच भी लिया जाय तो वह दार्शनिक दृष्टिकोण की परिधि में आ जाता है।

1947 से आज तक यह कहते आ रहे हैं कि भारत के साथ भूटान के संबंध अच्छे हैं और मधुर हैं तथा भारत ने भूटान के विकास मे पर्याप्त मदद दी है. और ऐसा भी लगता है क्योंकि ऐसे कोई लिखित या मौलिक अभिव्यक्ति सामने नही आई जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि भूटान के भारत के साथ कटु संबंध है या अच्छे नहीं हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय संबंध के क्षेत्र मे कुछ निश्चित मापदंडों ने संबंधों की व्याख्या कुछ इस-प्रकार की है जिससे एक दूसरे से संबध अच्छे और बुरे सुनाई पड़ते हैं। वास्तविक स्थिति यह है कि क्षमा मे अच्छे या क्षमा में

सामान्य होना कोई ऐसी दृष्टि प्रदान नहीं करता जो दो राष्ट्रों की परिपक्वता जाहिर कर सके। यह ठीक है कि मित्रता या दुश्मनी स्थायी नही होती—राष्ट्रीय हित स्थायी होते हैं। यदि राष्ट्रीय हित भी समय के अनुसार घड़ी-घड़ी बदलते रहे तो एक स्थायी आधार भी निर्णय करने का डगमगा जाता है। जब कोई देश राष्ट्रीय हितो को निरन्तर इस प्रकार से प्रस्तुत करता रहे जो संबंधो को सामान्य बनाने का प्रयास हमेशा संकट मे पड जाय—वह स्थिति अधिक शोभनीय नही होती।

आज आतंकवाद-हिंसा, युद्ध का और छुट-पुट दौर तथा पारस्परिक भय-संदेह की भावना का होना किस चीज के परिचायक हैं। छोटे स्तर से लेकर बडे स्तर तक एक भूख सब जगह व्याप्त है—वह यह कि हर देश की अन्तर्राष्ट्रीय आकाक्षाएँ जरूरत से ज्यादा बढ़ गई हैं। छोटे से छोटा देश भी उन आर्थिक तथा राजनीतिक आकांक्षाओं की पूर्ति में लगा है जिसके फलस्वरूप स्वयं के देश मे न राजनीतिक स्थायित्व है और न आर्थिक विकास। सभी विकासशील देश अपनी आतरिक अशान्ति तथा तनाव से पीड़ित तो पहले से ही है और दूसरी ओर अन्य देशो से भी मन मुटाव-द्वेष तथा संघर्ष को निमन्त्रण दे तो उस देश का दुहरा दुर्भाग्य है। यह बात केवल उन विकासशील देशों के बारे मे कही जा रही है जो अपने देश का एक ओर आर्थिक विकास चाहते हैं और दूसरी ओर अशान्ति के लिये उन मार्गों को अपना रहे है जिसमे आने वाले दिन युद्ध के लिये स्वयमेव खीच ले जायेंगे। यदि दक्षिण एशिया के देशो की गणना करें तो पाकिस्तान, श्रीलंका, बांगला देश प्रमुख सामने आते है। तीनों ही देशो मे राजनीतिक स्थिरता नही कही जा सकती। अपने देश मे अशान्ति के कारण आर्थिक विकास रुका हुआ लगता है लेकिन विदेश नीति का ऐसा स्वरूप प्रस्तुत कर रखा है जो राष्ट्रीय हित के प्रतिकूल लगता है।

भूटान एक ऐसा पर्वतीय राज्य है जिसको भौगोलिक परिस्थितियो के कारण निरन्तर संघर्ष करना पडा। 1947 से पूर्व अंग्रेजों की नीति भूटान के प्रति इस प्रकार की रही जिसमे चीन को भूटान पर प्रभाव बढ़ाने से रोकना और अपने प्रभाव को निरन्तर बढाना। 1910 की संधि यह स्पष्ट करती है कि अंग्रेजों की नीति चीन के प्रभाव को बढने से रोकने की रही है। 1910 की संधि ने पहली बार भूटान के अन्तर्राष्ट्रीय दर्जे को अर्ध सार्वभौमिक राज्य के रूप में बदल दिया। 8वी धारा भूटान के दर्जे को पहले से कम करता है। लेकिन जब स्वतंत्र भारत के साथ संधि की

बात आई तो भूटान के प्रशासकों का आग्रह रहा कि भूटान को किसी भी प्रकार से संधि से न बांधा जाय। लेकिन संयोग और परिस्थितियां पुनः इस प्रकार की बढ़ी जिसके अन्तर्गत 1949 की संधि में धारा दो का जुड़ जाना उसके सार्वभौमिक सत्ता को झकझोरने वाला था। 1949 की संधि को अन्तिम रूप देने मे 2½ वर्ष लगे लेकिन भूटान अपनी इच्छा की पूर्ति न कर पाया जो उसे भारत सरकार से अपेक्षा की। इतिहास की महत्वपूर्ण घटना यही थी विशेष कर भूटान के प्रशासकों के लिये। भूटान सरकार नहीं चाहती थी कि संधि में किसी प्रकार से धारा 2 को जोड़ा जाय। किसी स्वतंत्र राष्ट्र पर किसी भी माध्यम से प्रतिबन्ध लगाना, चाहे उसकी औपचारिकता का अर्थ कुछ भी लिया जाय, एक प्रकार से उपनिवेषवाद की गंध आती है। यह बात दूसरी है कि भारत का राष्ट्रीय हित इसमें क्या था? भूटान एक छोटा, गरीब, आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा तथा शान्ति प्रिय देश के साथ एक बड़े देश का व्यवहार क्या होना चाहिये इसको कहने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन एक दृष्टिकोण यह अवश्य उभर कर आता है कि भूटान तब से भारत के प्रति दृष्टिकोण तथा मत क्या बना होगा- यह किसी से छुपा भी नहीं है। यदि भूटान को पूर्ण स्वतंत्र छोड़ दिया जाता तो भारतीय कूटनीतिज्ञ भारत सरकार की आलोचना करते और राष्ट्रवाद की दुहाई देते। यह कैसी विडम्बना है कि एक राष्ट्र की दृष्टि से वह ठीक है लेकिन दूसरे राष्ट्र की दृष्टि से वही बात एक दम गलत मानी जाती है। भारत-भूटान संबंधो का विश्लेषण भी इसी परिधि के अन्तर्गत कर सकते है। 1949 से भूटान का भारत के प्रति अनुकूल दृष्टिकोण न रखना अच्छे संबंधों का परिचायक नही है। किसी देश की मजबूरी का लाभ लेना किसी भी मापदंड से सही नहीं है। ऐसा ही कुछ भूटान के साथ घटित हुआ। भूटान ने दबी जबान से हमेशा संधि के बारे में आलोचना की है और भारत की नीति को शोभनीय नही माना। इस प्रकार की स्थिति को किन शब्दों में स्वीकार किया जाय और कैसे भारत-भूटान के अच्छे संबंधों को आत्मसात किया जाय। यह माना कि भारत सरकार ने तब से आज तक संधि के माध्यम से प्रतिबन्ध की कीमत कितनी चुका दी होगी यह बात भी किसी से छुपी नही। लेकिन तथ्य तो यह स्पष्ट करता है कि बड़े देश ने छोटे देश की मजबूरियों का लाभ लिया। एक कूटनीतिज्ञ दृष्टिकोण से परीक्षण करें तो सभी यही कहेंगे कि भारतीय राष्ट्रीय हितों को देखते हुए जो कुछ हुआ ठीक हुआ। इन सब के होते हुए भी क्या भूटान का दृष्टिकोण बदल पायेगा—एक प्रश्न चिन्ह है।

भारत की पर्वतीय राज्यों के प्रति नीति : एक पक्ष

वैसे तो विद्वानों ने भारत की पर्वतीय राज्यों के प्रति नीति के बारे में कई मत व्यक्त किये हैं लेकिन उनमें कुछ महत्त्वपूर्ण मतों को प्रस्तुत करना और उसका सही विश्लेषण की प्रक्रिया स्वयं में एक सार्थक कार्य है। एक दृष्टिकोण जो सामने आया है वह भारत विरोधी तो है लेकिन उसके पक्ष मे तर्क कुछ प्रासंगिक है तो उन्हें ग्रहण अवश्य करना चाहिये। इस दृष्टिकोण के अनुसार भारत जो बाहरी देश के तीन सौ वर्ष अधीन रहा उसने उपनिवेषवाद की नीति को विभिन्न पर्वतीय राज्यो के साथ संधियों को दुहरा कर उस आधिपत्य की भावना को क्यो और कैसे संतुष्ट किया? भारत की नीति सैद्धान्तिक दृष्टि से कुछ भी और कैसी भी नैतिकता युक्त है लेकिन उसका व्यावहारिक पक्ष अंग्रेजों की नीति से समतुल्य माना जा सकता है। आवरण मे आधिपत्य रहा आये यह भारत की नीति का अंग रहा है। नैपाल, भूटान तथा सिक्किम के साथ अलग-अलग संधियो की प्रकृति तथा स्वरूप इस तर्क की पुष्टि करते हैं कि भारत की प्रछन्न आकाक्षा वही बनी रही जिसके 1947 से पूर्व हम आलोचक थे। भारत की स्वयं अन्तर्राष्ट्रीय छवि एक मध्यम शक्ति के रूप मे उभरी यद्यपि भारत के सामने आन्तरिक तथा बाध्य दिक्कतें हमेशा बनी रही। भारत के स्वयं के राष्ट्रीय हितों के कारण पर्वतीय नीति मे कोई परिवर्तन नही आ पाया। भारत का सर्वोपरि राष्ट्रीय हित स्वयं की सुरक्षा। तीनों पर्वतीय राज्यो से भौगोलिक दृष्टि से जुड़ा हुआ चीन ही महत्त्वपूर्ण तत्व रहा जिसके कारण अंग्रेजों की नीति को लगभग ज्यो का त्यों अपना लिया गया। यह प्रश्न भूटान के दृष्टिकोण या अन्य पर्वतीय राज्यों के दृष्टिकोण से अभी भी बना हुआ है कि भारत जैसा जनतान्त्रिक देश जिसने बड़े संघर्ष के साथ विदेशी शासकों से स्वतंत्रता प्राप्त की—उसने वैसा व्यवहार करना क्यो उचित समझा जो कोई उपनिवेष भावना से कोई देश करता है। यहा यह प्रश्न आकर ठहर जाता है और उसका उत्तर मिलना कठिन भी है। दो देश के राष्ट्रीय हितों के बीच टकराहट हो तो एक सीधा हल निकलना तो मुश्किल है। यह बात दूसरी है कि सामान्य संबंधों को रखने के लिये अन्य विकल्प की तलाश हो। 1947 से और आज तक प्रमुख राष्ट्रीय हित में भारत-भूटान के बीच टकराहट रही है। संधि 1949 की धारा दो भूटान के लिये उस समय भी आपत्तिजनक थी जब संधि पर हस्ताक्षर किये थे और आज भी। ज्यों-ज्यों भूटान अपनी अन्तर्राष्ट्रीय आकांक्षाओं की पूर्ति उत्तरोत्तर कर

रहा है उसी गति से धारा दो उनके लिये अखरने वाली है। पर्वतीय राज्यों को मजबूरन उसी व्यवहार को अपनाना पड़ा जो भारत के उद्देश्य तथा आकांक्षाओं की पूर्ति करने वाले थे। भारत की सन्नहित कमजोरियां दो प्रकार से सामने आईं। एक तो पर्वतीय नीति में विषमताएँ थी और दूसरी चीन से निरन्तर शंका तथा भय। पर्वतीय राज्यों के लिये मुख्य देश भारत ही रह गया जिनके साथ अलग-अलग संधियां की और उन शर्तो से बंध गये जो उसमें उल्लेख है। नेपाल–भूटान–सिक्किम तीनों ही अपने-अपने तरीके से भारत के साथ नियंत्रित हो गये जो उनकी मजबूरी थी लेकिन स्वेच्छा नही। यदि न्यायसंगत होकर और तटस्थ होकर भारत के किसी नागरिक या सरकारी अधिकारी वर्ग से यह पूछा जाय कि जो कुछ पर्वतीय राज्यों के साथ राजनीतिक समझौते हुए (जिनको संधियों की संज्ञा दी गई है) वे क्या न्याय युक्त थे। तो शायद उत्तर यही मिलेगा कि विभिन्न राज्यो की तत्कालीन परिस्थिति की विवशता का अनुचित लाभ लिया गया। यह बात दूसरी है कि अन्तर्राष्ट्रीय संबधों के सैद्धान्तिक व व्यावहारिक पक्ष भारत की ओर ही झुक जायेंगे क्योकि राजनीति में नैतिकता की संज्ञा राष्ट्रीय हित है। लेकिन यह पक्ष या दृष्टिकोण समस्त पर्वतीय राज्यों की ओर से है और आज जो नेपाल व भूटान का उठता हुआ असंतोष व निराशा जो भारत के प्रति शुरू हुई है उसी का परिणाम है। नेपाल के साथ 1950 मे की गई संधि का व्यावहारिक पक्ष इतनी लंबी अवधि के बाद जो उभर कर आया है वह यह कि आर्थिक क्षेत्र मे नेपाल भारत के व्यापारियो के हाथों मे नियंत्रित है। भारत से पहुँचे बुर्जुआ वर्ग वहां के स्थानीय बुर्जुआओं पर हावी हैं और उनको स्वतंत्र रूप से पनपने का अवसर प्रदान नही कर पा रहे हैं। गोरखालैंड की समस्या भी आर्थिक कारणो से उत्पन्न हुई है।

1949 या 1980 की संधियों के बाद से भारत का नेपाल या भूटान पर आधिपत्य या नियंत्रण चतुराई पूर्ण नीतियों के कारण बढा है। जब कभी भी नेपाल ने अपनी सीमा के अतिरिक्त स्वतंत्रता को उभारने का प्रयत्न किया है तो भारत सरकार अपने राष्ट्रीय हितो की परिधि के अन्तर्गत, ने उस पर नियंत्रण किया है।

दक्षिण एशिया में भारत का वर्चस्व कम न हो इस दिशा में निरन्तर प्रयास किया है। इस तथ्य से मुंह नही मोड़ सकते कि भारत ने दक्षिण एशिया क्षेत्र के अतिरिक्त अपनी अन्तर्राष्ट्रीय आकांक्षाओं की पूर्ति करने

का भरसक प्रयत्न किया है। भारत की स्वयं की इच्छा रही है कि विश्व उसे एक शक्ति के रूप में पहिचाने या मान्यता दे। इस आकांक्षा की पूर्ति पहली बार उस समय हुई जब भारत-पाक युद्ध (1965) के समझौते के लिये ताशकंद वार्ता हुई और रूस ने भारत की शक्ति को स्वीकार किया। उसके बाद अमरीका ने भारत के प्रभाव तथा प्रभावी भूमिका को राष्ट्रपति कार्टर ने मान्यता दी।

यह कहना कि भारत की पर्वतीय नीति में एकरूपता थी—इस कथन में सत्यता नहीं है, वरन भारत की नीति को 'टुकड़ों' की संज्ञा दी जाय तो अधिक ठीक होगा। भारत की प्रारम्भ से नीति का स्वरूप इस प्रकार का रहा जिसके अन्तर्गत समस्त हिमालयी राज्य अलग-अलग तरीके से भारत की ओर निर्भरता भरी निगाहों से देखते रहे। इसके पीछे एकमात्र यही इच्छा तथा उद्देश्य रहा है कि भारत के अतिरिक्त कोई और बड़ा देश उक्त पर्वतीय राज्यों पर प्रभाव रखने की नियत से आगे न बढ़े। अलग-अलग तरीके से सम्पर्क रखने की नीति ने पर्वतीय राज्यों के बीच एक संगठित दृष्टिकोण को उभरने के लिये कोई अवसर ही नहीं छोड़ा। भूटान-नेपाल के दर्जे को प्राप्त करने की शिकायत करता रहा और सिक्किम की शिकायत भूटान के दर्जे को प्राप्त करने की रही। सिक्किम का भारत में विलय भी निसंदेह इसी कारण हुआ। यह बात दूसरी है कि परिस्थितियां कैसी थी और राष्ट्रवाद का दृष्टिकोण क्या था है। उक्त नीति के आधार पर भारत पर्वतीय राज्यों पर येन-केन-प्रकारेण अपना प्रभाव रखता रहा। भारत की सुरक्षा के परिधि में पर्वतीय नीति चलती रही।

पृष्ठभूमि—भारत की पर्वतीय नीति को समझने के लिये इतिहास के कुछ पन्नों पर नजर डालनी होगी। विशेष रूप से अंग्रेजों की एक पैनी दृष्टि का भी विश्लेषण करना आवश्यक है। 18वीं शताब्दी से नैपाल, भूटान तथा सिक्किम ने बफर स्टेट की भूमिका अदा की है। बफर की स्थिति कुल मिलाकर अधिक शोचनीय होती है। दो देशों के बीच फंसे पर्वतीय राज्यों का मनोवैज्ञानिक भय तथा शंका का हो जाना भी कोई आश्चर्य नहीं। नैपाल की 'शान्ति का क्षेत्र' मांग में अंशतः औचित्य है और भूटान की निरन्तर माँग यही है कि 1949 की संधि में उचित संशोधन किया जाय। सिक्किम ने तो अपनी माग का आग्रह कर परिणाम भुगत लिया है। जो हो गया उसकी चर्चा करना ही व्यर्थ है लेकिन मांग के रखने का परिणाम

सिक्किम के विरुद्ध गया। यहाँ प्रश्न इतना ही है कि अंग्रेजों के द्वारा अलग-अलग की गई संधियों को 1947 के बाद भारत ने उन प्रावधानों को ज्यों का ज्यों रखना क्यों उचित समझा ? कम से कम पर्वतीय राज्यों का दृष्टिकोण निसंदेह भारत के दृष्टिकोण से एकदम विपरीत है।

राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान अंग्रेजो ने भारत मे एक तीसरी शक्ति के निर्माण करने का प्रयास किया। भारतीय राजनीति में तीसरी शक्ति के निर्माण का विचार केवल इसलिए था जिससे राष्ट्रीय आन्दोलन सफलता की मंजिल को प्राप्त न कर सके। भारत मे अंग्रेजों द्वारा Princly States का प्रावधान एक तीसरी शक्ति ही थी जिससे रियासती सभी नरेश अंग्रेजों को समर्थन देते रहें और आन्दोलन में बिखराव आ जाय। इसका परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस पार्टी के अन्दर एक आक्रमक तपका उभर कर आया जिसका मत था कि 'Native States' में एक क्रान्तिकारी कार्यवाही हो जिससे आन्दोलन एकता के सूत्र मे बंधा रहे। लोकप्रिय राष्ट्रवादी विचारधारा, जो कि कानूनी बारीकियों से तनिक भी भिन्न नही थे, यही थी कि 'भूटान, नेपाल, काश्मीर तथा सिक्किम' सभी Native States है जिनको भारत में सम्मिलित करना अनुचित नहीं होगा। राष्ट्रवादी विचार-धारा एक विशाल भारत के निर्माण की बात सोचने लगा जो अफगानिस्तान से वर्मा तथा हिमालय से कन्याकुमारी की समस्त भूमिखंड भारत मे मिला ली जाय। इस प्रकार के विभिन्न मत सामने आते रहे और वह दिन भी आया जब भारत 1947 मे स्वतंत्र हुआ।

स्वतंत्रता के तुरन्त बाद भारत सरकार ने पर्वतीय राज्यो से समझौता लगभग उसी प्रकार का किया जो अंग्रेजो ने किया था। विभिन्न सधियो का स्वरूप वही रहा और एक बार फिर से तीनों पर्वतीय राज्य भारत से किसी न किसी प्रकार प्रतिबन्धित हो गये। जब भारत स्वतंत्र हुआ और अंग्रेजी शासक भारतीयो के हाथों मे बागडोर थमा रहे थे। उस समय पर्वतीय राज्यों का भविष्य भी उसमें सन्नहित था। उस समय नेपाल, भूटान तथा सिक्किम के प्रशासकों ने अपनी सार्वभौमिकता को सुदृढ़ रखने की मांग की और अपने दर्जों को कायम रखने के लिये बाहरी देशों से संरक्षणता लेने की भी चेतावनी दी। नेपाल व भूटान दोनों देशों ने इससे सम्बन्धित मसले को लेकर चीन से भी संपर्क किया। नेपालने अपने अस्तित्व को उभारने के उद्देश्य से अमेरिका से कूटनीतिक संबन्ध स्थापित कर लिये। 1947 में पहली एशियायी सम्मेलन नई दिल्ली में हुआ। नेहरूजी ने नेपाल व भूटान

दोनो को ग्राम सम्मेलन मे शामिल होने के लिये ग्रामन्त्रित किया था। दोन
ने ही इस ग्रवसर का लाम उठाने के उद्देश्य से विदेशी शिष्टमंडल ह
सपर्क किये ग्रौर उनसे ग्रपनी समस्या को सामने रखा परन्तु इस प्रकार
की चर्चाग्रो को कोई लाम न मिल सका।

भारत की पर्वतीय राज्यों के प्रति नीति का निरन्तर एक ही
दृष्टिकोण सर्वोपरि रहा कि विरासत मे लिया गया प्रभुत्व समाप्त नहीं
करना है। ठीक इसके विपरीत, नैपाल व भूटान का सतत यही प्रयत्न रहा
कि ग्रपने ग्रस्तित्व को ग्रन्तर्राष्ट्रीय दर्जा हासिल करना है। इस ग्रभियान मे
सिक्किम शामिल नही हो पाया। जब उसने प्रयास किया तो परिणाम
सामने ग्रा गया (1974 मे सिक्किम का भारत में विलय)।

भारत की नीति भी यही रही कि पर्वतीय राज्यों पर ग्रपना प्रभुत्व
कम नही करना है। यद्यपि दूसरी ग्रोर से प्रयासो को विफल करने के
प्रयत्न बराबर जारी रहे। ग्रपनी सार्वभौमिक स्वतन्त्रता को ग्रन्तर्राष्ट्रीय
क्षेत्र मे उभारने के प्रयासो मे धीरे-धीरे सफलता की झलक मिलने लगी
विशेष रूप से 1960 के बाद जब भारत-चीन के संबंध कटु होते होते युद्ध
मे परिवर्तित हो गया। 1962 के युद्ध के दौरान तीनो पर्वतीय राज्यो
ने भारत की कमजोरी का ग्रधिकतम लाभ लेने का प्रयास किया। उन
क्षणो मे साफ जाहिर होने लगा कि भारत का प्रभाव पर्वतीय राज्यों पर
धीरे-धीरे कम हो रहा है।

ग्राम तौर से कहा जाता रहा है कि पर्वतीय राज्यो ने 1962 के
चीन के साथ युद्ध के दौरान ग्रधिकतम लाम भारत से लेने की कोशिश की
ग्रौर कोशिश मे कामयाब भी रहे। ऐसा भी कहा जाता है कि चीन की
सहायता से भी भारत ने परिस्थितियो के दबाव मे पर्वतीय राज्यो को
विवशता मे रियायतें दी है। लेकिन कभी ऐसा भी हुग्रा है कि बिना बाहरी
सहायता लिये नैपाल-भूटान को ग्रपने ग्रन्तर्राष्ट्रीय ग्रस्तित्व को ग्रागे लाने
मे जब तब सफलता मिली है। पर्वतीय राज्यो को ग्रपने ग्रस्तित्व की पूर्ण
सुरक्षा के कभी-कभी विभिन्न चतुराइयां या रास्तो को ग्रपनाना पड़ा है।
उनमे से एक रास्ता तो यह रहा है कि वे ग्रन्य देशो से कूटनीतिक संबंध
स्थापित करें या बाहरी देशो से ग्रार्थिक सहायता प्राप्त करना या कुछ
महत्त्वपूर्ण ग्रवसरो (यानी राज्याभिषेक) पर बड़ी शक्तियों के सामने कुछ
इस प्रकार का ग्रायोजन करना जिसमे उनका ग्रलग ही व्यक्तित्व झलके ग्रादि
या ग्रपने देश की ग्रलग से टिकिट जारी करना ग्रपने देश का वक्त भारत

के समय से ½ घंटा आगे पीछे कर देना अथवा भारतीय माल को प्रोत्साहन न देकर दूसरे देशों के माल का आयात करना। उक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि पर्वतीय राज्यों ने 1962 के बाद से इस प्रकार की तरकीबें निकाली जिससे उनका दबा हुआ व्यक्तित्व ऊपर उठ कर आये। नेपाल ने 1948 में संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता के लिये प्रार्थना की थी और वास्तविक रूप से सदस्यता 1955 में मिली। भूटान को सदस्यता 1971 में मिली, जबकि विश्वसनीय स्रोतों से यह जानकारी दी गई कि 1966 में ही तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने गुप्त रूप से वायदा कर लिया था। भूटान ने एक के बाद एक ऐसे कदम उठाये जो उसकी अन्तर्राष्ट्रीय आकांक्षाओं की पूर्ति करने वाला था। भूटान कोलंबो योजना का सदस्य बना, अन्तर्राष्ट्रीय डाक संघ का सदस्य बना तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय परिषदों का भी सदस्य बना। यहा तक कि सिक्किम भी नेपाल-भूटान का अनुकरण करने मे नही चूका यद्यपि उसका दर्जा उन दोनों से कही नीचा था। 1966 में सिक्किम ने अमरीका के प्रोत्साहन पर (श्रीमती गांधी का आरोप था) World Crafts Council के सम्मेलन में शामिल हुआ। भारत की आशाऐं पर्वतीय राज्यो से यही रही हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय मचों पर वे उसकी हां में हा मिलाता रहें। लेकिन आज के संदर्भ मे यह कहा जा सकता है कि भारत की उक्त अपेक्षाओ का लगातार उल्लघन हो रहा है। कई बार नेपाल-भूटान ने संयुक्तराष्ट्र सघ मे भारत के साथ समर्थन नही दिया है। उदाहरण के लिये—पर्वतीय राज्यों के अधिकारों के मसले, दक्षिण एशिया को आणविक स्वतत्र क्षेत्र का मुद्दा था, कपूचिया या अफगानिस्तान। इन मुद्दों पर नेपाल-भूटान ने भारत का विरोध किया है।

चूंकि तीनों पर्वतीय राज्यों की राजनीतिक व्यवस्था राजतत्रीय थी इसलिये तीनों में पारस्परिक एकता का हो जाना भी स्वाभाविक था तथा बाहरी विदेशी तत्वो के संपर्क मे आने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय छवि तथा अस्तित्व के उभरने में अंशत: सहायता मिलती रही है। उदाहरण के लिये भूटान में अंग्रेजी डाक्टर्स, अध्यापक, कार्यकर्ता तथा फिल्म अभिनेताओं तथा सिक्किम मे अमरीकी महिला होपकुक के होने से पर्वतीय राज्यों में विदेशियो के आवागमन की सख्या बढ गई थी। सिक्किम ने तो संयुक्त राष्ट्र सघ की सदस्यता के लिये बार-बार आवाज भी उठाई थी। यह बात दूसरी है कि अन्तिम परिणाम क्या हुआ?

राज्याभिषेक के अवसरों ने विदेशी लोगो से सपर्क बढ़ने मे अधिक

मदद दी है। 1956 में नेपाल के राजा महेन्द्र का राज्याभिषेक हुआ। इस अवसर का लाभ उठाते हुए चीन के साथ नेपाल की एक संधि हुई और नेपाल को अन्तर्राष्ट्रीय अस्तित्व में एक विशेष दर्जा दिखाई दिया। 1965 में सिक्किम के राजा का राज्याभिषेक हुआ और अपने स्तर को ऊँचा उठाने के उद्देश्य से राज्याभिषेक के समय अपना राष्ट्रीय गीत (National Anthim) विदेशियों को सुनवा दिया जो कि संधि के अनुसार गलत था। 1974 में भूटान के वर्तमान राजा का राज्याभिषेक हुआ और इस अवसर का लाभ उठाते हुए राजा ने प्रदर्शन के लिये विदेशी मेहमानों की उपस्थिति में वे सब काम किये जो उसके अन्तर्राष्ट्रीय दर्जे को ऊंचा करते हैं। राज्याभिषेक के उत्सव पर केवल चीन, रूस, अमरीका, भारत को शामिल होने की इजाजत दी गई थी। 1975 में राजा वीरेन्द्र के अभिषेक के समय नेपाल के अन्तर्राष्ट्रीय अस्तित्व को और अधिक उभारने के उद्देश्य से 'नेपाल को शान्तिक्षेत्र' की घोषणा की गई। कहने का अर्थ यही है कि पर्वतीय राज्यों को संधियों के माध्यम से भारत सरकार ने अवश्य प्रतिबंधित किया लेकिन उनकी दबी हुई आकांक्षाओं ने रह रह कर यह अहसास कराया कि उनको किन्हीं परिस्थितियों के अन्तर्गत नियंत्रित कर सकते हैं लेकिन ऐसी स्थिति हमेशा के लिये स्वीकार नहीं है।

1955 में राजा महेन्द्र के गद्दी पर बैठने के बाद, नेपाल ने संयुक्त राष्ट्र संघ की व्यवस्था के अन्तर्गत कई राष्ट्रों से अपने सम्पर्क बनाने शुरू किये। भूटान ने भी लगभग नैपाल का अनुकरण करना शुरू किया। भूटान 1971 में संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बना और अपने अन्तर्राष्ट्रीय आकांक्षाओं की वृद्धि के साथ उसने लगभग 14 देशों के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित कर लिये हैं। लेकिन सिक्किम का दर्जा अत्यधिक नीचा होने के कारण ऐसा कर नहीं सकता कभी जब साहस किया तो परिणाम सामने आ गये।

नैपाल व भूटान ने निरन्तर यही प्रयास किये है कि भारतीय सेना उनके देश की सीमा पर अधिक बढ़ने न पाये। नैपाल को इस दिशा मे अंशतः सफलता मिली है, जबकि भूटान को उतनी सफलता अपेक्षाकृत नहीं मिल पाई है। पिछले कुछ वर्षों मे स्थिति मे परिवर्तन दिखाई दिया है। इस परिवर्तन से पूर्व भारत नैपाल–भूटान की सेना को विधिवत प्रशिक्षण देता रहा है और अभी भी यह प्रक्रिया जारी है। कुछ वर्षों तक भूटान मे तो सैनिक सुरक्षको की यह स्थिति थी कि भूटान की सेना में भारतीय सैनिक ऑफिसरो का होना जरूरी हो जाता था।

नेपाल–भूटान की सार्वभौमिक अस्तित्व के उभारने में बाहरी शक्तियों का भी सहयोग रहा है चाहे वह भारत सरकार की इच्छा के विरुद्ध क्यों न हो। विशेष रूप से चीन और प्रच्छन्नरूप मे पाकिस्तान ने पर्वतीय राज्यो के आन्तरिक असन्तोष तथा शिकायतो का लाभ लिया है। दोनो ने ही बाहरी देशों से विविध तरीकों से सहायता लेकर अपनी अन्तर्राष्ट्रीय छवि को ऊँचा करने का प्रयास किया है। भारत की स्वयं की अन्य देशों पर निर्भरता ने पर्वतीय राज्यो को वैसा ही करने के लिए अनुप्रेरित किया। 1971 से भारत की परिवर्तित स्थिति को देखकर, बाहरी शक्तियों ने भी पर्वतीय राज्यों की ओर से उदासीनता का व्यवहार अपना लिया था क्योंकि बांगला देश के जन्म के साथ दक्षिण-एशिया मे भारत एक पर्याप्त शक्तिशाली देश के रूप में उभर कर आ गया था और उसे महाशक्तियो ने मान्यता भी दी थी लेकिन बांगला देश की विजय का प्रभाव कुछ वर्षों ही चल पाया और उसके बाद से पर्वतीय राज्यों से भारत का प्रभाव धीरे-धीरे कम होता नजर आता है। जब कभी भारत की आन्तरिक कमजोरियां राजनीतिक व्यवस्था को असन्तुलन की स्थिति मे लाई हैं—पर्वतीय राज्यो ने उन स्थितियो का पूरा-पूरा लाभ लिया है। उदाहरण के लिये जनता पार्टी के प्रशासन के दौरान जिस प्रकार अस्तव्यस्तता तथा अनिश्चितता की स्थिति पैदा हुई उन क्षणों मे पर्वतीय राज्यो ने अन्य शक्तियों की सहायता से अपनी सार्वभौमिक शक्ति को उभारने का प्रयास किया है। विशेष रूप से 1980 के बाद से भूटान ने अपने दृष्टिकोण में भारी परिवर्तन किया है। 1980 से आज तक लगभग भूटान ने 14 देशों से कूट-नीतिक सम्बन्ध स्थापित कर लिये हैं तथा भारत पर शत-प्रतिशत निर्भरता को घटा कर 77% पर ले आये हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की संस्थाओं से आर्थिक सहायता लेने से भूटान मे आर्थिक विकास तीव्रगति से हो रहा है। भूटान कई अन्तर्राष्ट्रीय मसलों पर संयुक्त राष्ट्र संघ मे अपना मत भारत के विरोध मे देने से कोई संकोच का भाव प्रदर्शित नही करता। धीरे-धीरे भारत पर किन्ही क्षेत्रों में निर्भरता को भूटान कम करने के प्रयास है।

चीन की निरन्तर प्रतिकूल नीतियो ने भी भारत की सशक्त भूमिका पर प्रभाव डाला है। चीन ने प्रारम्भ से भारत का पर्वतीय राज्यों पर प्रभाव को मान्यता नहीं दी। भारत–चीन के अच्छे सम्बन्धों के दौरान भी चीन की निजी इच्छा यही रही कि भारत के प्रभाव को किसी न-किसी प्रकार कम करना है और इस निरन्तरता के प्रयास ने चीन को जब तब सफलता प्रदान की है। आज के सन्दर्भ मे पर्वतीय राज्यों (नेपाल–भूटान) की भूमिका को देखकर संकेत अवश्य मिलता है कि भारत का पर्वतीय राज्यों से प्रभाव धूमिल

हो रहा है। प्रश्न केवल यही उठता है कि इस विशेष क्षेत्र में श्रेय चीन को दिया जाय या उभरती हुई उन परिस्थितियों को जिनका हो जाना अपरिहार्य था। यह बात दूसरी है कि प्रभाव का कम हो जाना चीन के लिए एक प्रकार से सुख की बात हो लेकिन चीन को श्रेय देना या उसकी सफलता में आंकना अनुचित ही होगा। शनैः शनैः परिस्थितियां कुछ इस प्रकार बन गईं जिन्होंने पर्वतीय राज्यों को भारत के प्रभाव से बाहर निकाला है।

एक दृष्टिकोण और सामान्य तौर पर रखा जाता रहा है कि भारत सरकार का पर्वतीय राज्यों पर प्रभाव रखने का उद्देश्य उनको भरपूर आर्थिक सहायता देने से हो सकती है। आर्थिक सहायता देने से प्रभाव की मात्रा कुछ वर्ष ही चल पाती है, अन्त में यह माध्यम भी असफल इसीलिए हो जाता है क्योंकि आर्थिक सहायता किसी देश को बाध नहीं सकती या उसमे बांधने की क्षमता अब कम हो रही है। नेपाल–भूटान के सन्दर्भ में भारत की भरपूर आर्थिक सहायता ने मध्यम वर्ग को ऊँचा उठने में सहायता की है जिसके कारण भारत के प्रति दृष्टिकोण प्रतिकूल बना है। 1973 मे नेपाल के नरेश बीरेन्द्र ने कहा था कि नेपाल एक एशिया का तो अंग हो सकता है परन्तु भारतीय सीमा से लगे होने के कारण उप महाद्वीप का अंग नहीं हो सकता। राजा ने नेपाल को स्विट्जरलैण्ड के दर्जे की मांग की थी जिसका सीधा अर्थ 'शान्ति के क्षेत्र' की मांग से था। नेपाल की सुरक्षा के लिए भारत को किसी भी दृष्टि से या आवरण या बहाने से अवसर नही देना चाहते। 'शान्ति के क्षेत्र' की माग 1973 में गुट निरपेक्ष सम्मेलन में अल्जीरिया मे उठाई गई थी। उस समय तो मांग सुनी अनसुनी कर दी गई। 1975 मे इसी मांग को पाकिस्तान-चीन–अमरीका तथा बागला देश ने पूरा समर्थन दिया। भारत उक्त सुझाव पर चुप रहा लेकिन ऐसा विश्वास किया जाता है कि भारत ने नेपाल को इस प्रकार की माग को उठाने के लिये अपनी प्रतिक्रिया जाहिर की थी। 1977 में तत्कालीन भारत के प्रधानमन्त्री मुरारजी देसाई जब नेपाल गये तो उन्होंने स्पष्ट कहा—"न केवल नेपाल अपितु सम्पूर्ण दक्षिण एशिया एक शान्ति का क्षेत्र घोषित होना चाहिये।" जनता पार्टी के प्रशासन का समय पर्वतीय राज्यों के लिये अधिक सुख देने वाला था। मुरारजी देसाई ने कुछ बयानों से इनका हौसला या साहस बढ़ा दिया था। सिक्किम के मामले मे भी श्री देसाई के बयान उत्साहित करने वाले थे। इसी प्रवाह के क्षणों मे भूटान के राजा ने हवाना से लौटते समय बम्बई मे बयान दिया था कि 'अब समय आ गया है जब भारत को 1949 की सन्धि में संशोधन करना चाहिये।' वैसे भारत के प्रभाव को कम करने का प्रयास पर्वतीय राज्यों का भी रहा तथा आंशिक दृष्टि

से दक्षिण-एशिया में अतिरिक्त शक्तियों को इस भूमिका में जोड़ना अनुचित नहीं होगा। यद्यपि Himalayan Federation का विचार साकार नहीं हो पाया लेकिन यह योजना अभी तक जीवित रही है। ऐसा कहा जाता है कि 1979 में हनोई रेडियो ने भारतीय समाचार पत्र की पुष्टि करते हुए कहा था कि "अमरीका व चीन अभी भी Himalayan Federation के स्वप्न को साकार करना चाहते हैं।" लेकिन इस दृष्टिकोण से सहमत होना अधिक आसान नहीं है कि "भारत भविष्य में परिस्थितियों के अनुकूल होने पर नेपाल–भूटान को अपने मे विलय कर लेगा।" इस प्रकार की सूचना न केवल दक्षिण-एशिया देशों के पारस्परिक सम्बन्धों में कटुता लाती है अपितु स्थायी रूप से गलत धारणा को जन्म देने का भी प्रयास करती है। एक अन्य दृष्टि-कोण या विचार को फैलाने से भारत के प्रति राय ही नहीं बदलती बल्कि भारत के न्यूनतम हितों की पूर्ति में अत्यधिक रुकावट आती है। उदाहरण के लिए यह कहना कि "पर्वतीय राज्यों के लिए भारत एक खतरा है।" और इस मत का वार-बार प्रचार करने से छोटे देशों का दृष्टिकोण संशयात्मक हो जाता है जिसके फल-स्वरूप भारत के अच्छे उद्देश्यों को साकार प्रदान करने में भारी दिक्कत आ जाती है। 1947 से आज तक पर्वतीय राज्यों पर, राष्ट्रीय हित की परिधि मे, प्रभाव रखने की तो अवश्य रही हैं लेकिन हड़पने की कमी नही रही होगी। सिक्किम के भविष्य को रातोरात बदलना न केवल सयोग था वल्कि एक अनिवार्य बुराई थी। नेपाल–भूटान को भारत से सुरक्षा की दृष्टि से भय या आतंकित होना एक चतुराई तो हो सकती है लेकिन इसमें वास्तविकता तनिक भी नही है। यह बात दूसरी है कि नेपाल या भूटान अपने अस्तित्व को ऊँचा करने में कुछ भी करें लेकिन भारत से भय की बात सोचना हर स्तर से अनुचित प्रतीत होती है।

दूसरा पक्ष– वैसे तो भारत की नीतियो के बारे में हर दृष्टिकोण से टिप्पणी होती रही है लेकिन समग्ररूप से परिस्थितियों का परीक्षण करे तो यह संकेत मिलता है कि भारत के दृष्टिकोण में परिपक्वता की झलक हमेशा बनी रही है। भारत की संस्कृति के कुछ लक्षणों का नीतियों में समावेश अवश्य रहा है। सत्य, अहिंसा, सहिष्णुता, उद्देश्य और साधन के बीच न्यूनतम फासला आदि ऐसे आदर्श हैं जिनका शतप्रतिशत व्यावहारिक स्वरूप प्रस्तुत नही किया जा सकता। लेकिन उक्त सिद्धान्तों का नीतियों के पालन में निरन्तर ध्यान रखना यह भी एक उपलब्धि है। आदर्श के नाम पर भारत की नीतियों की कटु आलोचना होती रही है। 1962 में तो भारत को एक ऐसा नैतिक धक्का लगा था जिसके फलस्वरूप पूर्ण आदर्श

का निर्वाह करना असंभव है का सबक उसके बाद से ही सीखा ।

पर्वतीय राज्यों के लिये प्रारंभिक काल कैसा रहा होगा लेकिन भारत के दृष्टिकोण से कठोर नहीं माना जा सकता । भारत के सुलझे हुए नेताओं का प्रयास यही था कि पर्वतीय राज्य भारत की विवशता को भली प्रकार समझ लें तो उनके राष्ट्रीय हितों की पूर्ति में कोई घाटा नहीं है । यदि भारत जनसंख्या, आकार तथा सैनिक शक्ति की दृष्टि से लाभ की स्थिति में था तो छोटे देशों की दृष्टि से शंका तथा भय की स्थिति भी पैदा करने वाली थी । अतः भारत का अथक प्रयास यही था कि हिमालयी राज्य भारत की नीति को खुले दिमाग से समझें । परन्तु शंकाओं को उठने से भी नहीं रोका जा सकता था और यदि एक बार शंका प्रपत्र स्थायी रूप ले ले तो फिर प्रयास भी निरर्थक होते है । नीतियों को समग्र रूप से परीक्षण व विश्लेषण केवल विशेष प्रकार की उत्पन्न परिस्थिति को गौर से देखना होगा तभी यह एक प्रकार की राय बन सकती है कि भारत के अथक प्रयास केवल पर्वतीय राज्यो को अपने समर्थन मे रखने की नियत के अलावा कुछ भी नही था ।

यदि हम तत्कालीन गृहमंत्री पटेल के मत को लेकर एक बुनियादी विचार बना ले कि भारत सरकार की तो नियत यही थी कि नेपाल-भूटान-सिक्किम भारत में विलय हो जाय । यह विचार यदि था भी तब भी शंका का कारण तो बन सकता है लेकिन शकाओ को स्थायी स्वरूप देने से आपसी सबंधों में हमेशा के लिये कटुता आ जाती है । भारतीय नेताओं की परिपक्वता के दर्शन हमेशा होते रहे है कमी केवल इस प्रयास की रही है कि भारत के उद्देश्य तथा इरादो को समझें । कुछ वर्षों से भारत के बारे में उन पड़ौसी देशों की भी राय तथा दृष्टिकोण एक दम विपरीत दिखाई देता है जो पहले नही था । प्रतिकूल दृष्टिकोण बदलती हुई परिस्थितियों के साथ होता गया है । नेहरू काल एक ऐसा युग समझा गया जिसके अन्तर्गत न केवल पड़ौसी देशों की पूर्ण आस्था थी बल्कि भारतीय नागरिकों की नेहरू पर पूर्ण समर्पित विश्वास था । यहां तक कि विरोधी पक्ष का भी व्यक्तिगत नेहरू पर विश्वास था । भारत मे बदलते नेतृत्व ने पड़ौसी देशों के हृदय में संदेह तथा अविश्वास पैदा किया । यह पक्ष विश्वसनीय माना जा सकता है । जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया तो भारतीयों के हृदय मे क्रोध की ज्वाला थी । लेकिन नेहरू के नेतृत्व पर पूर्ण विश्वास प्रकट किया लेकिन तत्कालीन सुरक्षा मंत्री वी. के. कृष्णामेनन से जनता ने स्तीफा आग्रह व प्रदर्शन के साथ ले ही लिया यद्यपि स्वयं

नेहरू नहीं चाहते थे कि कृष्णामेनन मंत्रिमंडल से जाय। कहने का आशय यही है कि नेहरू का प्रशासन संदेह तथा विवाद से मुक्त था। पड़ोसी देशों की भी आस्था थी कि जो कुछ उनको आश्वासन दिया जाता है उसमें एक-निष्ठा व ईमानदारी का भाव है। परन्तु बाद के प्रशासन की शैली नेहरूजी से पूर्णतया भिन्न होने के कारण पड़ोसी देशों के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हुआ। जोड़-तोड़ की राजनीति की मात्रा अधिक बढ़ जाने के कारण उत्तरोत्तर अविश्वास बढ़ता गया। 1971 में बांगलादेश एक नये राष्ट्र के रूप में उभर कर आया लेकिन श्रेय या दोषारोपण भारत को गया। एक तरफ तो भारत दक्षिण एशिया में एक शक्ति के रूप में उभरा और 1962 की धूमिल छवि को पुनः यथास्थिति तक पहुँचाया लेकिन दूसरी ओर पर्वतीय राज्यों में भय व शंका हो जाना भी स्वाभाविक था। विशेष रूप से 1974 मे सिक्किम के विलय के बाद तो न केवल नेपाल-भूटान अपितु श्रीलंका भी शंकाओं की निगाहों से देखने लगा। इतिहास में कुछ ऐसे दृष्टान्त घटित हो जाते हैं जिनके आधार भावी राय बनाने में कोई कष्ट नहीं होता और राय और भी मजबूत होती जाती है। यदि इसी प्रकार के उदाहरण और प्रस्तुत हो जायं। 1971 में बांगला देश तथा 1974 में सिक्किम का भारत में विलय ने पर्वतीय राज्यों के प्रशासन में हलचल पैदा कर दी। सिक्किम के विलय के तुरन्त बाद भूटान नरेश दिल्ली आये और अपनी शंकाओं को सामने रखा। यद्यपि शंकाओं को समाप्त करने मे भारतीय नेतृत्व ने कोई कसर नही छोड़ी होगी लेकिन शंकाएं एक बार उठ खड़ी हो जायं तो उनको किसी गणितीय आधार पर मिटाना दुर्लभ कार्य है। नेपाल के नरेश भी दिल्ली आये और अपनी शंकाएं व्यक्त कीं। इस तथ्य से मुंह नही मोड़ा जा सकता कि श्रीमती गांधी का काल निसंदेह उथल-पुथल की राजनीति को जन्म देने वाला समझा गया। कांग्रेस पार्टी मे ही कितनी बार टुकड़े नही हुए लेकिन श्रीमती गांधी हर बार सफल नेता के रूप में उभर कर आईं। कहने का अर्थ यही है कि घरेलू नीति या नेहरू से भिन्न शैली ने पर्वतीय राज्यों के दृष्टिकोण पर भारी प्रभाव डाला। शंकाएं इतनी घर कर गईं कि नेपाल-भूटान अपने अस्तित्व को उभारने का अतिरिक्त प्रयास करने में जुट गये। उन्हे 1947 की वे घटनाएं ताजा होने लगी जब भारत के नेतृत्व का एक छोटा सा समूह, जिसमें सरदार पटेल भी शामिल थे, जिनने नेपाल-भूटान तथा सिक्किम को भारत मे विलय होने की न केवल राय दी थी बल्कि आग्रह भी किया था। सिक्किम के विलय के बाद अतीत मे लुप्त हो जाने वाले स्थल तथा संबंधित घटनाएं सभी याद आने

लगी। यदि नैपाल-भूटान के सामने सिक्किम के विलय की आन्तरिक कहानी स्पष्ट रूप से सुनाई गई होती और भारी दबाव की परिस्थितियों को समझा होता तो भय व शंका दोनों का लोप हो गया होता। परन्तु ऐसा होना संभव नही था अतः पर्वतीय राज्यों के दृष्टिकोण की भी उपेक्षा करना उनके प्रति अन्याय करना है। कोई भी राष्ट्र उनके स्थान पर वही राय या धारणा बनाता जो उन्होने बनाई थी। परन्तु सहजभाव से उठी शंका व भय धीरे-धीरे एक कूटनीति के रूप में सामने आने लगी। पर्वतीय राज्यों के मन में भय व शंका तो धीरे-धीरे समाप्त हो गई लेकिन उक्त दोनों तत्वों को हिमालयी राज्यों ने एक हथियार के रूप मे अब लेना शुरू कर दिया है। भारत अब चाहे कुछ अन्याय पूर्ण नीति को अपनाये या न अपनाये---नैपाल-भूटान की कूटनीति भारत विरोधी भावना को निरन्तर व्यक्त करना एक आम बात हो गई है। दोनो ही पर्वतीय राज्य सम्भवतः यह सोचते हैं कि विरोधी भावना को व्यक्त करने से भारत की ओर से अतिरिक्त धन की सहायता तथा अन्य रियायतें प्राप्त हो जाती हैं। इस प्रकार की कृत्रिम तथा असत्य भावना को फैलाने से भारत पर अकारण एक नैतिक दबाव पड़ा है। भारत सरकार स्वयं कभी-कभी पर्वतीय राज्यों के व्यवहार से हतप्रभ रह जाती है। विशेष रूप से उन क्षणों मे जब भारत सर्वाधिक आर्थिक सहायता के बारे मे सोचती है। अत. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में नैपाल-भूटान का भारत से सुरक्षा की दृष्टि से डर न केवल कृत्रिम है अपितु एक कूटनीति है जो दोनो को भारत से सर्वाधिक लाभ दिलवाने मे सहायक सिद्ध हो रही है। भारत का एक मात्र राष्ट्रीयहित किस प्रकार पर्वतीय राज्यों की गलत भावना व व्यवहार को सहन करने के लिये विवशता बनाये हुए है।

भारत ने अपनी विवशता का स्वरूप अपनी अस्पष्ट नीति के कारण बनाया है। आदर्श व यथार्थ के बीच भूलती हुई नीतियों ने पर्वतीय राज्यों के मन में आस्था को तोड़ा है। यह सही है कि नेहरू काल के ऊंचे आदर्श, आने वाले नेतृत्व की क्षमता के बाहर था कि उनका किंचित मात्र भी निर्वाह कर पाते। नेहरू के व्यक्तित्व में न केवल भारत बल्कि समस्त दक्षिण एशिया के देशो के बारे में एक दृष्टि थी जिसको समझने के लिये एक उच्च स्तरीय समझ की आवश्यकता है। आज भी उनके विचार तथा भाषणों को पढ़कर यह लगता है कि पर्वतीय राज्यो के बारे मे नेहरूजी की समझ बिल्कुल साफ थी। इसीलिये उन्होंने तत्कालीन गृहमंत्री सरदार पटेल की राय को स्वीकार नहीं किया। पंडित नेहरू के सिद्धान्त तथा व्यवहार में

फासला न्यूनतम था। सरदार पटेल तो अन्तिम क्षण तक यही आग्रह करते रहे कि समस्त पर्वतीय राज्यों को भारत में मिला लेना चाहिये। परन्तु नेहरूजी ने उन संधियों (1949–1950) को सम्मान दिया जो अंग्रेजों ने नैपाल-भूटान तथा सिक्किम के साथ की थी। कहने का आशय यह है कि सब से अच्छा मौका भारत के लिये प्रारंभिक काल का था जब पर्वतीय राज्यों का विलय बिना किसी आपत्ति तथा विरोध के साथ संभव था। आज पर्वतीय राज्यो का संदेह तथा भय उसी स्थिति के स्मरण से उठ जाता है कि भारतीय नेतृत्व का वर्तमान दृष्टिकोण अधिक आक्रामक है और सरदार पटेल का विचार कभी भी साकार हो सकता है। नैपाल व भूटान की आशंकाओं को दूर करना वर्तमान नेतृत्व के बस की बात नहीं लगती क्योंकि नेतृत्व मे उन मूल्यों का व्यावहारिक पक्ष दिखाई नही देता जो नेहरू काल मे शतप्रतिशत था। ऐसी स्थिति में भारत की नीति मे जितनी स्पष्टता होगी उतना ही पारस्परिक समझ की मात्रा बढ़ेगी। बदलती हुई परिस्थितियों के साथ आदर्श युक्त भाषा को पुनः परिभाषित करना होगा जिससे राष्ट्रीय हितों का संतुलन कायम रहे। मूल्यों का ह्रास उत्तरोत्तर भारत मे हो रहा है जिसके परिणामस्वरूप आस्था व विश्वास भी भारतीय नेतृत्व पर निरन्तर घट रहा है।

नैपाल व भूटान ने भारत मे जो घटनाऐं घटी है उसको भी बड़े गौर से समझने का प्रयास किया है।

पंजाब की समस्या—आसाम तथा उत्तरी-पूर्वी सीमा की समस्याओं के बारे में भी पर्वतीय राज्य अनभिज्ञ नही रहे हैं। इन समस्याओं की जटिलता से नैपाल-भूटान अधिक सतर्क हुए हैं। यहां यह कहना पर्याप्त है कि भारत की जनतान्त्रिक तथा पूंजीवादी व्यवस्था ने भारतीय नेतृत्व को अधिक उलझाया है। भारत की घरेलू नीति पर्वतीय राज्यो को बराबर सजग किये रही है जिससे उनके व्यवहार में भारत विरोधी भावना प्रवेश कर गई। तटस्थ भाव से विचार करने पर यह बात सामने आती है कि घरेलू समस्याऐं पड़ौसी देश के व्यवहार को बदलने में अधिक सहायक रही हैं। पर्वतीय राज्यों की एक सीमा तक विवशताओं का विचार करना भी एक सार्थक प्रयास है। भारत की 'राष्ट्रवाद' की भावना को रखकर और उसी को एकमात्र बिन्दु मानकर पर्वतीय राज्यों के दृष्टिकोण को नही समझा जा सकता। नैपाल-भूटान दोनों ही अन्तर्राष्ट्रीय आकांक्षाओं को बढ़ा चुके है और यह उनकी वास्तविक विवशता है। परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय आकांक्षाओं का विश्लेषण भी एक यथार्थ परिधि में हो सकता है। 1949 व 1950 की संधियां भारत के साथ होना

तथा उसके माध्यम से उन पर जहां तहां नियंत्रण का प्रावधान सम्मिलित करना एक ऐसी वास्तविकता है जिसमें भारत के न्यूनतम तथा सीमित राष्ट्रहित सन्नहित हैं। यदि पर्वतीय राज्य संधियों में संशोधन चाहते हैं तो केवल उसी नाजुक बिन्दु पर आकर ठहर जाते हैं जहा भारत का राष्ट्रीय हित शुरू होता है। अत संशोधन की माग का प्रयास एक ऐसा दबाव है जिसको कुछ वर्षों से भारत सरकार बिना कुछ टिप्पणी किये हुए सहिष्णुता के भाव की झलक दे रहा है। इस मामले मे भारत की विवशता है और उसकी उपेक्षा करना उचित नही।

अन्तर्राष्ट्रीय संबंध में रिश्तों के समीकरण बनते व टूटते रहते हैं। जो प्रत्यक्ष रूप में दिखाई देता है उसका प्रछन्न रूप कुछ और ही होता है। प्रछन्न स्वरूप का निकटतम ज्ञान होने से दो राष्ट्रो के बीच सम्बन्धो की चर्चा अधिक सार्थक सिद्ध होती है। यदि छोटे राष्ट्र के दृष्टिकोण व अनुभव को अपेक्षाकृत महत्व दिया जाय। भारत एक बड़ा राष्ट्र है और भूटान छोटा। भूटान के दृष्टिकोण व उसकी संवेदनाओं को ध्यान मे रखते हुए प्रस्तुत लेख में विश्लेषण का प्रयास है। इस प्रयास मे आदर्शात्मक व यथार्थवाद के सिद्धान्त का भी ध्यान रखा गया है।

भारत–भूटान सम्बन्ध का इतिहास यद्यपि लम्बा है लेकिन यहा कुछ ऐसे मुद्दो को उठाया गया है जो वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अधिक महत्व रखते हैं। पिछले कुछ महीनों से यह कहा जाने लगा है कि भूटान का रुख भारत के प्रति उदासीन हो रहा है और उसकी विदेश नीति मे अधिक परिवर्तन दिखाई देने लगा है—जो भारत के राष्ट्रीय हितो के सर्वथा प्रतिकूल रहेगा। इन समाचारो में कितनी सत्यता है यह तो नही कहा जा सकता परन्तु तथ्यों को और निकट दृष्टि से गौर करे तो यह स्पष्ट लगता है कि जो देखने मे आ रहा है, वह यथार्थ नही है।

प्रारम्भिक काल – भारत–भूटान सबध का श्रीगणेश 1949 की सधि से प्रारम्भ होता है और सधि की धारा 2 के अनुसार "भारत-भूटान के विदेशी मामले में परामर्श देगा।" धारा दो का अर्थ या उसकी व्याख्या विशेषज्ञों ने अलग-अलग दृष्टिकोण से की है। किसी ने भूटान के दर्जे को अर्द्ध सार्वभौमिक मात्र तो किसी ने भूटान को भारत का आरक्षित राज्य कहा, लेकिन जो व्याख्या भारत तथा भूटान के बीच पारस्परिक समझ व सूझबूझ के द्वारा सामने आई है उसको तरीके से नही समझा गया है। यही कारण है कि भारत–भूटान के सम्बन्धों मे यदा-कदा मलीनता की झलक भी दिखाई दी।

1949 की सधि के बाद से और आज तक यदि कभी भूटान ने भारत को गलत समझा तो केवल एक मुद्दे पर और वह सधि की धारा दो जो उसके अन्तर्राष्ट्रीय स्तर या दर्जे को स्पष्ट नही करती। संधि की उक्त धारा को शामिल करने का उद्देश्य दोनो देशो के पारस्परिक हितों की पूर्ति का, भारत की पर्वतीय नीति प्रारम्भ से कुछ इस प्रकार रही है कि जिसने अथक प्रयासो के बावजूद पर्वतीय राज्यों के निवासियों को सही दिशा मे सोचने का मौका नही दिया। इस सम्बन्ध में चाहे वह नेपाल हो या भूटान, चाहे कश्मीर हो या उत्तर-पूर्वी सीमावर्ती क्षेत्र। भारत की नीति में एकरूपता न होने के कारण भिन्न-भिन्न पर्वतीय क्षेत्रो के निवासियों ने भारत को गलत समझा। यद्यपि भारत की नीति उन सभी के लिये लाभ पहुँचाने के उद्देश्य से ही क्यों न की गयी हो; परन्तु व्यावहारिक स्वरूप ने यदा-कदा कुछ ऐसी दिशा ली जिसके कारण भारत को गलत समझा गया और उसका फायदा उन पड़ोसी देशों ने लिया जो भारत के विरुद्ध आजादी के बाद से ही वैमनस्यता का भाव देखते रहे।

इसी संबंध में यह बात उल्लेखनीय है कि भूटान का दृष्टिकोण 1949 की संधि के बाद से किस प्रकार बदलता रहा, जिसमे अन्य शक्तियों का कितना हाथ है तथा भूटान की भौगोलिक स्थिति दोनो देशो के लिये कितनी महत्वपूर्ण है तथा भूटान की राजनीतिक आकांक्षाएं उत्तरोत्तर कितने अंश तक बढ़ती गईं जिसके उत्तर में भारत ने उसकी आकाक्षाओं की पूर्ति में कितना योगदान दिया—ऐसे कुछ मुद्दे हैं जिनका उत्तर इस लेख मे देने का प्रयास किया गया है।

1949 की संधि बाद भूटान ने विदेशियों के प्रवेश के लिये अपने द्वार बंद किये। यहां तक कि भारत के निवासियो का भी प्रवेश वर्जित रखा, लेकिन ज्यों-ज्यों भूटान के शासक वर्ग भारत की नीति को समझते गये उमी अनुपात में कठोर नीति में ढिलाई आती गई। भारत की नीति इस दौरान में एक पक्षीय कही जा सकती है लेकिन निरन्तर व निष्ठापूर्ण व्यवहार ने भूटान के राजा को विश्वास दिलाया कि भारत हमेशा उसके राष्ट्रीय हितो की पूर्ति में सहयोग देता रहेगा। 1958 में स्व० जवाहरलाल नेहरू की कष्टप्रद भूटान की यात्रा ने भारत को अधिक नजदीक से समझने का मौका दिया। इस यात्रा के बाद से भूटान ने भारत के बन्द दरवाजों को खोल दिया। भूटान की नीति मे नरमाई की झलक मिलती ही गई। इस यात्रा से पूर्व कहां भूटान भारत की दी गई किसी भी आर्थिक सहायता

को भी स्वीकार नही करता था परन्तु यात्रा के बाद भारत के दिये गये सुझावों को स्वीकार करने की झड़ी सी लग गई। भूटान ने भारत के उस सुझाव को सहर्ष स्वीकार किया जो आर्थिक विकास योजना से सम्बन्धित था। 1961 से प्रथम पंचवर्षीय योजना का सिलसिला शुरू हुआ जिसका आज तक निर्वाह हो रहा है। सन्धि की धारा दो जिसने भूटान के शासक वर्ग में संदेह उत्पन्न कर दिये थे वे धीरे-धीरे मिटते गये। 1971 में भूटान के राजा ने संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य होने की इच्छा व्यक्त की और भारत के अथक प्रयास से भूटान संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बना। भूटान कोलम्बो योजना का सदस्य भी बना और धीरे-धीरे अन्य अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओं का सदस्य बनता गया। आज भूटान अन्तर्राष्ट्रीय जगत में अपनी प्रतिष्ठा प्राप्त करता जा रहा है। भूटान के प्रतिनिधि भिन्न-भिन्न अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर अपनी स्वतन्त्र राय व्यक्त बड़ी ही बुलन्दी से करते है।

आर्थिक क्षेत्र—[1961 से और आज तक भूटान की पंचवर्षीय योजना में भारत की आर्थिक सहायता सर्वाधिक रही है। पहली दो पंचवर्षीय योजना को पूरा करने के लिए भारत ने शत-प्रतिशत आर्थिक सहायता दी। प्रथम पंचवर्षीय योजना में भारत ने 1750 लाख रुपया दिया और दूसरी मे 2000 लाख। लेकिन तीसरी व चौथी पंचवर्षीय योजना मे भारत की आर्थिक सहायता के अलावा भूटान ने अन्य अन्तर्राष्ट्रीय सम्थाओं से भी सहायता प्राप्त की है। भूटान अब कोलम्बो योजना व संयुक्त राष्ट्र संघ की सम्थाओं से भी आर्थिक सहायता लेने लगा है। ऐसा कहा जाने लगा है कि भूटान अब धीरे-धीरे भारत के पूर्ण प्रभुत्व से हटता जा रहा है और भारत के प्रति रुखा व्यवहार दिखाने लगा है।] यह बात अधिक उचित नही लगती। यदि आर्थिक सहायता के दृष्टिकोण को रखकर यह बात कही गई है तो और भी अनुपयुक्त है। भारत तो प्रारम्भ से यही कामना करता रहा है कि भूटान एक स्वतन्त्र तथा दबंग राष्ट्र के रूप मे उभरे। यदि भूटान अन्य देशों से आर्थिक सहायता लेने लगा है तो इससे यह बात तो स्पष्ट नहीं होती कि भूटान के भारत से सम्बन्ध कुछ हल्के पड रहे है। 1949 से 1961 तक भूटान ने जब भारतवासियों के लिये द्वार बन्द किये थे वह विशेष अवधि एकान्त तथा दूसरे देशों के प्रति शंका का काल था। परन्तु 1961 से और आज तक भूटान की नीति में एक प्रकार से सूझबूझ व समझ मे परिपक्वता की झलक मिलती है। भारत की सतर्कता हमेशा उसके व्यावहारिक पक्ष पर रही है जिसने भूटान को कभी संदेह नही होने दिया कि भारत कभी भी उसके प्रति अहित की सोच सकता है। कभी-कभी महत्वपूर्ण घटना चक्रों ने भूटान को संदेह के लिए मौका अवश्य दिया

लेकिन विशेष संदेहों को तुरन्त ही मिटाने का प्रयास किया गया जिससे वे संदेह इतने गहरे न हो जायें जिनको मिटाना मुश्किल हो। यह सच है कि 1962 में चीन के साथ युद्ध होने के कारण भूटान में चीन के प्रति अधिक आतंक तथा भय बैठ गया जिसके परिणामस्वरूप आज भी भूटान निर्णयात्मक दृष्टि से फैसला नही कर पाया है कि क्या उसको चीन से सम्बन्ध स्थापित करने चाहिये। चीन के बारे में भूटान की संसद में बार-बार यह मुद्दा सामने आया है और विषय भी बना है कि "क्या अब समय आ गया है कि भूटान चीन से कूटनीतिक सम्बन्ध रखे। इस प्रश्न को भूटान नरेश जिगमे सिंघे वागचुक (28 वर्षीय) ने किसी न किसी आवरण मे अपने संसद सदस्यों को टालने के लिए समझाया है। भूटान का चीन के बारे में भय अभी भी व्याप्त है जिसके कारण उक्त विवादास्पद विषय टलता ही जा रहा है। चीन की ललक भूटान के प्रति मात्र इसलिये है कि भारत का उस पर प्रभाव कम हो। वैसे चीन 1949 से ही भारत भूटान के विशेष सम्बन्धों को हृदय से स्वीकार नही कर पाया था जिसके कारण उक्त सम्बन्धों को कोई मान्यता नही दी।

भारतीय समाचार पत्रों मे यह भी यदा-कदा पढ़ने को मिला है कि भूटान का भारत के प्रति प्रतिकूल रुख एक बात से और मिलता है कि आज की तारीख मे भूटान में भारत के द्वारा भेजे गये विशेषज्ञ या तकनीकी लोग अब नही के बराबर रह गये हैं। यद्यपि यह आधार अधिक ठोस नही है परन्तु यह सूचना अवश्य पूर्णतया निराधार है। **शोध कार्य से सम्बन्धित मेरा भूटान 1981 में जाना हुआ था।** भूटान की राजधानी थिंफू तथा आसपास के जिलों में मैं गया था। देखने पर लगा कि भारत किस-किस क्षेत्र मे भूटान को अपनी अहमियत उभारने का पूर्ण अवसर दे रहा है। हर विभाग में भारतीय विशेषज्ञ भूटानी लोगो को प्रशिक्षण देते हुए पाये गये। उल्लेखनीय है कि भारतीयों का वहा होना न तो इस बात का प्रतीक है कि भारत भूटान पर अधिक हावी हो रहा है और भारतीयों के न होने से यह भी हवाला नहीं मिलता कि भूटान का भारत के प्रति रुख बदल रहा है। वह तो भूटान तथा भारत दोनो के लिये सौभाग्य का दिन होगा जब भूटान को भारतीय विशेषज्ञो की आवश्यकता नही पड़ेगी। भारत के निरन्तर प्रयास इसी दिशा में है भी।

भूटान का भारत के प्रति बदला हुआ रुख इस बात से भी कहा जाने लगा है कि भूटान की घड़ी भारतीय समय से आधा घण्टे आगे चलती है और वहां के मूल निवासियों को उस समय अधिक परेशानी होती है जब कोई

भारतीय अपने देश की घड़ी के अनुसार समय बताता है। इस परेशानी की अभिव्यक्ति को भारत के प्रति यदि बदला हुआ रुख बतलाया जाता है तो वह निराधार ही तर्क है। हर विकासशील राष्ट्र की राजनीतिक आकांक्षाएँ होती हैं और सच्चे राष्ट्रवाद की झलक इन्ही छोटी-छोटी बातों में मिलती है। भूटान एक स्वतन्त्र सार्वभौमिक राष्ट्र है और उसे अपनी घड़ी के समय को निर्धारित करने की स्वतन्त्रता है। भूटान यदि अपने देश के समय को अलग करना चाहता है तो क्या आपत्ति हो सकती है।

अन्तर्राष्ट्रीय मंचो पर भी भूटान ने भारत का विरोध किया है या महत्वपूर्ण मुद्दो पर भारत को समर्थन नही दिया। उदाहरण के लिये कंपूचिया के मामले मे भूटान ने भारत का विरोध किया। विरोध करने का अर्थ कभी यह नही है कि भूटान–भारत के सम्बन्धों में अन्तर आ रहा है। कई मामलों मे भूटान ने भारत को समर्थन दिया लेकिन समर्थन देने का अर्थ कभी यह नही लगाना चाहिए कि भूटान भारत का पिछलग्गू है। बांगला देश को यदि भारत के बाद कोई दूसरा देश मान्यता देने वालो मे था तो वह भूटान था। उस समय भी कुछ इस प्रकार के मत प्रकाशित हुए जो भूटान के स्वाभिमान को आघात पहुँचाने वाले थे। उदाहरण के लिए पड़ौसी राष्ट्रों द्वारा भूटान का उपहास किया गया और यह कहा गया कि भूटान भारत का क्यों न समर्थन करे–उसकी तो विदेश नीति भारत के हाथ में है। चीन तो खुले शब्दों मे भारत पर आरोप लगाता रहा कि भारत सिक्किम की तरह भूटान को भी हड़प लेना चाहता है। इस प्रकार की प्रकाशित सूचनाओं ने भूटान को यदा-कदा झकझोरा भी है तथा भारत को गलत समझने का पूरा मौका दिया है। इसी कारण भूटान नरेश ने अपने बयान मे 1949 की सन्धि में संशोधन करने का भारत से आग्रह किया था। यह बयान उस समय दिया था जबकि गुट निरपेक्ष आन्दोलन के शिखर सम्मेलन (हवाना) में शामिल होकर अपने देश लौट रहे थे। सन्धि के संशोधन की बात भूटान नरेश ने की तो थी लेकिन अपने बयान को तुरन्त स्पष्ट करते हुए तथा भारत की नीति की सराहना करते हुए कहा "भारत–भूटान सन्धि व्यवहार मे सफल जा रही है लिखित मे क्या है वह महत्वपूर्ण नहीं" भूटान नरेश भारत के प्रयासो के बारे मे सार्वजनिक रूप से सराहना करते रहे हैं। साथ मे भारत के हितो के बारे मे भी भूटान अनभिज्ञ नहीं है। भूटान 1949 की सन्धि से किसी भी प्रकार से भारत से बन्धा हुआ नही है। सन्धि की धारा नं० 10 के अनुसार दोनो देशों की पारस्परिक सहमति से सन्धि को समाप्त किया जा सकता है। भूटान ने अपने इस लम्बे अवधि का अनुभव बड़े गौर से किया है जिसने उसे

पक्के रूप में आश्वस्त कर रखा है कि उसके राष्ट्रीय हितों की पूर्ति भारत के साथ अटूट सम्बन्ध बनाये रखने मे है–तोडने में नहीं।

यदि भूटान ने बांगला देश तथा नेपाल से अपने कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित कर लिये हैं तो इसका अर्थ यह कभी नही लगाना चाहिये कि वह भारत से अपना सम्बन्ध धूमिल कर रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का अध्ययन व विश्लेषण इस नजरिये से नही हो सकता कि अमुक राष्ट्र किसी राष्ट्र के साथ हमेशा बंधा रहे या प्रतिबद्धता जाहिर करता रहे। हर राष्ट्र के अपने राष्ट्रीय हित होते हैं और उनकी पूर्ति के लिये उसे कुछ न कुछ रास्ता ढूंढना पड़ता है। यदि भारत को अमरीका से यूरेनियम प्राप्त करने मे देरी हुई तो तुरंत फ्रांस से यूरेनियम मंगाने का प्रयास किया गया। यदि भूटान अपने माल का निर्यात बांगला देश को कंचिनचिगा के मार्ग से न कर कलकत्ता के मार्ग से करता है तो भारत को इसमें क्या आपत्ति हो सकती है। लेकिन इस मुद्दे को भी प्रेस ने अधिक महत्व देते हुए प्रकाशित किया कि भूटान के सम्बन्ध बांगला देश से अधिक घनिष्ट हो रहे हैं अपेक्षाकृत भारत के। भूटान का राष्ट्रीय हित समय की बचत है और समय की बचत के कारण ही भूटान ने अपने माल के निर्यात का रास्ता बदला। केवल मार्ग बदलने से भारत–भूटान सम्बन्ध की निकटता को कम नही आंका जा सकता। इतना अवश्य स्वीकार किया जा सकता है कि भूटान पहले अपने राष्ट्रीय हितों के प्रति इतना जागरूक नही था जितना अब। हितो के प्रति जागरूकता एक शुभचिन्ह है जो उसे प्रगति के मार्ग पर अवश्य ले जायेगा।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से स्वय सेवी योजना के अन्तर्गत पश्चिमी देशों से या तो नवयुवक प्रशिक्षित लोग भूटानियों को प्रशिक्षण देने हेतु भूटान में आने लगे है। आज उनकी संख्या 20 हो गई है और भारतीय विशेषज्ञ वहां से अपने देश वापिस लौट रहे है। उक्त विशेषज्ञों को भूटान सरकार की प्रार्थना पर भेजा गया है जिनकी संख्या 20 से 50 तक हो जायेगी। इस सूचना को कुछ इस प्रकार से लिया जा रहा है कि भारत भूटान संबंधो में अन्तर का रूप कहा जा सकता है। क्या भारत ने विदेशी विशेषज्ञों को अपने देश में स्थान नहीं दे रखा है ? क्या भारत तकनीकी के क्षेत्र में विदेशों से अधिक योग्य या कुशल होने का दावा रखता है ? यदि इनका उत्तर हा मे है तब भारत के लिये आपत्ति उठाने का प्रश्न उठ सकता है। परन्तु यथार्थ कुछ और ही है। भूटान में यदि भारतीयों के अलावा पश्चिमी देशों से विशेषज्ञों का आना शुरू

है तो इससे यह तो हवाला नही निकलता कि भूटान भारत से अपना मुंह मोड़ने लगा है या भूटान-भारत की किन्ही मामलो में उपेक्षा करने लगा है। भारत की नीति भूटान के प्रति सहानुभूति तथा सहयोग की रही है। भूटान निवासियों के सदेहपूर्ण स्वभाव को भी भारत ने अच्छी तरह जाना और समझा है। सदेही लोगो के साथ सतर्कता की आवश्यकता होती है। साथ मे धैर्य की। भारत सरकार ने 1949 से और आज तक धैर्य, सहानुभूति तथा सतर्कता का परिचय दिया है। चीन ने 1962 के संकटकाल से और पिछले कुछ वर्षों तक ऐसी कोई कसर नही उठा रखी थी जो भारत की विरोधी न रही हो। भूटान को भारत के विरुद्ध चीन ने क्या कुछ नही कहकर बहकाया होगा। परन्तु भूटान की सूझबूझ तथा प्रशासकों की परिपक्वता ने भारत-भूटान के अटूट सबधो मे कही भी कमी नही आने दी।

भूटान ने भारत के अतिरिक्त, वर्ल्ड बैंक, संयुक्त राष्ट्र संघ तथा अरब देशों से सहायता लेना आरम्भ कर दिया जिसके कारण यह कहा जाने लगा है कि भारत का भूटान पर वह प्रभुत्व नही रहा जो पहले था। अच्छे सबधो का अर्थ यह कभी नही होता कि एक देश दूसरे के प्रति अपने राष्ट्रीय हितों की कीमत पर वही करता रहे जो अतीत में कर रहा था। बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार एक राष्ट्र की प्राथमिकताएं भी बदलती हैं। भारत और भूटान पारस्परिक सूझबूझ के द्वारा इस तथ्य से अनभिज्ञ नही है कि भूटान भारत पर हमेशा के लिये निर्भर नही रह सकता और व्यावहारिकता भी यही कहती है कि एक राष्ट्र पर पूर्णतया निर्भर रहने का अर्थ होता है कि निर्भर राष्ट्र की अपनी कोई सार्वभौमिक स्वतन्त्रता नही है। यह तो भूटान के हित मे ही है कि वह जहां तक हो भारत पर अपनी निर्भरता को कम करता जाये। पूर्ण निर्भरता अन्य देशो को सही दिशा मे सोचने के लिये भी मौका नही देती। पहली दो पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भारत की भूटान को शतप्रतिशत आर्थिक सहायता थी जिसके कारण पडोसी देशों ने विशेष रूप से चीन व पाकिस्तान ने भूटान के सार्वभौमिक स्तर का अवमूल्यन किया। वर्तमान के सदर्भ मे जब भूटान के अपनी एक मात्र निर्भरता को कम किया तो यह कहा जाने लगा कि भारत-भूटान सबधो मे कटुता आने लगी है। यदाकदा मतभेदो का हो जाना स्वाभाविक है परन्तु मतभेदो को अन्यथा लेना सतुलित या निष्पक्ष विचारो का परिचायक नही है। भारत भूटान संबंध को लेकर यह समाचार भी छापा गया कि भूटान के विकास और उत्थान के बारे मे सोचने का अधिकार नई देहली के स्थान पर जिनेवा को प्राप्त हो गया है। नई देहली के

अधिकारों में कमी आ रही है क्योंकि 9 तथा 18 मई, 1983 को जिनेवा में हुई वार्ता ने यह सिद्ध कर दिया है कि अनडप (UNDP) की भूटान को उत्तरोत्तर आर्थिक सहायता बढ़ती ही जा रही है तथा उसी अनुपात मे भारत की सर्वाधिक सहायता में भारी कमी आ गई है। संयुक्त राष्ट्र की कुछ आर्थिक सहायता 50 मिलियन डॉलर तक पहुँच गयी है, जबकि भारत की अब तक कुल सहायता 140 मिलियन डालर है। अन्य सूत्रों से यह भी समाचार है कि भूटान भारत की कुल दी गई मात्रा के मुकाबले विदेशी सहायता जल्द ही पार कर लेगा। भूटान विश्व बैंक तथा एशियन विकास बैंक का सदस्य हो गया है, जिसके कारण यह संभावना व्यक्त की जा रही है कि इससे भारत के संबंधों में अन्तर आयेगा तथा प्रभाव के क्षेत्रों में कमी आयेगी। उक्त तथ्यों के आधार पर संभावित संबंधो में कमी की बात अधिक उचित नहीं है। भारत की सर्वाधिक आर्थिक सहायता के दौरान भी भारत की नीति प्रभाव बढाने की नहीं थी। यह तो पारस्परिक राष्ट्रीय हितों की पूर्ति में संतुलन बनाने की थी। भारत भूटान पर किसी भी क्षण हावी नही रहा। भूटान से आर्थिक सहायता के बदले मे न्यूनतम अपेक्षाएं अवश्य रही हैं और आज भी हैं जिनका सम्मान भूटान के अधिकारी वर्ग ने हमेशा किया है। इसलिये भूटान की दूरदर्शिता तथा समझ में परिपक्वता पर शंका करना ठीक नही है। जिन शंकाओं से भूटान जब तक पीड़ित रहा, उनको आपसी वार्तालाप के माध्यम से मिटाया गया है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि भारत संचार की व्यवस्था पर अधिकार तथा इंडियन मिलट्री ट्रेनिंग टीम (IMTRAT) के माध्यम से भूटान की सेना पर निगरानी करने से राष्ट्रीय हितों की पूर्ति होती है। इसी संबंध में यह समाचार भी सामने आया कि भूटान मे उक्त दोनों क्षेत्रों पर अधिकार लगभग समाप्त हो गया है और इम्तरात (IMTRAT) को किसी भी समय भूटान सरकार द्वारा अपने बिस्तर बाधने के लिये कहा जा सकता है। भारत सरकार का अधिकार यदि अब तक रहा है तो वह भूटान सरकार की इच्छा से ही तो था। यदि भूटान के अधिकारी वर्ग आज यह सोचते है कि दूसरे देश का प्रभाव उक्त दायरे में होना अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से उचित नहीं है तो उसमें नई दिल्ली को क्या परेशानी हो सकती है। भारत की नीति मे आजादी के बाद से और आज तक भूटान के क्षेत्रों में प्रभाव बढाने की भावना कभी नहीं रही। यदि सहायता व सहयोग को प्रभाव बढ़ाने का इरादा समझा जाता है तो अनुचित था।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि भारत-भूटान सम्बन्धों का

विश्लेषण भूटान के दृष्टिकोण से यदि किया जाये तो निर्णय किसी हद तक सही बैठेगा। इसी आधार को लेकर दोनों देशों के बीच संबंधों की चर्चा हुई है। 1949 की संधि को आपत्ति जितनी पड़ोस के देशों ने की है उतनी भूटान स्वयं ने भी नहीं की होगी। भूटान ने यद्यपि यदाकदा भारत को गलत समझा है, लेकिन उन क्षणों में भूटान के अधिकारी वर्ग के सोचने की दिशा बाहरी विचारधारा से अधिक प्रभावित हुई जिसके फलस्वरूप भारत विरोधी भावना की अभिव्यक्ति सामने आई। परन्तु इस सम्बन्ध में भूटान नरेश की प्रशंसा करनी होगी कि वर्तमान राजा जिग्मेसिंह वांगचुक तथा उनके स्वर्गीय पिता जिग्मेदोरजी वांगचुक दोनों ने ही कोई भी कदम जल्दबाजी में नहीं उठाये। भूटान के अधिकारी वर्ग अपने देश की सीमाओं व परिस्थितियों से अनभिज्ञ नहीं हैं। भूटान नरेश अपने देशवासियों की भावनाओं व संवेदनाओं से अच्छी तरह परिचित हैं। वे जानते हैं कि संधि की धारा दो का अर्थ अन्य पड़ोसी देश कुछ भी लगाते रहें लेकिन व्यवहार में जिस सफलता से संधि का पालन हो रहा है वही अच्छे संबंध कायम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

अतः वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारत भूटान संबंध में कोई अन्तर नहीं आया है, चाहे भूटान अन्य स्रोतों से आर्थिक सहायता ले या भूटान अन्य देशों से कूटनीतिक संबंध कायम करे या भूटान अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर भारत का विरोध करे। इस तथ्य में कोई दो मत नहीं हैं कि भारत भूटान दोनों के राष्ट्रीय हितों की पूर्ति में बराबर संतुलन बना हुआ है। जिस क्षण हितों की पूर्ति में अधिक असंतुलन आयेगा उस दिन भूटान निस्संदेह सीमा का उल्लंघन करने में नहीं हिचकिचायेगा। भारत की नीति ने आदर्श व यथार्थ में निरन्तर संतुलन बनाये रखा है और नये संदर्भ में भी भारत की भूटान के प्रति नीति यथार्थ से हटकर कभी नहीं रही अर्थात राष्ट्रीय हितों का हमेशा ध्यान रहा है। कभी-कभी भारत पर यह आरोप लगाया गया है कि उसकी भूटान के प्रति तुष्टि की नीति रही है। यह आरोप उचित सा नहीं लगता है। भूटान की शंकाओं को दूर करना तथा सहानुभूति भाव से वार्ता करना तुष्टि की नीति नहीं कही जा सकती। कठोर नीति अपनाने से तो शंकाएं और भी बल पकड़ती हैं जिससे समस्याएं सुलझने के बजाय उलझती ज्यादा हैं। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि भारत की विदेश नीति में यथार्थ तो हमेशा साथ रहा है लेकिन दार्शनिक दृष्टिकोण अपेक्षाकृत अधिक सहायक रहा है। दार्शनिक दृष्टिकोण का अर्थ कभी भी आदर्शात्मक नहीं लेना चाहिये क्योंकि 'दर्शन' तो यथार्थ का अभिन्न अंग है।

संदर्भ सूची

1. श्री कान्त दत्त —भारत तथा हिमालयी राज
   एशियन ऐफेयर्स
   Feb., 1980

2. वी. पी. मेनन —The Integration of
   Indian States—London, 1956

3. Asian Relations Conference—March-April, 1947
   Report of Proceeding
   New Delhi, 1948

4. Asian Survey Vol. XVII No. 2—Feb., 1978

5. आर. सी. मिश्र —भारत भूटान संबंध
   (Unpublished Ph. D. Work,
   1977)

6. — — — Sikkim Join the Mother Land
   (1977)

7. — — —India's Aid to Bhutan,
   SAN Jamp (1082).

8. — — —India's Allition to Bhutan
   (Unpublished Paper prented
   in the National Seminar SAN)

9. राममनोहर लोहिया —धरती माता (1983)

10. Kuensel (Bhutan Weekly Bulletin)—1980-86.

भूटान—आर्थिक विकास की दिशा में

1960 से पूर्व भूटान राजतन्त्रीय व लामाओं का पर्याय समझा जाता रहा। दोनों ही संस्थाओं ने भूटान की परम्परावादी समाज की आकांक्षाओं की पूर्ति भी की। इस प्रकार की स्थिति तभी तक सम्भव थी जब तक भूटान ने अन्य राष्ट्रों से अलग-थलग रहने की नीति का पालन किया। 1958 में प० जवाहरलाल नेहरू ने भूटान की कष्टप्रद यात्रा की और भूटान के राजा को बड़े आग्रह के साथ समझाया कि 'अलग-थलग' रहने की नीति भूटान के राष्ट्रीय हितों के विपरीत है। पंडित नेहरू के उक्त आग्रह को राजा ने स्वीकार किया और तभी से भूटान ने पर्वतों से घिरे राष्ट्र को अन्य राष्ट्रों के लिये दरवाजे धीरे-धीरे खोलने शुरू किये।

1960 के बाद से भूटान में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन की झलक दिखाई देने लगी। आधुनीकरण तथा बाहरी शक्तियों के सम्पर्क होने से दो वर्चस्व संस्थाएँ यानि राजतन्त्रीय व लामा एक प्रकार से दबाव में आ गये। आधुनीकरण ने स्वयमेव एक नये सामाजिक-आर्थिक ढांचे के निर्माण करने की आवश्यकता को जन्म दिया। भूटान में कई जातीय समाज होने के कारण, एकता तथा अखण्डता की आवश्यकता पर अधिक जोर दिया गया। ऐसा तभी सम्भव था यदि आधुनिक आर्थिक विकास धार्मिक तथा भावात्मक आधार पर बिखरे समाज को एकता के रूप में बाधने के लिये सफल हो सके। आर्थिक विकास होने से जो विषमताएँ पैदा होती हैं उनको भी रोका जा सके। इसे भूटान के प्रशासन मे प्राथमिकता दी गई। चूंकि लामाओं का एक सीमित धार्मिक समाज होने के कारण इसकी भूमिका नही के बराबर हो गई और राजतन्त्रीय व्यवस्था की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण उभरती दिखाई दी। बौद्ध समाज जो परम्पराओं से अधिक जकड़ा हुआ था उनमे अब परिवर्तन सामने आने लगे। भूटान की संस्कृति तथा अस्तित्व का भाव अब राष्ट्रीय भावना

की ओर मुड़ने लगा। इस नये दृष्टिकोण को उभारने में राजतन्त्र की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण रही है।

भूटान में नया विशिष्ट वर्ग तथा मध्यम वर्ग आधुनीकरण के कारण उभर कर आ रहे हैं। इन दो वर्गों के उभरने के फलस्वरूप आर्थिक-सामाजिक संघर्ष पैदा हो गये हैं तथा पुराने परम्परावादी समाज के अन्दर असन्तुलन उठ खड़ा हुआ है। नया विशिष्ट वर्ग न केवल शहरी क्षेत्र में सीमित है अपितु वह ग्रामीण क्षेत्रों तक विस्तार हो गया है जिनमें व्यापारी वर्ग तथा जमींदार भी शामिल हैं। ऐसी परिस्थिति में, सत्ता के साथ हिस्सेदारी तथा सरकार व उक्त नये विशिष्ट वर्ग के पारस्परिक सम्बन्ध भी संकट में आ गये हैं। जनतान्त्रिक व्यवस्था में सत्ता के साथ भागीदारी सम्भव हो जाती है लेकिन राजतन्त्रीय व्यवस्था में जहां कार्यकारिणी का अध्यक्ष केवल राजा हो वहां सत्ता के साथ हिस्सेदारी की सम्भावना अत्यधिक सीमित होती है। भूटान में, राजतन्त्र को विभिन्न हित समूहो के द्वन्दों को आत्मसात करना बहुत मुश्किल होता है। आज की संस्थाओं में वह तत्व मिलना कठिन है जो राजा और जनता के बीच सीधा सम्पर्क करने में सफल हो पाये। सामाजिक ढांचा भी इतना लचीला (Resiliant) नहीं है जो राजा व जनता के बीच की भूमिका अदा कर सके। क्या यह सम्भव है कि भूटान में उभरते हुए नये विशिष्ट वर्ग के हितो की पूर्ति एक सर्वोपरि राजा कर पायेगा? यह सही है कि भूटान में आधुनीकरण के कारण सामाजिक-आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याएँ धीरे-धीरे अपना सर ऊपर उठा रही हैं और राजतन्त्रीय व्यवस्था का भविष्य में क्या स्वरूप होगा जो उक्त समस्याओं का समाधान कर पायेंगी। साथ मे राजतन्त्रीय व्यवस्था के अन्तर्गत कौनसे हल हैं जो क्षेत्रीयवाद, ग्रामीण जागरूकता तथा जातीय समस्या को अपनी व्यवस्था मे स्वीकार कर पायेंगे।

भूटान की जातीय तथा सांस्कृतिक विविधता तथा भौगोलिक परिस्थितियों ने हिमालयी राज्य में आर्थिक व सामाजिक तनाव व अन्तर्विरोधों को उत्पन्न होने में अधिक मदद दी है। आज भूटान की जनसख्या लगभग 15 लाख आंकी गई है तथा उसका क्षेत्रफल 46,000 वर्ग कि. मी. है। जनसंख्या का घनत्व भी न केवल दक्षिण-एशिया मे अपितु एशिया में सबसे कम है अर्थात् भूटान में प्रति वर्ग मीटर पर 28 व्यक्ति रहते है। आधुनीकरण के अध्याय के प्रारम्भ करने से पूर्व भूटान में न तो आर्थिक दबाव की समस्या थी और न भूमि की। भूटान की जनता अपने आप में संतुष्ट

थी और आर्थिक व्यवस्था का स्वरूप भी बार्टर व्यवस्था जैसा ही था। फिर भी जातीय भिन्नता तथा सांस्कृतिक द्वन्दों के कारण आर्थिक-सामाजिक तनाव उससे पूर्व विद्यमान थे। इसको समझने के लिए आवश्यक है कि भूटान का भौगोलिक तथा जातीय विभाजन को समझें।

भूटान में तीन मुख्य जातियां हैं जिन्हे हम शारचौप्स (Sharchops) नालौप्स (Nglops)तथा नेपालियों के नाम से पुकारते हैं। शारचौप्स सबसे पहली जाति थी जो भूटान के पूर्वी भाग में आकर बसी थी। शारचौप्स भारत के उत्तरी पूर्वी भाग तथा वर्मा के उत्तरी भाग से आये। नालौप्स (Nglops) तिब्बत से आकर बसने वाली जाति थी और अपने साथ बौद्ध धर्म लाये थे। नेपाली लोग अधिकाश हिन्दू जो 19वी शताब्दी के बाद के समय मजदूर के रूप में आये, जिन्हे भूटान के दक्षिणी भाग में प्रतिकूल जलवायु में काम करने के लिये बुलाया गया था। उक्त तीनो जातियों की संस्कृति, धर्म तथा अहमियत भिन्न थी। नालोप्स (Nglops) भूटान में आकर शासक बन गये और मूल निवासी शारचौप्स (Sharchops) को या तो अपने अधीन कर लिया या उनको अपने धर्म में बदल कर उनसे शादी विवाह के सबन्ध जोडकर अपने मे मिला लिया। नेपाली लोगों को दक्षिणी भाग मे बसने के लिये सीमित रखा तथा उन्हें राज्य के ऊपरी भाग में आने या बसने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। भूटान मे विभिन्न जातियां अपने-अपने जोन मे बसी हुई हैं। शारचौप्स (Sharchops) अधिकाश पूर्वी भाग मे, नालोप्स (Nglops) पश्चिमी व मध्य भाग में तथा नेपाली जाति दक्षिणी भाग मे। भूटान की भौगोलिक स्थिति का विभाजन तीन भागों में बांटा जा सकता है—(1) दक्षिणी पहाड़ी का निचला भाग (2) अन्दरूनी पहाडी भाग (3) ऊपरी पहाडी भाग [Southern fort hils, Inner Himalays Upper Himalays]

पहाडी का निचला भाग मैदानी क्षेत्र से 1500 मीटर की ऊंचाई तक जाता है जो कि 25 कि. मी. है। यह क्षेत्र जलवायु की दृष्टि से ग्रीष्म है तथा ऊमस रहती है तथा वर्षा भी काफी होती है। लगभग समस्त क्षेत्र मे नेपाली जाति बसी हुई है। नेपाली लोग या तो कृषि का धंधा करते हैं या छोटा मोटा व्यापार। इन नेपालियों को शेष दो जातियों से संपर्क करने का न मौका कभी मिलता है और न कानून ने इन्हें संपर्क करने की छूट दी है। यद्यपि हाल में कानून मे संशोधन से पारस्परिक संपर्क का अवसर मिलने लगा है लेकिन इस प्रकार की छूट नगण्य है। पिछले 100 वर्ष का इतिहास संकेत देता है कि नेपालियों

को भौगोलिक दृष्टि से अलग-थलग सा ही रखा गया है। इस प्रकार के व्यवहार होने से उनकी अपनी सस्कृति, धर्म तथा व्यक्तित्व उभर कर आया है। पिछले कुछ वर्षों से आर्थिक विकास की योजनाओं के कारण पारस्परिक संपर्क का दौर शुरू होता दिखाई दिया है।

भूटान का दूसरा भौगोलिक क्षेत्र जिसको आन्तरिक पहाड़ी भाग कहा जाता है जो कि चौडी नदी घाटियों से घिरा हुआ है वह है : पारो, पुनाखा, थिंफू, बूमलोग तथा ताशीगोग । इन क्षेत्रों में नालोप्स (Ngalops) तथा शारचौप्स (Sharchops) रहते हैं। इन जातियों की अपनी अलग आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक शैली है। आर्थिक तथा राजनीतिक सत्ता का प्रादुर्भाव इन्ही क्षेत्रों से शुरू हुआ। भूटान की स्वयं की अहमियत भी जो इतिहास तथा सस्कृति से आंकी जाती है उसका भी श्रीगणेश इन्ही क्षेत्रों से हुआ। यद्यपि शारचौप्स (Sharchops) पूर्वी आन्तरिक भाग मे रहते आये हैं लेकिन इन निवासियों को बौद्धधर्म में आत्मसात करने से अब एकीकरण हो गया है। यद्यपि भूटान के मूल निवासी शारचौप्स जो तिब्बत की सस्कृति के साथ घुल-मिल गये हैं लेकिन फिर भी आज वे अपनी अलग संस्कृति, परम्परा, रहने के तौर-तरीके आदि के निर्वाह करने मे एक गौरव अनुभव करते हैं। उनको देखने से यह अभी भी लगता है कि वे अपनी परम्पराओं में जकड़े रहने में एक सुख अनुभव करते हैं। परन्तु भूटान में आर्थिक विकास की गति धीरे-धीरे बढ़ रही है जिसके फलस्वरूप यहां के मूल निवासियों पर भी उसका प्रभाव देखने को मिलता है। एक काला पहाड़ (Black Mountain) जिसने पूर्वी भाग को पश्चिमी भाग से बिल्कुल अलग कर रखा था। अब संचार व्यवस्था उपलब्ध हो जाने से दोनो क्षेत्रो के लोगों के बीच आसानी से सम्पर्क होने लगा है तथा एकीकरण का भाव भी देखने को मिलता है।

जहां तक भूटान का ऊपरी हिस्सा है (Upper Himalays) वह उत्तरी भाग कहलाता है जो अधिकतर बर्फ से ढका रहता है जिसके कारण यहां बसने वाले लोग नही के बराबर हैं। इस सीमा का भाग भूटान को तिब्बत से भी जोड़ता है। इस हिस्से में चारागाह अधिक होने के कारण जानवरों की चराई के लिये Yaks भेज दिये जाते हैं और भूटान में Yaks मवेशी की महत्वपूर्ण पूंजी भी है।

भूटान के तीन मुख्य क्षेत्रों मे जनसंख्या बंटी हुई है और तीनों जगह अपने-अपने तरीके से जीविकोपार्जन करने का रास्ता भी उन लोगों के पास है। शासक वर्ग के आर्थिक हितों में हस्तक्षेप या हिस्सेदार बनने का प्रयास

किसी भी दिशा से नही हुआ। भूटान के मूल निवासी शारचौप्स (Sharchops) यदि पूर्वी क्षेत्र मे अपनी अर्थव्यवस्था अलग से चलाते थे जिसे हम स्वयं में पर्याप्त कह सकते है तो दक्षिण में नेपाली लोग कृषि तथा लघु उद्योगों के जरिये अपना जीविकोपार्जन करते रहे। जहा तक भूटान देश की महत्त्वपूर्ण अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण उन लोगों का रहा जो तिब्बत मे आये थे और अपने साथ **बौद्ध धर्म** भी लाये थे जिसको उन्होने लागू किया। देश का व्यापार तथा Fiscal Policies पर नियन्त्रण Ngalpos (नालपौस) का रहा। बौद्ध मठों तथा उससे सम्बन्धित धार्मिक परम्पराओ पर इन्ही लोगों का नियन्त्रण है। आमतौर से हर बौद्ध परिवार से एक पुरुष वर्ग को भिक्षु (Monk) बनने के लिये भेजा जाता रहा लेकिन वर्तमान सन्दर्भ में अब यह परम्परा का निर्वाह कम हो रहा है। कम होने का कारण केवल यही है कि भूटान में आर्थिक विकास ने अपनी गति को ठीक दिशा मे मोड लिया है और लोगों की आर्थिक विकास के सहयोग की आवश्यकता है।

उक्त गतिविधियो से दो प्रमुख बातें (तत्व) उभर कर आते है :—

(1) भूटानी समाज का दृष्टिकोण तथा दर्शन वहां के इतिहास की गतिविधियो से निर्माण हुआ है। जहा तक इतिहास की गतिविधियो का प्रश्न है वह षणायंम तथा प्रतिद्वन्द्वता तथा शोषण से परिपूर्ण है। भूटान की सामाजिक व्यवस्था पर पूर्ण नियन्त्रण तथा आधिपत्य धार्मिक तथा लौकिक मठाधीशो का था तथा सत्ता को प्राप्त करने का निरन्तर संघर्ष एक आम बात समझी जाती थी। इस प्रकार की घटनाओं ने भूटानी समाज के हर सदस्य मे अविश्वास व कुटिलता का भाव भर दिया तथा 'मूल्यो की व्यवस्था' को पूर्णतया झकझोर दिया। 19वी शताब्दी के अन्त तक पारस्परिक संघर्ष तथा अस्तित्व के लिए हमेशा लडते रहने का तौर-तरीका लगातार चलता रहा। इसलिये हर भूटानी व्यक्ति मे यदि अविश्वास व सन्देह की झलक दिखाई देती है वह केवल अतीत के अनुभव का परिणाम है। आज आधुनीकरण तथा आर्थिक विकास की योजनाओ का काम शुरू होने के बावजूद [illegible] पनपी हुई बुराइयां अभी तक मिट नहीं पाई हैं [illegible] देती हैं।

भूटान की एकान्त रहने की नीति तक अपनी संस्कृति व परम्परा की रक्षा करने का दृढ़ संकल्प कुछ और वर्षों तक निभ जाता यदि चीन की तिब्बत में गतिविधियां शुरू न हुई होती। चाहे वह गृह नीति हो या विदेश नीति-परिवर्तन तभी होता है जब कोई विशिष्ट परिस्थितियां अस्तित्व के लिये चुनौती बनकर सामने नही आतीं। चीन ने 1959 में तथा 1962 में क्रमशः जो कुछ तिब्बत तथा भारत के साथ व्यवहार दिखाया वह भूटान के लिये अत्यधिक भय व आतंक प्रस्तुत कर देने वाला था। भूटान को इस प्रकार की असाधारण परिस्थितियों से विश्वास हो गया कि अब पुरानी नीतियों में परिवर्तन करना अपरिहार्य है। यदि वह अपना अस्तित्व सुरक्षित रखना चाहता है। उक्त घटनाओं के घटित हो जाने के बाद ही भूटान ने अपने दरवाजे भारत के लिये खोल दिये और पंचवर्षीय योजना का गठन हुआ।

1960 से पूर्व भूटान की अर्थव्यवस्था का स्वरूप केवल बार्टर व्यवस्था के समान था। चावल तथा हाथ से बुने हुए कपड़े ही बार्टर के माध्यम थे। वह रुपया जो भारत सरकार की ओर से Royalty के रूप में मिलता था, उसका प्रयोग या तो आवश्यक वस्तुओं के खरीदने मे खर्च होते थे या राजा के शाही ठाठ बाट संजोने में। भूटान के दक्षिणी भाग में बसे नेपाली लोग ही शेष थे जो या तो कृषि के माध्यम से या लघु उद्योगों के सहारे से भारत की सीमा से जुड़े हुए व्यापारियों के साथ मुद्रा का आदान-प्रदान तथा उसमे कुशलता प्राप्त कर चुके थे।

तिब्बती संस्कृति तथा धर्म का वर्चस्व तथा आधिपत्य जो वर्षों से रहा अब आधुनीकरण के प्रारम्भ करने से संकट में दिखाई देता है। अब नेपाली जातीय समस्या तिब्बती धर्म व संस्कृति के वर्चस्व को प्रभावित करने लगी है। अनुमान से नेपाली जनसख्या आज लगभग भूटियाओं के बराबर हो गई है जो एक चिन्ता का विषय बन चुकी है। परिवार नियोजन की योजना एकपक्षीय नेपालियों पर लादी नही जा सकती। इसलिये तिब्बती लोगों की जनसंख्या की वृद्धि के लिये योजना सोची जा सकती है। नेपाली लोग बहु-पत्नीय जाति होने के कारण जनसंख्या तीव्रगति से बढ़ती है। नेपाली लोगों की वृद्धि 2.8% गति से बढती है। जबकि भूटियाओं की 1.8% से। आने वाले कुछ वर्षों में भय यही है कि कही नेपाली लोग भूटियाओं से अधिक न बढ जायें जिसके फलस्वरूप वर्षों से चला आ रहा आधिपत्य हाथ से न निकल जाय। यह कोई आसान समस्या नही जिसका कोई हल निकल आये। साथ में भूटान एक इतना छोटा देश है जिसको और अधिक जनसंख्या की आवश्यकता है

जिससे देश के आर्थिक विकास में लोग योगदान दे सकें। सिक्किम का उदाहरण भूटानी शासकों के सामने है जहां नेपाली जनसंख्या ने सिक्किम का नक्शा ही बदल दिया।

दक्षिणी भाग में रह रहे नेपाली लोगों का आर्थिक-राजनैतिक संस्थाओं में उचित स्थान न होने के कारण भी नेपालियों में घोर असंतोष है। पूर्व व वर्तमान नरेश ने नेपालियो को राष्ट्र की मुख्यधारा में लाने के कुछ प्रयास किये हैं जिससे राष्ट्रीय चेतना का भाव समग्र रूप से जागृत हो। ऐसा कहा जाता है कि अब नेपालियो को आर्थिक-राजनीतिक मुख्य धारा में लाया जा रहा है और वह असंतोष कुछ कम भी हो रहा है लेकिन जिस गति से नेपालियों को सुविधाएँ मिलनी चाहिये वैसा नहीं हो रहा है। धर्म व भाषा दो महत्त्वपूर्ण क्षेत्र हैं जिन पर नेपालियों की शिकायत है। भूटान सरकार ने नेपालियों की धर्म व भाषा को प्रोत्साहन देना शुरू कर दिया है। पहले नेपालियों को अपने त्योहार मनाने की स्वतंत्रता नहीं थी लेकिन अब यह छूट उनको दे दी गई है। पहले भूटान का राष्ट्रीय दिवस केवल थिंफू राजधानी के आस-पास ही मनाया जाता था लेकिन अब दक्षिणी नेपाली भी राष्ट्रीय चेतना की परिधि में आ चुके हैं और उसका महत्व समझने लगे हैं। अन्तर्विवाह भी सपन्न कराने की ढील मिल चुकी है। राजा की बहिन की शादी एक नेपाली भूटानी से हुई है, यह इसका एक ज्वलंत प्रमाण है। अब राजा की ओर से नेपालियों में राष्ट्रीय चेतना जगाने के लिए विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

ऐसा परिवर्तन करने के बावजूद भी आर्थिक-सामाजिक ढांचे में विरोधाभास दिखाई देते हैं। राष्ट्रीय भावना तथा एकीकरण तभी संभव है जब आर्थिक व राजनीतिक संस्थाएँ नेपालियों को सत्ता के पटल पर समान अवसर प्रदान कर सकें। छोटी मोटी सुविधाएँ केवल मन बहलाने की तो हो सकती हैं लेकिन ठोस, इस दिशा में सुधार अभी दिखाई नहीं देता। भूटान के धर्म व तिब्बती भाषा व उसकी संस्कृति में विरोधाभास होने के कारण राष्ट्रीय चेतना का भाव नेपालियो में आज संभव नहीं। भूटान में कोई ऐसी शक्तिशाली धर्म-निरपेक्ष या उससे जुड़ा हुआ संस्थागत आधार नहीं है। यद्यपि राष्ट्रीय एकता के लिए एक परिषद् का गठन किया गया है जिसके सदस्य केवल राजा के सगे संबंधी लोग हैं जिसमें उसके बहन का पति भी है जो नेपाली है। परन्तु समस्या सांस्कृतिक, धार्मिक तथा भावुकता से जुड़ी हुई है। सत्ता (Power), चाहे आर्थिक हो या राजनीतिक, एक सीमा के

बाद तक साझेदारी हो सकती है उसके परे नहीं। भूटान का समस्त शाही परिवार उक्त समस्या से ग्रस्त है। एक ओर नेपालियों से यह अपेक्षा है कि वे राष्ट्रीय चेतना की मुख्यधारा से जुड़ जाये और दूसरी ओर उन्हें आर्थिक-राजनीतिक सुविधाओं से वंचित रखें—ऐसा होना संभव नजर नही आता। भूटान का राजतंत्र तथा वहा के लामा लोग या धार्मिक मठाधीश भूटान की सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक अहमियत की रक्षा कर सकते हैं। जहां तक दक्षिण में रह रहे नेपालियों का मुख्यधारा में जुड जाना, आज की परिस्थितियों को देखकर नही लगता।

भूटानी समाज को भी पदोसोपान की स्थिति में भर दिया है। जहा तक बौद्ध समाज की बात है—वह वर्गहीन तथा जातिविहीन है लेकिन पिछले 20 वर्ष के आर्थिक विकास ने विषमताएँ उत्पन्न कर दी हैं। 1960 से पहले भूटान की अर्थ-व्यवस्था स्वय में पर्याप्त कृषि से जुड़ी बार्टर व्यवस्था थी जिसने आर्थिक-सामाजिक ढांचे को उन परम्पराओ तथा संस्कृति को अपनाने में सहायता की जिसका आर्थिक दृष्टिकोण अत्यधिक सीमित तथा नियंत्रित था। यह सीमित आर्थिक दृष्टिकोण केवल शाही परिवार तथा कुछ लोगों से निर्मित उच्च वर्ग व्यापार तथा आर्थिक गतिविधियों से जुड़े हुए थे। राज्य की आय अधिकांश स्वरूप में हुआ करती थी, नगद रुपयों मे नही। श्रम तथा कृषि से उत्पादित चीजें ही राज्य की Revenue हुआ करती थी। थोडा बहुत नगद रुपयों की आवश्यकता की पूर्ति या तो Excise duty से हो जाती थी या भारत सरकार के द्वारा दी गई वार्षिक Subsidy से। 1950 के प्रारम्भिक काल में भूटान का Revenue Budget 100 लाख रु. (एक करोड़) से भी कम था। 1961 के बाद से बार्टर अर्थव्यवस्था समाप्त होती गई और उसका स्थान मुद्रा ने ले लिया। मुद्रा के चलन हो जाने से भूटान के विकास में एक जीवन आ गया है। उक्त विकास मे भारत सरकार को श्रेय देना अतिशयोक्ति नही होगी। जो भूटानी लोग आर्थिक विकास में सहयोग देते रहे वे एक नये उभरते वर्ग के रूप मे सामने आने लगे है और उनका एक विशिष्ट वर्ग हो गया है। यह नया वर्ग शिक्षित है, युवक है, कम रुढ़िवादी है तथा इसकी जडें संपन्नता व समृद्धता से ओत-प्रोत हैं। इन 20 वर्षों मे यह वर्ग भूटान के नये सामाजिक ढाचे में महत्त्वपूर्ण तपका उभर कर आया है। परम्परावादी-रूढ़िवादी भिक्षु व लामा लोग अब नये उभरते हुए वर्ग के सामने पिछड़ से गये हैं। भूटान का भविष्य अब नये वर्ग के हाथों मे जाता हुआ दिखाई देता है। यद्यपि राजा का यह निरन्तर प्रयास है कि भूटान की संस्कृति व परम्पराओ की कीमत पर नये वर्ग के

नये-नये मूल्यों का सामंजस्य या संतुलन तो बना रहे लेकिन नये मूल्य या आधुनिकीकरण का पक्ष देश पर हावी न हो। 1960 से पूर्व विशिष्ट वर्ग केवल परम्परावादी या लामा या भिक्षुओं का एक समूह हुआ करता था जो राजतंत्रीय व्यवस्था को मजबूत रखने में सहयोग देता था। धीरे-धीरे इन लोगों की शक्तियां तथा सुविधायें Middle class ने ले ली हैं और Monks तथा लामाओं को उन सभी सुविधाओं से वंचित कर दिया है जो उन्हें सहज ही प्राप्त हो जाती थी। एक ज्वलंत उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा कि मठों के पुजारियों को किस प्रकार आधुनिक बताया जा रहा है या उनके दकियानुसी विचारों या दृष्टिकोण में परिवर्तन के लिये क्या शैली अपनाई जा रही है। Monks या पादरियों को भी देश के आर्थिक विकास में सम्मिलित करने का प्रयास हो रहा है जो इससे पूर्व नहीं था। अतः सामाजिक स्तर पर परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देने लगा है। नया विशिष्ट वर्ग आक्रामक है और परम्पराओं का केवल आवरण रखने पर विश्वास करता है। पुराना वर्ग अब धूमिल हो रहा है लेकिन बिना किसी शक्ति के उसे किसी न किसी क्षेत्र में लगाये हुए है। इस प्रकार नये मूल्यों की व्यवस्था उभर रही है तथा पुराना परम्परावादी आधार धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है। रोचक बात तो यह है कि जो लोग पुरानी दकियानुसी विचारधारा से चिपके हुए थे, वे अब देश के आधुनिक आर्थिक विकास की शैली को अपनाने में अपना गर्व समझते है और पुराने मूल्यों व विश्वासों को हेय-दृष्टि से देखते हैं।

वर्तमान संदर्भ मे चिन्ता इस बात से नही कि पुराने मूल्य समाप्त से होते दिखाई देते है बल्कि चिन्ता तो भूटान की राजतंत्रीय व्यवस्था मे इस बात की है कि भूटान में उभरता मध्यम वर्ग पूर्णरूपेण परिभाषित संस्थागत व्यवस्था की अनुपस्थिति मे स्थायी आधार प्रस्तुत करने मे असमर्थ दिखाई देता है। देर से या जल्दी एक दिन चला आ रहा परम्परागत संस्थाओं में आंशिक संशोधन लाना होगा तथा विकासशील समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल नया ढाचा प्रस्तुत करना होगा। किसी भी व्यवस्था को स्थायी रखना है तो उसमें संस्थागत परिवर्तन समय के अनुकूल निरन्तर करने पड़ेंगे। उसके बिना व्यवस्था सड जाती है और उसको स्वीकार नही किया जाता। उदाहरण के लिये, भूटान में आज आर्थिक-राजनीतिक-धार्मिक संस्थाओं का स्वरूप किसी भी प्रकार से उठते हुए नये मूल्यों के साथ तारतम्य नही रखते। नये सामाजिक ढाचे का दृष्टिकोण आर्थिक विकास

के साथ बदल रहा है। भूटान की संसद (राष्ट्रीय सभा) का स्वरूप अभी भी परम्परागत है और उसमें कोई जीवन नजर नही आता क्योंकि राष्ट्रीय सभा एक प्रकार से राजा का पर्याय है। राष्ट्रीय सभा का यद्यपि जन्म तो 1952 में ही हो गया था। लेकिन जहां तक राष्ट्रीय समस्याओं का प्रश्न है—संसद एक मूक परिषद् है। राष्ट्रीय सभा में प्रतिनिधित्व भी विषमताओं से युक्त है। उसमें नये वर्ग का प्रतिनिधित्व नही के बराबर है। राष्ट्रीय सभा में सार्वजनिक समस्याओं या विवादों के लिये कोई स्थान नही है। राजनीतिक तथा आर्थिक समस्याओ के बारे मे संसद कोई बहस नही करती। यह ठीक है कि इस प्रकार की स्थिति ज्यादा दिन तक नही चल सकती। जहां तक न्यायालय व्यवस्था का प्रश्न हो या कार्यकारिणी का प्रश्न हो-ये दोनों संस्थाएँ अभी भी प्राचीन ढांचे पर चल रही हैं, जबकि नये वर्ग की विचार-धारा तथा दृष्टिकोण आधुनिक है। दोनों का तारतम्य या समन्वय कितने दिन तक चलेगा-समय बतायेगा। भूटान आज के संदर्भ मे बाहरी देशो से अपने विकास के लिये पर्याप्त मात्रा में मदद लेने लगा है और विकासके लिये मूलभूत आवश्यकताओं के लिये वे साधन भी जुटाने हैं जिनको टाला नहीं जा सकता। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय प्रश्न यही है कि भूटान की आर्थिक नीति का क्या प्रारूप हो जो बदलती हुई परिस्थितियों के साथ अच्छा संतुलन बनाये रखे। राष्ट्रीय प्रश्नों के बारे में निर्णय लेने की वर्तमान व्यवस्था शायद एक छोटे से विशिष्ट वर्ग की सहायता से काम चल जाय लेकिन आने वाले वर्षों के लिये वर्तमान व्यवस्था पूर्णतया न केवल अनुपयुक्त है अपितु आपत्तिजनक भी बन जाय। निराशाएँ, कुंठाएँ, असफलताएँ शायद देश में आर्थिक व राजनीतिक उलझनें पैदा कर दें। जब तक पुरानी संस्थाओ में पुनः बदलाव नहीं आयेगा तथा उनमें पुनर्गठन की दिशा में नही सोचा जायगा, भूटान उन सभी समस्याओ से घिर जायगा जिनसे अन्य विकासशील देश पीड़ित हैं। गरीब व अमीर के बीच विषमताएँ अधिक गहरी होती जायें तो सामाजिक असतुलन पैदा हो जाता है और विद्रोह की भावना घर कर जाती है। जातीय समस्या अपना उग्र रूप धारण कर लेती है और कुछ दिन बाद वह राजनीतिक व्यवस्था में असंतुलन ला देती है। अतः समय की मर्यादा मे राजतंत्रीय व्यवस्था में कुछ इस प्रकार का परिवर्तन अवश्य हो जो बदलती हुई परिस्थितियों के दबाव को सहन कर सके और तनाव को कम कर सके।

भूटान का आर्थिक विकास 1960 के बाद प्रारम्भ हुआ। इससे

पूर्व आर्थिक ढाचा स्थायी, स्वयं में संतुष्ट तथा भूमि व श्रम के बीच संतुलन की स्थिति थी। बाहर की दुनिया से संपर्क न्यूनतम था। 1960 के बाद से, यद्यपि ग्रामीण ढांचा बदला नही है, एक नया आधुनिक वर्ग उभर कर आ रहा है जिसके ऊपर अब तक नियन्त्रण था। 1961 के बाद जब देश के विकास की प्रक्रिया पंचवर्षीय योजना के रूप मे शुरू हुई तो आर्थिक दृष्टि से वहां के समाज पर प्रभाव होना अपरिहार्य था। 1971 मे भूटान संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बना। संयुक्त राष्ट्र संघ की अर्थ-व्यवस्था ने भूटान को आर्थिक सहायता देना शुरू किया। 1971 तक भूटान भारत से शत-प्रतिशत सहायता लेता था और निर्भरता की स्थिति कुछ हल्की हुई जब भूटान ने भारत से अतिरिक्त विदेशी सहायता लेना शुरू किया। भूटान की तीसरी पचवर्षीय योजना मे भूटान ने अन्य स्रोतों से 15.8 मिलियन रुपये की आर्थिक सहायता ली तथा चौथी योजना मे राशि बढकर 193 मिलियन हो गई। पाचवी योजना मे भूटान ने विदेशी सहायता 521 मिलियन रुपये ली और भारत की सहायता 1340 मिलियन रुपये रही। इस प्रकार भूटान की नीतियो मे परिवर्तन दिखाई दिया जहां तक आर्थिक सहायता लेने का प्रश्न है। यह बात स्पष्ट है कि भूटान भारत पर आर्थिक दृष्टि से पूर्ण निर्भर नही होना चाहता था और इसी इच्छा ने भूटान को अन्य देशो की ओर देखने के लिये बाध्य किया। दूसरा परिवर्तन जो भूटान की नीति मे दिखाई दिया वह यह कि 1971 के बाद से भूटान की आर्थिक नीति का प्रारूप या गठन स्वयं भूटान के प्रशासक ही करते हैं। इससे पूर्व भूटान की आर्थिक नीति के बारे में भारत का योजना आयोग देखता था। 1972 मे भूटान का स्वय योजना आयोग का जन्म हुआ जिसकी देख-रेख स्वयं राजा करते हैं। इन परिवर्तनों ने भारत पर पूर्ण निर्भरता को कम किया है। इस आयोग के तीन भाग कर दिये गये है — 1. Planning 2. Resources 3. Statistics। ऐसा विभाजन करने के बावजूद भी काम उस पद्धति से नही हो पाता जैसा होना चाहिये। कारण यह है कि अनुभवी व तकनीकी कर्मचारियो की कमी होने के कारण लोगों की जिम्मेदारी एक दूसरी जगह बदलती रहती है। कार्य की कुशलता तथा गति मे अन्तर आ जाता है। ऐसा होने से निर्णय लेने का बिन्दु अन्तिम रूप से राजा पर ही केन्द्रित हो जाता है। लेकिन उक्त दो परिवर्तनो से भारत पर शत-प्रतिशत निर्भरता को अंशतः कम किया है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि पूर्ण निर्भरता राष्ट्र की सार्वभौमिक भाव में कमी ला रहा था और उसके अन्तर्राष्ट्रीय दर्जे मे कुछ फर्क पडने लगा था। इसलिये यह

आवश्यक समझा गया कि भारत पर पूर्ण निर्भरता में शीघ्र कमी होनी चाहिये और उस दिशा में काम हुआ।

पंचवर्षीय योजनाओं को अमल में लाने के मार्ग में बहुत-सी बाधाएँ आती रही हैं। उसमें सबसे पहली बाधा तो यही कि भूटान की अधिकांश जनसंख्या कृषि में लगी रहने के कारण कुशल तथा तकनीकी श्रमिकों की कमी आती रही है तथा इस प्रकार की कमी आने वाले वर्षों में भी रहेगी क्योंकि जनसंख्या का वितरण ही कुछ इस प्रकार का है। यद्यपि ग्रामीण लोगों को शहर के आर्थिक प्रलोभन का अभियान शुरू तो हुआ है जिसने गांव वालो को काम तथा अधिक पैसा मिलने के लालच से शहर की ओर गतिशील बनाया है लेकिन प्रभाव केवल आंशिक है। चूंकि शिक्षा तथा आर्थिक अवसर अब अधिक मात्रा में उपलब्ध हो रहे हैं इसलिये नई पीढ़ी के युवा वर्ग पुराने धंधों यानि कृषि का काम अब छोड़ने लगे हैं और आधुनिक व्यापार तथा धंधों में अपने आपको लगाने लगे है। दूसरा सामाजिक परिवर्तन जो आधुनिकीकरण तथा आर्थिक विकास के साथ हो रहा है वह है 'मूल्यों का परिवर्तन'। नई पीढ़ी का युवा वर्ग अब धार्मिक भिक्षु या Monk बनना पसंद नहीं करते। पहले Monk बनना एक गर्व की बात समझी जाती थी। यह गर्व की भावना धीरे-धीरे समाप्त हो रही है। इस प्रकार आर्थिक विकास के मूल्य व्यवस्था में भारी परिवर्तन हो रहा है। उल्लेखनीय है कि अब तो काफी अधिक संख्या मे Monks लोग देश के आर्थिक विकास मे आगे आने के इच्छुक हो रहे हैं और वे धार्मिक कर्मकाड से मुक्ति पाना चाहते हैं। Monks की सख्या तो बताई नही जा सकती लेकिन संकेत बराबर मिल रहे है कि आर्थिक विकास व आधुनिकीकरण ने धार्मिक कर्मकांडियों को भी किसी हद तक आकर्षित किया है।

दूसरी पंचवर्षीय योजना मे कुल धन राशि पहली से दुगनी हो गई। इस योजना में प्राथमिकताएँ बदलीं और सड़क निर्माण से सामाजिक सेवाओ पर अधिक जोर दिया गया। शिक्षा पर 18%, कृषि पर 14% तथा स्वास्थ्य पर 8%। आवागमन के साधनों पर केवल 41% घट कर रह गया। इस योजना में मुद्रा का चलन अधिक गति से हुआ तथा मध्यम वर्ग भी इसी अवधि में अधिक उभर कर आया। एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन भी घटित हुआ जब 1968 मे प्रशासनिक व्यवस्था में मंत्रिमंडल का जन्म हुआ। राजा ने मंत्रिमंडल के अध्यक्ष होने की भूमिका स्वीकार की। इस प्रकार राजा ने दो प्रकार की भूमिका अदा करना प्रारम्भ किया। एक ओर देश का अध्यक्ष और दूसरी ओर सरकार का अध्यक्ष। यह बात स्पष्ट हो गई कि अब भविष्य में प्रधानमंत्री का पद, जो 1965 तक जीवित रहा, कभी भी पुनर्जीवित

नहीं होगा और उसे हमेशा के लिये समाप्त कर दिया गया। यह परिवर्तन एक महत्वपूर्ण परिवर्तन था जिसके अन्तर्गत राजा प्रत्यक्ष रूप से आर्थिक विकास में सक्रिय भाग ले सकता था।

जहां तक मुद्रा (Money) का चलन का संबंध है—इसने रहने के तौर तरीके में बदलाव प्रस्तुत किया तथा मुद्रास्फीति भी भूटान मे दिखाई दी। चूंकि योजनाओं के लिये प्रतिबद्धता होने के कारण भूटान मे Money तथा Men का प्रवेश एक साथ हुआ। इसलिये वस्तुओं की कीमतें भी उपभोग की मात्रा बढ़ने से ऊंची हो गई। चीजों की कीमतें दुगनी हो गई और Infrastructural Cost भी उसके साथ बढ़ गई। एक आम आदमी एक नये स्वरूप मे उभरने लगा। एक प्रकार से, एक किसान को अपनी उत्पादित वस्तुओं की कीमत दुगनी मिलने लग गई। दूसरी ओर उसकी आवश्यकताएँ भी उसी गति से बढ़ी। बार्टर अर्थव्यवस्था में एक व्यक्ति अपने चावल के बदले हाथ का बना हुआ कपड़ा लेकर अपने परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेता था। लेकिन मुद्रा व्यवस्था मे अब कपड़ा बाजार में बिकने लगा जहाँ हाथ के बुनने वालों को ऊँचे दाम मिलने लगे। लेकिन हाथ के बुने हुए कपड़े की कीमत इतनी ऊँची हुई कि भारत के व्यापारियों ने उसी प्रकार का कपड़ा बनाने की नकल करना शुरू किया जिससे अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके। भारतीय व्यापारियो ने भूटान मे प्रवेश करना शुरू किया और स्थानीय व्यापारियो को आर्थिक दृष्टि से घाटा होने लगा। सरकार को भूटानी परम्परागत के स्वरूप के बने हुए कपड़ो पर बाहर से आना बन्द कर दिया जिससे स्थानीय व्यापारियों की जीविकोपार्जन पर प्रभाव न पड़े।

तीसरी पंचवर्षीय योजनाओ में राशि बढाकर 135% हो गई जिसके अन्तर्गत सामाजिक सेवाओं के कार्यों को अधिक प्राथमिकता दी गई तथा आवागमन (Transportation) पर राशि घट कर 20% ही रह गई। शिक्षा के मद पर राशि 19% बढ गई। कृषि 17% बढा दी। सामाजिक सेवाओ पर कुल Outlay बढ कर 27% वृद्धि की गई। एक महत्वपूर्ण परिवर्तन जो इस योजना में दिखाई दिया वह यह कि भूटान ने भारत के अतिरिक्त अन्य देशो से आर्थिक सहायता लेना शुरू किया। संयुक्त राष्ट्र संघ से सहायता 3% बढ़ गई तथा आन्तरिक स्रोत मे अर्थव्यवस्था की वृद्धि 7% हो गई। इस योजना के अन्तर्गत यह भी अहसास हुआ कि भूटान अपनी सार्वभौमिक भाव को अच्छी तरह पहचानने लगा है तथा अन्तर्राष्ट्रीय

आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये पर्वतीय राज्य भरसक प्रयत्न में जुट गया है। भूटान अपनी योजना आयोग के कार्यक्रमों के प्रति प्रतिबद्ध दिखाई देने लगा। आर्थिक विकास में लग जाने के कारण अन्य आवश्यकताओं का जन्म हुआ। तकनीकी विशेषज्ञ लोगों की आवश्यकता महसूस होने लगी। कई विद्यार्थियों को विशेषज्ञता हासिल करने के लिये विदेशों में भेजा गया। अधिक कुशल तथा होशियार विद्यार्थियों को विकास के कार्यक्रमों में लगा दिया गया तथा कुछ पढ़े लिखे युवाओं को प्रशासनिक पदों पर आसीन कर दिया गया।

चौथी योजना के अन्तर्गत आर्थिक विकास से संलग्न कृषि, औद्योगिक पक्ष, Hydro power तथा Forestry थे। कृषि को अधिक प्राथमिकता दी गई। कुल खर्चा 1106 मिलियन रु० का 29% कृषि पर खर्च करने की योजना रखी गई—उद्योगों पर 16%। ऐसा केवल इसी उद्देश्य से किया गया कि अधिकांश लोगों को आर्थिक लाभ हो। भारत अभी भी सर्वाधिक आर्थिक सहायता (यानी 77%) में देने में नाम लिखवाता रहा। UN System से सहायता 3% से बढ़ कर 18% हो गई (यानी 6 गुनी)। आर्थिक तथा राजनीतिक दृष्टि से भूटान ने दो बाधाओं पर विजय प्राप्त की। एक तो यह कि भूटान की गणना अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में विकासशील देशों में आंकी जाने लगी और दूसरी ओर यह कि या यों कहा जाय कि भूटान अपनी 17वीं शताब्दी की छवि से दूर हो गया। राजनीतिक दृष्टि से राष्ट्रीय चेतना की वृद्धि में सहायता मिली। राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक विकास अब एक सूत्री कार्यक्रम बन कर सामने आया। शिक्षा पर अधिक ज़ोर देने के कारण literacy 0% से बढ़ कर 10% हो गई। Asian Development Bank के सर्वेक्षण से इस बात की पुष्टि होती है कि भूटान ने आर्थिक तथा प्रशासनिक क्षेत्रों में काफी विकास किया है। 1961 में भूटान में एक भी प्रशिक्षित भूटानी नहीं था। 1976 में लगभग सभी विभागों में प्रशिक्षित भूटानी तैयार होकर विभिन्न विभागों को कुशलता से देख रहे हैं।

पांचवीं योजना के अन्तर्गत जो पांच वर्ष की न होकर 6 वर्ष की मानी गई है (1981–1987)—विशेष प्राथमिकताएँ अधिकांश लोगों का राष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय होना तथा विकेन्द्रीकरण की नीति जो गांव तक पहुँचाती है।

कहने का अर्थ यही है कि

पड़ा है और उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाएगा। देश के मूल्यों की व्यवस्था में परिवर्तन हो रहा है तथा और अधिक परिवर्तन होने की संभावना है। आर्थिक विकास हर देश में संस्कृति तथा मूल्यों में परिवर्तन करता रहा है। इसलिये भूटान कोई अपवाद नहीं होगा।

यद्यपि भूटान में निर्माण तथा सामाजिक सेवाओं के कार्यों में 1961 के बाद से लगातार प्रगति हो रही है लेकिन फिर भी भूटान की अर्थव्यवस्था का मूल स्वरूप परम्परागत ही है। 90 प्रतिशत लोग कृषि तथा पशुपालन के माध्यम से ही जीविकोपार्जन करते हैं। भूटान का GDP (Gross domestic Product) 1500 million NU है तथा प्रति व्यक्ति आय लगभग 125 डालर है जो दुनिया में सबसे कम आंकी गई है। कृषि तथा उससे सम्बन्धित उद्योगों से जो उत्पादन होता है वह सम्पूर्ण घरेलू उत्पादन का आधा है, Forestry से 15%, Industry तथा Mining से 5% तथा विविध स्रोतो से 30%। मुख्य खाद्य फसल गेहूं, चावल, जौ, मक्का है परन्तु देश की पर्याप्त समस्या की पूर्ति के लिये 20% अतिरिक्त खाद्य पदार्थों का बाहर से आयात करना पड़ता है। मुख्य उद्योग है—Cement Factory, A Fruit Processing Factory तथा तीन Distillaries है। लगभग 2000 आदमियों को रोजगार मिला हुआ है या सम्पूर्ण Labour Force का एक प्रति मजदूर औद्योगिक क्षेत्रो में लगा हुआ है। लघु तथा कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। भूटान भी खनिज पदार्थों से वंचित नहीं है लेकिन उसकी किस्म अपेक्षाकृत घटिया होने के कारण उनका अन्य बाजारों में स्थान नहीं है। कुछ खनिज स्रोतों के स्थान इतने दुर्गम है जहां पहुँचना या निकट जाना अधिक मुश्किल है। केवल कोयला, dolemite, Slate तथा Lime stone खानों में कुछ ही मात्रा में उपलब्ध हो सकते है। भूटान जंगलों से भरपूर घिरा हुआ है। भूटान Power resources के क्षेत्र में भी परिपूर्ण है। हाल ही में इन दो क्षेत्रो पर जो प्रयास हुए हैं। ये भूटान के जीवन स्तर बढ़ाने में मदद दे सकते है।

भूटान की आधुनिकीकरण की नीति ने विकास खर्चों पर रुपया अधिक बढ़ाया है लेकिन Taxes को generate करने की क्षमता कम है। राष्ट्रीय खर्च तथा आमदनी में बहुत बड़ा फासला है। 1984 के Fiscal year के अन्त तक जो हिसाब बिठाया है वह यह है कि GDP (Gross

Domestic Product) 40 percent है तथा Revenue 10% है । 1970 के बाद से Modernization की योजना में खर्च और आमदनी के बीच बहुत बड़ा फासला रखा है जिसकी पूर्ति भारत सरकार से होती आ रही है । राष्ट्रीय खर्चों पर नियंत्रण करने के लिये भूटान ने केन्द्रीय सेवाओं पर 3% की कटौती कर दी (1981–82) । उन केन्द्रीय कर्मचारियों को जिलों में Decentralization Programme में बाहर भेज दिया गया (1982–83) 1982–83 में भूटान सरकार ने अपनी समस्त workshops, Telephone Company तथा Tourist Agency को Private Management को सौंप दिया । ऐसा अनुमान है कि इस प्रकार के कदम उठाने से efficiency मे वृद्धि होगी और सरकार की Subsidies में कमी होगी ।

भूटान के Foreign Trade में वृद्धि हुई है । भूटान का Imports Gross Domestic Product का 40% है, जबकि Exports 10% । लगभग भूटान का Trade भारत मे ही है । भविष्य मे बंगला देश, नेपाल तथा श्रीलंका से होने की सम्भावना है । भूटान के लिये निकटतम बाजार भारत का ही पड़ता है । भूटान मे Imports बहुत कुछ Aid Programme के अन्तर्गत आता है । भारत के अलावा भूटान का अन्य देशों से व्यापार 1979 से शुरू हुए थे लेकिन उनकी उपलब्धियां नगण्य ही है ।

Development Strategy

भूटान के विकास व निर्माण की योजनाओं का प्रारम्भिक काल उन प्राथमिकताओं से भरा हुआ था जो उसके अस्तित्व के लिये अनिवार्य थे । लेकिन बाद मे यानि देश की पांचवी योजना मे (1980-81 से 1986-87) प्राथमिकताऐं पूर्ण रूप से बदल गईं । पांचवी योजना में कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्रों को अधिक प्राथमिकता दी गई है । कृषि मे विकास यदि करना है तो स्थानीय स्रोतों पर निर्भर रहना होगा तथा स्थानीय नेतृत्व की भूमिका अधिक महत्व रखेगी । खाद्य क्षेत्र मे आत्म-निर्भरता का निरन्तर प्रयास है ।

भूटान के जंगलों पर देश की आर्थिक योजना बहुत कुछ निर्भर है । इस समय भूटान मे टिम्बर का अनुमान (500 मिलियन Cubic meters) है, जबकि हर वर्ष टिम्बर जो काटा जाता है वह केवल 2.5 million Cubic meters है । जबकि वास्तव में व्यापार में काम में आने वाला टिम्बर की मात्रा केवल 3 लाख Cubic meters है (हर साल)।

पाचवी योजना में यह प्रयास किया गया था कि भूटान के जंगलों की लकड़ी का सही प्रयोग हो। जंगलों में जाने वाले दुर्गम रास्तों पर भी सहज सड़क बन जाये। सरकार अभी भी लकड़ी के लट्ठों तथा सागवान लकड़ी के निर्यात पर नियन्त्रण रखे हुई है। अब लकड़ी के कारखानों का निर्माण शुरू हो गया है। 1983 मे लकड़ी पर आधारित औद्योगिक Complex का निर्माण हुआ है जिसमे Plywood, Black board तथा Door frames के उपलब्ध कराने की सुविधा होगी। इसका उत्पादन सिर्फ भारत को निर्यात करने का रहेगा। दूसरा Complex भी 1985 तक बनने की आशा है। इस Complex के निर्माण में आर्थिक सहायता UNO, Kuwait से आयेगी।

यद्यपि भूटान ने अपने देश मे मुद्राओं व सिक्कों का चलन 1950 में कर दिया था लेकिन वास्तविक रूप से भूटान की मुद्रा का चलन 1960 के बाद से माना जाता है क्योंकि आर्थिक विकास के लिये असली कदम 1961 की पंचवर्षीय योजना से उठाये गये। इसके फलस्वरूप भारतीय रुपया या नोट भूटान में आसानी से स्वीकृत किये जाते हैं। NU की मुद्रा भूटान मे पहली बार 1974 मे चलन मे आई। साथ में भूटान के दूर क्षेत्रों मे अभी भी बार्टर की अर्थव्यवस्था है। यदि आर्थिक संस्थाओं का जिक्र करें तो भूटान के नाम की एक बैंक है जिसका नाम बैंक आफ भूटान है तथा तीन गैर बैंक सस्थाएँ हैं। बैंक तथा अन्य संस्थाओं के सहयोग से बचत का भाव अंशतः फैलाया है।

सबसे महत्वपूर्ण भूटान के Industrialization programme में पानी के स्रोतों का सही दिशा में प्रयोग है जिससे देश को पानी के प्रयोग से जो बिजली प्राप्त होगी वह अर्थव्यवस्था को संतुलित रखेगी। Chukhe Hydel Project, जिसका निर्माण 1974 से शुरू हुआ था, अब लगभग पूरा हो गया है। यह Project भूटान का सबसे बडा निर्माण कहा जा सकता है। इस Project की Highest Capacity 336 Megawatts है। इस Project से अंशतः बिजली भूटान प्रयोग मे लायेगा और अधिकाश बिजली की मात्रा पश्चिमी बगाल को भेजी जायेगी। इससे जो भूटान को revenue प्राप्त होगी वह Loan के अदा करने में adjust होगी। भारत ने उक्त Project के लिये लगभग $ 200 million रु० दिया है। जिसमे 60% grant के रूप में और 40% Loan। Loan को 15 वर्ष में चुकाना है जिसकी ब्याज दर 5% होगी।

भूटान में Lime Stone का पूरी तरह से उपयोग नहीं हो रहा है। Cement Plant बनाने के लिये Lime Stone का प्रयोग होता है इसलिये उन क्षेत्रों पर अधिक बल दिया जा रहा है जिससे इस दिशा मे भी पर्याप्त ध्यान दिया जा सके। 1981 में पहला Cement Plant का श्रीगणेश हुआ था। इस Factory की उत्पादन शक्ति एक दिन मे 300 metric tonnes सीमेन्ट निकालने की है। लगभग आधी मात्रा तो सीमेन्ट Export कर दिया जाता है और सीमेन्ट ही भूटान से सबसे ज्यादा बाहर जाता है। दूसरा Cement Plant जिसकी Capacity 1500 metric-tonnes प्रतिदिन निकालने की है, 1985 में पूरा हो गया था। इसके अतिरिक्त एक Calcium Carbide Factory भी शुरू हो गई है जो Lime Stone Deposits का प्रयोग करेगी। इससे उत्पादित माल का निर्यात भारत को होगा।

Public Sector की भूमिका को संतुलन में लाने का प्रयास—

पिछले दो दशक से आधुनिकीकरण की दिशा मे जो प्रयास किये गये हैं उससे लगता है कि सरकार ने अपनी शक्तियों का अधिक केन्द्रीयकरण अपने हाथ में ही रखा जिसके फलस्वरूप लोगों में आत्म निर्भरता की भावना जागृत नहीं हो पायेगी। इसीलिये पाचवी योजना में Decentralization की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया गया है। लगभग कुल खर्चे मे से $\frac{1}{4}$ भाग उन Projects पर होगा जो स्थानीय आधार पर बनाये गये है।

एक प्रश्न यही है कि राजतंत्रीय व्यवस्था का स्वरूप क्या होगा? जब आर्थिक विकास धर्म तथा संस्कृति की अलग से व्याख्या करेगा तथा नये मूल्य क्या पुराने मूल्यों को हटाने में सफल होंगे। □□

भूटान में राजतन्त्र और उसका भविष्य

जिस प्रकार नेपाल, अफगानिस्तान, स्विटजरलैण्ड स्थल-रुद्ध देश हैं वैसे ही भूटान भी है। सन् 1947 में जब भारत स्वतन्त्र हुआ तो हिमाचल के अंचल में स्थित तीन राज्य ऐसे थे जिनकी गणना संवैधानिक दृष्टि से भारतीय राज्यों में नहीं थी। एक था नेपाल दूसरा था भूटान और तीसरा सिक्किम। सम्प्रभुता की दृष्टि से ब्रिटिश शासन काल मे सिक्किम की स्थिति एक संरक्षित राज्य की, नेपाल की एक सम्प्रभुता सम्पन्न राज्य की तथा भूटान की अर्द्ध-सम्प्रभुता राज्य की थी।

भारत के स्वतन्त्र होने पर नेपाल की सम्प्रभुता यथावत बनी रही। उसमे कोई अन्तर नही आया। सिक्किम के अधिकाश नागरिकों की इच्छाओं का आदर करते हुए सिक्किम को 1975 मे भारत मे मिला लिया गया। सन् 1949 मे जो भारत-भूटान सन्धि हुई उसकी धारा 2 में यह स्पष्ट प्रावधान है कि भूटान विदेशी मामलो में भारत के मार्ग-दर्शन का अनुसरण करेगा। यह प्रावधान कोई नया नही है। 1910 की ब्रिटिश-भूटान सन्धि मे भी यह प्रावधान था। किन्तु इस प्रावधान के कारण भूटान की सम्प्रभुता कुछ खण्डित होती है और इस कारण भूटान की सम्प्रभुता की स्थिति अर्द्ध-सम्प्रभुता सम्पन्न राज्य की है।

भूटान एक पहाडी राज्य है। वह छोटा भी है क्योकि उसका कुल क्षेत्रफल 18000 वर्गमील तथा 47000 वर्ग किलोमीटर तथा सन् 1971 की जनगणना के अनुसार उसकी जनसंख्या 13 लाख है। दुर्गम पहाड़ियो से परिवेष्टित इस छोटे से भू-भाग के आन्तरिक भागो में भी आवागमन सुगम नही है। उत्तर-दक्षिण अभिमुख पर्वत-श्रेणियो के कारण यह छोटा भू-भाग अनेक परस्पर अलग-थलग उपभागों मे [illegible] हो गया है। इन श्रेणियो की मध्यवर्ती घाटियों मे ही [illegible] पड़ती है। भूटान की प्राकृतिक संरचना का उसकी आर्थिक [illegible], धर्म आदि का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

भूटान में राज्यतन्त्र की स्थापना इसी [illegible]
किन्तु एक राजनीतिक [illegible] इसका जन्म

चुका था एवं यदि सांस्कृतिक दृष्टि से देखें तो नालन्दा विश्वविद्यालय के स्नातक पद्मगामन नामक बौद्ध भिक्षु के आगमन के साथ आठवीं शताब्दी में सांस्कृतिक एकीकरण की प्रक्रिया का सूत्रपात हुआ।

सत्रहवी शताब्दी से लेकर 1907 ई. में राज्यतन्त्र की स्थापना पर्यन्त की दीर्घ अवधि को भूटान के राजनैतिक इतिहास मे सत्ता केन्द्र विवर्तन काल माना जा सकता है। आरम्भ में धर्म राज की सत्ता सर्वोच्च थी। कालान्तर में लगभग समान शक्ति सम्पन्न दो सत्ताओं का उदय हुआ— एक धर्म राज और दूसरा देव राज। उन्नीसवी शताब्दी में पोनलोपो के रूप मे क्षेत्राधिकारियों की सत्ता प्रबल रूप में उभर कर आई। देवराज प्रबल पोनलोपों का मनोनीत व्यक्ति मात्र रह गया। उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चरण में विभिन्न पोनलोपो में जो भयंकर संघर्ष चला उसके परिणाम-स्वरूप 1907 मे राज्यतन्त्र की स्थापना हुई जिसमें ब्रिटिश अधिकारियों ने भी अपना योगदान किया। सन् 1903 मे धर्मराज के निधन के पश्चात् उनका अवतरण नही हुआ। इससे भी भूटान में वंशानुगत राज्यतन्त्र की स्थापना का मार्ग सुगम हुआ।

धर्म राज की अवतरण-व्यवस्था के प्रसंग मे इतना उल्लेख करना है कि यद्यपि तीन प्रकार का अवतरण (शरीर, वाणी और स्मृति का) मान्य था किन्तु व्यवहार मे स्मृति के अवतरण की ही प्रधानता थी। अवतरण की अवधारणा मे भूटानियों की अटूट श्रद्धा है, अतः यह स्पष्ट है कि धर्मराज के अनवतरण का पैतृक राज्य तन्त्र के सुदृढ़ होने में जो प्रारम्भिक वर्षों का योगदान रहा, वह नगण्य नहीं है।

भूटान के राजा की ट्रुक ग्यालपों संज्ञा है। इसके विपरीत सिक्किम का राजा चोगियाल कहलाता था। दोनों शब्द सर्वोच्च अधिकारी के लिए प्रयुक्त होते हैं किन्तु इनमे अन्तर यह है कि सांसारिक विषयों के सर्वोच्च अधिकारी को ड्रुक ग्यालपों एवं सांसारिक तथा आध्यात्मिक दोनों विषयो के सर्वोच्च अधिकारी को चोगियाल कहा जाता है। व्यवहार मे भी भूटान के ड्रुक ग्यालपो की यह नीति रही है कि वे जनता की धार्मिक आस्थाओं को पूरा सम्मान देते है तथा उनमे हस्तक्षेप नही करते।

भूटान मे राज्य तन्त्र का जीवन केवल 73 वर्ष का है। इस समय

जैसा उल्लेख किया जा चुका है प्रथम दो डुक ग्यालपो का पूरा ध्यान 1907 में नव-स्थापित राज्यतन्त्र की जड़ों को मजबूत करने में लगा रहा। इस दिशा में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं—

1. भूटान की राजधानी को पश्चिमी भाग से हटा कर पूर्वी भाग में स्थानान्तरण किया गया क्योंकि वह वांकचुंग लोगों का गढ़ था तथा आनुवंशिक राज्यतन्त्र के डुक ग्यालपो वांकचुंग वंश के थे।

2 शक्ति के केन्द्रीकरण की प्रक्रिया में जोंग पौनों वा क्षेत्रीय अधिकारियों की शक्ति को निर्मूल किया गया। 1907 से पूर्व जोंगपोनों का पद पैतृक सा बन गया था। राज्यतन्त्र की स्थापना के उपरान्त जोंगपौनों की नियुक्ति स्वय भूटान नरेश द्वारा की जाने लगी। अब तो भूटान में जितने जिलाधीश या जोंगपौन हैं वे सब डुक ग्यालपो द्वारा नियुक्त हैं। वे या तो राजा के खानदान के हैं या राज्य कर्मचारी हैं।

3. भूटानी लामाओं के साथ तालमेल बैठाने का प्रयास किया गया। इस प्रक्रिया में अनेक बातों का समावेश होता है जैसे धार्मिक बातों में राज्य का अहस्तक्षेप, भूटानी प्रमुख लामा की नियुक्ति, शनैः-शनैः राज्य के कारबार में लामाओं के प्रभाव को कम करना, लामा-परम्परा के अनुसार धार्मिक भावनाओं आदि के प्रति पूर्ण सम्मान आदि।

4. भूटान को बाहरी प्रभाव से पूरी तरह मुक्त रखने की चेष्टा की गई। इसके अन्तर्गत आधुनिक शिक्षा प्राप्ति के अवसरों का अभाव, सड़क निर्माण कार्यक्रमों का बहिष्कार, गैर-कानूनी पर्यटक जो फिर भूटान पहुँच जाए उनकी गतिविधियों पर निगरानी आदि। यही कारण था कि सन् 1958 में जवाहर लाल नेहरू की भूटान यात्रा के समय तक भारत-भूटान संयोजक किसी भी सड़क का निर्माण नहीं हुआ था।

तीसरे डुक ग्यालपो ने यह अनुभव कर लिया कि भूटान को शेष संसार से आज के वातावरण में पूर्णतया अलग रख सकना असम्भव है। अतएव राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों में सुधारों का समारम्भ किया गया।

उल्लेखनीय बात यह है कि जो भी शासन अथवा अन्य क्षेत्रों में

चौथे ड्रुक ग्यालपो राजगद्दी पर आरूढ़ हैं। आनुवंशिक राज्यतन्त्र भूटानी परम्परा के अनुरूप नही था। राजनीतिक इकाई के रूप में भूटान के उदय से धर्मराज और देवराज के दो सर्वोच्च पद रहे। धर्मराज के अवतरण की व्यवस्था थी एवं देवराज का लामा-समुदाय द्वारा चयन होता था। आनुवंशिक का भूटान की राज्य व्यवस्था में कोई स्थान नही था। इसतना एवं 1907 मे जब आनुवंशिक राज्यतन्त्र की स्थापना की गई तो भूटान एवं वहां की जनता के लिए यह नई चीज था। योग्य और शक्तिशाली किसी व्यक्ति का सर्वोच्च शासक बने रहना एक बात है और उस पद को आनुवंशिक बना देना भिन्न बात है। अतएव नवजात आनुवंशिक राजतन्त्र को सुदृढ़ बनाने में ही यदि प्रथम दो ड्रुक ग्यालपो का समय बीता तो कोई आश्चर्य नहीं। सन् 1907 से 1952 तक किसी भी प्रकार के राजनीतिक सुधारों की ओर उन्मुखता के कोई चिह्न नही दिखाई पडते। दो विश्व युद्ध विश्व व्यापी आर्थिक मन्दी आदि के क्षुब्ध वातावरण में अपने प्राकृतिक दुर्ग रूपी कुटीर सम देश में अप्रगतिशील परम्परा जीवन यापन करते हुए भूटानी अविचल बैठे दिखाई पड़ते हैं। गैरभूटानी अन्वेषकों का राजनीतिक-सुधार विहीन इस स्थिति पर आंसू बहाना व्यर्थ है।

बीसवी शताब्दी के चतुर्थ चरण मे वास्तविक सत्ता सम्पन्न राजतन्त्र एक पुरावशेष ही माना जाता है। किन्तु वह यदि भूटान मे है और बिना किसी शासन संकट के चल रहा है तो इसके प्रबल कारण होने चाहिए। प्रबल जनमत के विरोध के समक्ष ईरान के भूतपूर्व शाह को कोरे सेना बल के सहारे टिके रहना असम्भव हो गया एवं उसे अपने देश और सिंहासन दोनो से हाथ धोने पड़े। भूटान का जनमत राजतन्त्र के विरुद्ध क्यों नही हो पाया है—इसकी छानबीन भी समीचीन होगी। इस प्रसग मे भूटान की शासन प्रणाली के उन तत्त्वों पर भी ध्यान केन्द्रित करना होगा जो राज्यतन्त्र विरोधी शक्तियो को उभरने का न्यूनतम अवसर देते हैं। साथ ही शासन प्रणाली की उन विशेषताओं को भी प्रकाश मे लाना होगा जो प्रगति-उन्मुख होने पर जनमत को राज्यतन्त्र के समर्थक बनाये रखने मे सहायक हैं।

जो अब तक की स्थिति है, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि भूटान नरेश ड्रुक ग्यालपो सम्पूर्ण शक्तियो का केन्द्र है। वह उन सभी गतिविधियों का उद्गम स्रोत है-- जिनका सूत्रपात गत तीस वर्षों मे भूटान के जीवन को प्रगति के पथ पर अग्रसर करने के लिए किया गया है।

जैसा उल्लेख किया जा चुका है प्रथम दो ड्रुक ग्यालपो का पूरा ध्यान 1907 में नव-स्थापित राज्यतन्त्र की जड़ों को मजबूत करने में लगा रहा। इस दिशा में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं—

1. भूटान की राजधानी को पश्चिमी भाग से हटा कर पूर्वी भाग में स्थानान्तरण किया गया क्योंकि वह वांकचुंग लोगों का गढ था तथा आनुवंशिक राज्यतन्त्र के ड्रुक ग्यालपो वांकचुंग वंश के थे।

2. शक्ति के केन्द्रीकरण की प्रक्रिया में जोंग पौनो या क्षेत्रीय अधिकारियों की शक्ति को निर्मूल किया गया। 1907 से पूर्व जोंगपौनों का पद पैतृक सा बन गया था। राज्यतन्त्र की स्थापना के उपरान्त जोंगपौनों की नियुक्ति स्वयं भूटान नरेश द्वारा की जाने लगी। अब तो भूटान में जितने जिलाधीश या जोंगपौन हैं वे सब ड्रुक ग्यालपो द्वारा नियुक्त हैं। वे या तो राजा के खानदान के हैं या राज्य कर्मचारी हैं।

3. भूटानी लामाओं के साथ तालमेल बैठाने का प्रयास किया गया। इस प्रक्रिया में अनेक बातों का समावेश होता है जैसे धार्मिक बातों में राज्य का अहस्तक्षेप, भूटानी प्रमुख लामा की नियुक्ति, शनैः-शनैः राज्य के कारबार में लामाओं के प्रभाव को कम करना, लामा-परम्परा के अनुसार धार्मिक भावनाओं आदि के प्रति पूर्ण सम्मान आदि।

4. भूटान को बाहरी प्रभाव से पूरी तरह मुक्त रखने की चेष्टा की गई। इसके अन्तर्गत आधुनिक शिक्षा प्राप्ति के अवसरों का अभाव, सड़क निर्माण कार्यक्रमों का बहिष्कार, गैर-कानूनी पर्यटक जो फिर भूटान पहुँच जाए उनकी गतिविधियों पर निगरानी आदि। यही कारण था कि सन् 1958 में जवाहर लाल नेहरू की भूटान यात्रा के समय तक भारत-भूटान संयोजक किसी भी सड़क का निर्माण नही हुआ था।

तीसरे ड्रुक ग्यालपो ने यह अनुभव कर लिया कि भूटान को शेष संसार से आज के वातावरण मे पूर्णतया अलग रख सकना असम्भव है। अतएव राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों मे सुधारों का समारम्भ किया गया।

उल्लेखनीय बात यह है कि जो भी शासन अथवा अन्य क्षेत्रों में

प्रगति-मूलक कदम उठाए गए उनमें यह ध्यान रखा गया कि वे विकासात्मक हों, विप्लवकारी न हों।

सोगडू अथवा राष्ट्रीय सभा की स्थापना 1953 में की गई। उसके गठन में सभी क्षेत्रों और वर्गों के प्रतिनिधित्व का तो प्रावधान किया गया किन्तु पाश्चात्य ढंग की निर्वाचन प्रणाली को नहीं अपनाया गया। न वालिग मताधिकार है, न गुप्त मत पद्धति है और न प्रत्यक्ष निर्वाचन है। भूटान के केवल दक्षिणी भाग में निर्वाचन होता है जहाँ बहुत बड़ी संख्या में भूटानी नागरिकता प्राप्त नेपाली निवास करते हैं। वहाँ भी पारिवारिक मत प्रणाली अपनाई गई है। प्रत्येक परिवार का एक मतदाता होता है और उस मत को परिवार का मुखिया ही सामान्य रूप से डालता है। भूटान के शेष तीन भागों में अर्थात् पूर्वी, पश्चिमी और मध्य भूटान में राष्ट्रीय सभा सदस्यों का चयन होता है। जिलाधीश गाँव के मुखियों तथा परिवारों के बालिग मुखियों की सभा करता है तथा यह प्रयास रहता है कि सर्व सम्मति से सदस्य का चयन हो जाए। किसी एक व्यक्ति पर सहमति न होने पर चयन का निर्णय अदृष्ट के सहारे छोड़ दिया जाता है। गोली डालकर या इसी से मिलती-जुलती पद्धति से चयन कर लिया जाता है। इस पद्धति के गुण-दोषों पर टिप्पणी करना यहाँ उद्देश्य नहीं है। उद्देश्य केवल इतना ही है कि शासन में जनमत को स्थान देने की भूटान ने अपनी पद्धति अपनाई है।

राष्ट्रीय सभा में लामाओं का भी प्रतिनिधित्व होता है। किन्तु वहाँ भी केन्द्रीय तथा क्षेत्रीय संस्थाओं के प्रतिनिधियों के चयन का प्रावधान है।

राष्ट्रीय सभा में भूटान नरेश द्वारा मनोनीत सरकारी अधिकारी भी होते हैं।

इस प्रसंग में यह बात उल्लेखनीय है कि सन् 1973 में सोगडू के समक्ष यह प्रश्न आया कि दक्षिण-भूटान की भाँति सम्पूर्ण भूटान में निर्वाचन पद्धति को लागू कर दिया जाए तो सोगडू ने इस सुझाव को अस्वीकार कर दिया।

भूटान के जनजीवन में जो विशिष्ट लोग छाए हुए हैं—वे राज परिवार के हों, लामा समुदाय के हों, अथवा परम्परागत कुलीन वर्ग के हों—सभी दृष्टिकोण फूँक-फूँक कर कदम बढ़ाने का प्रतीत होता है। सोगडू में किसी प्रस्ताव के पारित होने के लिए यह प्रावधान है कि उस के पक्ष में कम से कम

दो-तिहाई मतों का समर्थन होना चाहिए। ऐसी कठोर व्यवस्था इस बात की द्योतक है कि भूटान का विशिष्ट वर्ग परिवर्तन के विरोध में न होते हुए भी उसकी दिशा और गति को इस प्रकार नियमित करना चाहता है कि आर्थिक सामाजिक, राजनीतिक सुधारों की गति मन्थर भले ही रहे किन्तु वे वातावरण को न्यूनतम सीमा से अधिक क्षुब्ध करने वाला न हो।

भूटान की न्याय प्रणाली में भी यही दृष्टिकोण स्पष्ट झलकता है। नीचे से ऊपर तक सभी न्यायालयों का यह लक्ष्य रहता है कि वादियों-प्रतिवादियों के मध्य झगड़ों को समझौते से तै कराया जाए। कानून की बारीकियों के आधार पर न्यायालयों द्वारा एक पक्ष को विजयी और दूसरे पक्ष को पराजित घोषित करने मे न्याय के दर्शन करने की परम्परा वहाँ विकसित नही होने दी गई है। कानून की बारीकियों के आधार पर महिनों-वर्षों की तपस्या के पश्चात् जो न्याय प्राप्त होता है वह जटिल समाज व्यवस्था में विशुद्ध वरदान होने पर भी सम्भवतः आवश्यक समझा जाय किन्तु भूटान की सरल समाज-व्यवस्था मे यदि उसे अभिशाप माना जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। अतएव गैर-भूटानियों द्वारा भूटानी न्याय प्रणाली को हास्यास्पद मानना या समझना इसी बात का द्योतक है कि भूटानी न्याय व्यवस्था को वहाँ परिप्रेक्ष्य में देखने की चेष्टा नही की गई।

यह तो तथ्य है कि राष्ट्रीय सभा के विधान में जो 1953 मे लागू किया गया यह प्रावधान था कि ड्रुक ग्यालपो की स्वीकृति होने के पश्चात् ही उसके द्वारा पारित किया गया कोई प्रस्ताव कानून बन सकता था। सोगडू के गठन मे ही यह सतर्कता बरती गई थी कि उसके निर्णयों में कोई आतुरता न आने पाए। उसके पश्चात् भी ड्रुक ग्यालपो का निषेधाधिकार यह स्पष्ट कर देता है कि तत्कालीन परिस्थितियो में वैयक्तिक अथवा खानदानी द्वेष, वैमनस्य या महत्त्वकाक्षा को प्रत्यक्ष अथवा प्रच्छन्न रूप से उग्र रूप धारण करने से पूर्व ही प्रभावहीन बनाना आवश्यक समझा गया। ड्रुक ग्यालपो की पहल पर यह निषेधाधिकार तो सन् 1973 मे समाप्त हो गया। किन्तु यह व्यवस्था तो अब भी यह देखी गई है कि ड्रुक ग्यालपो के मन में किसी प्रस्ताव के सम्बन्ध में आशका हो तो यह सोगडू मे अभिभाषण देकर उस प्रस्ताव को पुनर्विचार के लिए वापिस भेज सकता है। ड्रुक ग्यालपो का पद आनुवंशिक ही नही प्रभावी भी है और जब तक भूटानी विशिष्ट वर्ग के लोग भूटान को राजनीतिक इकाई बनाये रखने में तीव्र रुचि रखते हैं एवं इस हेतु

राज्यतन्त्र को आवश्यक समझते हैं तब तक भूटान नरेश का अप्रभावी बनाने का प्रयत्न भी निष्फल ही रहेगा। इस विचार के मूल में स्वयं भूटान की विशिष्ट परिस्थितियां है। स्थल-रुद्ध पहाड़ी छोटा देश, स्वकीय धर्म प्रधान संस्कृति से जकड़ी एवं बिखरी हुई थोड़ी जनसंख्या, विभिन्न सांस्कृतिक विचार धाराओं के दो विशाल देशों के अर्थात् चीन और भारत के मध्य स्थिति, एवं असंदिग्ध स्वातन्त्र्य प्रेम-ऐसी बातें हैं जो भूटानियों को गैर-भूटानी व्यक्तियों, विचारों पद्धतियों, तथा शैक्षणिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक आदि सभी संस्थाओं के प्रति अत्यन्त शंकालु बनाए हुए हैं। उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी में विश्व के रंगमंच पर घटित घटना चक्रों के अनुभव ने इस शंका को और भी अधिक दृढ़ किया है। किन्तु भारत एवं अन्य विदेशों में शिक्षित उदीयमान विशिष्ट वर्ग ज्ञान-विज्ञान, टैकेनोलोजी के सुफलों से भूटान को परिपुष्ट देखने को आतुर है।

इस उदीयमान विशिष्ट वर्ग में उन भूटानी-नागरिकता प्राप्त नेपालियों का उल्लेख आवश्यक है जो भूटानी राज्यतन्त्र व्यवस्था के विरोधी हों या न हों किन्तु भक्त नहीं हैं। वे राष्ट्रीय सभा सर्वोच्च सत्ता सम्पन्न बनाने के प्रबल समर्थक हैं। मूल भूटानी और भूटानी नेपालियों के बीच एक दरार है जो इस बात से स्पष्ट झलकती है कि दक्षिण भूटान में जहाँ भूटानी-नेपाली बसे हुए हैं, निर्वाचन प्रणाली की व्यवस्था है जबकि भूटान के अन्य तीन भागों में पूर्व, पश्चिम और मध्य चयन-पद्धति है। यह दरार अन्तर्निहित सन्देह की भी द्योतक है।

जैसा उल्लेख किया जा चुका है भूटानी नागरिकता प्राप्त नेपाली भूटान के दक्षिण भाग में बसे हुए हैं। इस भाग की सागर-स्तर से ऊँचाई 2500–3000 फीट है। भूटान के शेष तीन भागों कि सागर-स्तर से ऊँचाई 1 हजार से 14–15 हजार फीट तक है एवं यहाँ मूल भूटानियों की बस्तियाँ है। जब कभी कोई भूटानी-नेपाली कार्यवश अथवा वैसे ही वहाँ पहुँच जाता है तो सन्देह-दृष्टि का शिकार बने बिना नहीं रहता। यह स्थिति इस बात की ओर संकेत करती है कि कम से कम निकट भविष्य तो भूटान के इन दो प्रकार के नागरिकों का राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एक मत होकर शान्त या अशान्त तरीके से अपनी आवाज को बुलन्द करना अत्यन्त सन्दिग्ध है।

भूटान में राजनीतिक दल नहीं है। आधुनिक प्रकार के राजनीतिक

दलों के पनपने के लिए अनुकूल जलवायु मैदानी-स्थलों में उपलब्ध होती है। पहाड़ी इलाकों में नहीं। सन् 1952–53 में दक्षिणी भूटान में बसे कुछ भूटानी-नेपालियों ने भूटान-कांग्रेस की स्थापना की थी और यह सोचा था कि उसकी गति-विधियों का संचालन केन्द्र भारत के किसी स्थल पर होगा। किन्तु भारत सरकार के अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष किसी रूप में सहायता समर्थन के अभाव में उसका शैशव अवस्था में ही अन्त हो गया।

सारांश यह है कि भूटान का जहाँ जन-जीवन सरल है, वहाँ की स्थिति उलझनों से परिपूर्ण है। वाँगचुंग एवं दोर्जी वंशों के अलावा और भी वंश हैं। भूटानी कौमी भावना लामा-धर्म और भूटानी भाषा इन्हें एक सूत्र में बाँधे हुए है। जो भी वंशानुगत ईर्ष्या और द्वेष अवशेष हैं वे दबे हुए हैं। दो-दो विशाल देशों के बीच स्थिति, भूटानी-नागरिकता प्राप्त नेपालियों की उपस्थिति आर्थिक दृष्टि से अल्प-विकसित, कम जनसंख्या का पहाड़ी एवं स्थल रूद्ध देश ऐसी बातें हैं जिनमें दूरदर्शी भूटान विशिष्ट वर्ग के लोगों के मन में यह बात दृढ़ता से बैठा दी है कि पाश्चात्य प्रणाली के लोकतन्त्र को लाने का प्रयास करना भूटान के अस्तित्व को समाप्त करने की दिशा में कदम उठाने के समान होगा। वाँगचुंग वंशीय राज्य तन्त्र जब तक चलता है तभी तक भूटान की स्वतन्त्र सत्ता है। सभी भूटानी वंशों के लोग यह समझ गये प्रतीत होते हैं। वाँगचुंग राजवंश की स्थापना ऐतिहासिक घटनाचक्रों का परिणाम मात्र था। उसके बाद समाप्त होने अथवा आशक्त होने का परिणाम क्या होगा–यह तो भविष्य के गर्भ में है। किन्तु उन्हें यह भी स्पष्ट दीखता है कि इस राज्य वंश की समाप्ति के साथ वहाँ राज्य तन्त्र की समाप्ति हो जाएगी। उन्हें यह भी स्पष्ट दीखता है कि वहाँ यदि भूटानी लोकतन्त्र स्थापित हो भी जाएगा तो वह अत्यन्त अल्पायु होगा। वह किस विचारधारा का शिकार बनेगा, यह तो निश्चित नहीं किन्तु भूटानी जन-जीवन की पद्धति निर्मूल हो जाएगी एव भूटान किसी बड़े देश का एक छोटा जिला अथवा तहसील मात्र रह जाएगा। भविष्य की यह आशंका विभिन्न वंशों के आधिपत्य को स्वीकार कराए हुए है।

हिन्दू शास्त्रों में तो इसका स्पष्ट उल्लेख है कि राजा में ईश्वरीय अंश होता है। यूरोप में राज्य उत्पत्ति का दैवी सिद्धान्त मध्यकाल में प्रतिष्ठित रहा। किन्तु बौद्ध धर्म में ऐसी किसी मान्यता को स्थान नहीं है। भूटान का

राज्य तन्त्र केवल उपयोगिता के आधार पर प्रतिष्ठित है। जिस दिन अधिकांश भूटानियों का यह संकल्प हो जाएगा कि इस राज्य तन्त्र को या वर्तमान राजवंश को समाप्त करना है–भूटान की स्वतन्त्र सत्ता रहे या न रहे, तभी वहाँ से राज्य तन्त्र को या वर्तमान राजवंश को समाप्त करना है–भूटान की स्वतन्त्र सत्ता रहे या न रहे, तभी वहाँ से राज्य तन्त्र समाप्त हो जाएगा। भूटान के ड्रुक ग्यालपो पर यह निर्भर करता है कि वे राष्ट्रीय सभा के माध्यम से भूटानियों को कितना अपने साथ ले चलने में समर्थ होते हैं तथा अपने लिए भूटानी कब तक राज्य तन्त्र को ही सर्वश्रेष्ठ मानते रहते है। राष्ट्रीय सभा की गठन प्रणाली, भूटान की न्याय पद्धति अन्य धर्मों के प्रचार पर प्रतिबन्ध आदि सब इसी बात को ओर संकेत करते हैं। भारतीय सहायता से आर्थिक विकास की ओर अग्रसर होना तथा भूटानियों को अपने पैरों पर खड़े होने के योग्य प्रत्येक दिशा में बनाने की चेष्टा करना भी इस बात के द्योतक हैं।

भूटानियो को दो मे से एक अप्रिय वस्तु स्थिति को चुनना होगा–या तो आनुवांशिक सप्रभावी राज्य तन्त्र अथवा भूटान की स्वतन्त्र सत्ता का लोप।

गोरखालैंड समस्या

दार्जलिंग के निकट कलिंग पोंग में अचानक ही हिंसा की वारदातें शुरू हुईं। हिंसा की वारदात गोरखा नेशनल लिबरेशन फ्रन्ट के अध्यक्ष श्री सुभाष घीशिंग द्वारा शुरू हुई। जिन्होंने प्रधान मंत्री को पत्र के द्वारा चेतावनी दी कि जब तक गोरखालेण्ड के प्रान्त की मांग स्वीकार नही होगी तब तक दार्जलिंग तथा उससे लगी हुई पर्वतीय क्षेत्र मे आग की ज्वाला धधकती रहेगी। मुख्य मांग में से ये कहा गया था कि भारत नेपाल के बीच जो 1950 में सन्धि हुई थी उसमें सातवी धारा को समाप्त कर देना चाहिये। जिसके अन्तर्गत वे सभी लोग नेपाल के सदस्य के रूप में झलकाये गये हैं न कि भारत के। 13 जुलाई को अध्यक्ष ने अपने समर्थको से कहा था कि यदि 1987 तक गोरखालैण्ड की मांग को स्वीकार नही किया गया तो, "हम उन सभी सरकारी कर्मचारियों को राज्य से बाहर फेंक देंगे। यही नही हम डिप्टी कमिश्नर, एस० पी० को दार्जलिंग से भगा देंगे और प्रशासन को अपने हाथों में ले लेंगे।" 17 जुलाई को यह घोषणा कि हमारे आन्दोलन का स्वरूप शीघ्र ही ऐसी स्थिति में हो जाएगा जिसमे या तो हम समाप्त हो जायेंगे या गोरखालैण्ड प्राप्त करके रहेंगे। हम अपनी कटारें अपनी म्यान से निकाल लेंगे और उन सिपाहियों को कत्ले आम कर देंगे। अध्यक्ष की यह भी शिकायत है कि पश्चिमी बंगाल सरकार ने दार्जलिंग क्षेत्र की उपेक्षा की है। नेपाली भाषा प्रान्त की दूसरी सरकारी भाषा मानी गयी है। यद्यपि पश्चिमी बंगाल के विकास के लिये बहुत कुछ धन राशि दी है यहां तक को दार्जलिंग जिले को स्वायत्तता दी है। परन्तु अध्यक्ष का यह आग्रह है कि उसे पश्चिमी बंगाल से सहायता नही चाहिये अपितु केन्द्र से चाहिये।

दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि क्या इस प्रकार निरन्तर उठती हुई समस्याएँ किस प्रकार का स्वरूप धारण कर लेंगी ।

उक्त आन्दोलन से जितनी परेशानी केन्द्र को नही है उतनी कि पश्चिमी बंगाल सरकार का यह संदेह है कि आन्दोलन कांग्रेस के नेताओं तथा गोरखा नेपाली गठबन्धन की साजिश से शुरू है । पश्चिमी बंगाल सरकार इस आन्दोलन को बड़ी गंभीरता से ले रही है और इसे मिटाने का पूरा-पूरा प्रयास कर रही है ।

वामपंथी सरकार का यह भी सन्देह है कि उनके प्रान्त में उसी प्रकार की स्थिति पैदा कर देना चाहते हैं जैसे कि असम, मिजोरम में हुई थी । अतः एक बार पुन केन्द्र राज्य-सम्बन्ध की समस्या उठ खड़ी हुई है और इस केन्द्र राज्य सम्बन्ध का समाधान तभी हो सकता है यदि केन्द्रीय सरकार का आन्तरिक मामला समझे । पश्चिमी बंगाल सरकार ने केन्द्र को चेतावनी भी दी है गोरखा नेपाली नेताओ से सीधे बात न करे । गोरखा नेपालियों के लिए चलाया गया आन्दोलन इस बात का संकेत देता है कि 1950 से चली आ रही भारत नेपाल संधि में कही न कहीं ऐसी खामी है जिसने आज भारतीय नेपालियों को विद्रोह करने के लिए बाध्य किया, आन्दोलनकारी अध्यक्ष सुभाष घीशिंग का कहना है कि संधि के तहत धारा 6 व 7 हमेशा से आपत्तिजनक रही है और इसीलिए आन्दोलनकारी नेता धारा 6 व 7 को समाप्ति के समर्थन में है ।

धारा 6 व 7 उन भारतीयों तथा नेपालियों को सुविधा प्रदान करता है जो एक दूसरे राष्ट्र मे रह रहे है । कहने का अर्थ यह कि नेपाल मे रह रहे भारतीयो और भारत मे रह रहे नेपालियों को पारस्परिक सुविधायें देने का प्रावधान है । धारा 7 मे उन सुविधाओ का जिक्र किया गया है जो एक दूसरे मे निवासी रह रहे हैं । उदाहरण के लिए रहने की सुविधा, प्रापर्टी का स्वामित्व, व्यापार करने की सुविधा और अन्य इसी प्रकार की सुविधाओं का प्रावधान है । परन्तु संधि मे दी गयी सुविधाओ का ठीक प्रकार से पालन न होने के कारण यह असन्तोष प्रारम्भ हुआ है । धारा 7 के समाप्त कर देने का अर्थ होगा कि वे भारतीय जो नेपाल में रह रहे है उनको उन सुविधाओ से वंचित कर दिया जाये ।

पृष्ठ भूमि :—

भारत स्वतन्त्र होने के बाद से ही निरन्तर राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के लिए प्रयास होते रहे है । परन्तु कुछ वर्षों से भारतीय एकता

को खतरा बना हुआ है और भारत की अखण्डता पर आज एक प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। कुछ वर्ष पूर्व पंजाब व आसाम दो ऐसे प्रान्त थे जिन्होंने अपनी स्थानीय समस्या को ऐसा रूप दिया कि वह क्षेत्रीय समस्या न रह कर राष्ट्रीय प्रश्न के रूप में उभर कर आयीं जिसके परिणामस्वरूप भारत के अन्य प्रान्त भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। इन दो प्रान्तों की समस्या सुलझ भी नहीं पायी थी कि निरन्तर ज्वलन्त बनी हुई है जो कि गोरखालैण्ड की समस्या के रूप में अधिक प्रचलित हो गयी। दार्जिलिंग के पर्वतीय क्षेत्र में कुछ गोरखा नेपालियों ने अपनी उस पुरानी समस्या को एक बार फिर से ताजा कर दिया जब जी. एन. एल. एफ. के नेता घीशिंग ने तमिल समस्या की तरह एक जातीय प्रश्न उठा दिया। 1980 से पूर्व सुभाष घीशिंग एक अपरिचित और अनजान व्यक्ति थे लेकिन 1980 में जी. एन. एल. एफ. की स्थापना की और उसी से जुड़ी हुई प्रमुख मांग को क्षेत्रीय स्तर पर प्रस्तुत किया। पश्चिमी बंगाल की विधान सभा में इस समस्या को महत्व इसलिए भी दिया क्योंकि सुभाष घीशिंग के नेतृत्व मे घटित दार्जलिंग व कलिंग पोग मे हिंसात्मक वारदातों के कारण इस समस्या को और भी महत्व मिल गया। यद्यपि पश्चिमी बंगाल की सरकार तथा विरोधी नेताओं का यह मत था कि इस प्रकार की हिंसात्मक कार्यवाही केवल उन मुठ्ठी भर भटके हुए तथा विक्षिप्त लोगों का काम है जिसको विधान सभा के स्तर पर महत्व नही मिलना चाहिये। उनका यह मानना है कि हॉल ही में गोरखालैण्ड की समस्या ज्वलन्त हुई है उसके तीन सम्भावित कारण हैं :—

(1) मेघालय से हाल ही में 5000 नेपाली खान में काम करने वाले निकाल दिये गये जिसके कारण सुभाष घीशिंग को एक ऐसा मौका मिला जिसको उसने अपने हाथ से नही जाने दिया। यदि ये नेपाली निकाले न गये होते तो अपनी मांग का आधार नही मिल पाता। इन 5000 नेपालियों के साथ मेघालय सरकार ने न केवल उनको निकाला उनके साथ जो दुर्व्यवहार किया उससे वो बौखला गये। मेघालय सरकार ने उनको बेरहमी से ट्रक में डालकर गोहाटी छोड़ दिया। उसके पश्चात् असम सरकार ने 5000 नेपालियों को उठाकर उत्तरी बंगाल की सीमा पर डाल दिया। उसके पश्चात पश्चिमी बंगाल ने अपनी बला को टालने के लिए उनको नेपाल की सीमा पर ले जा पटका। इस प्रकार तीन प्रान्तो की सरकार ने खान में काम करने वाले नेपालियो के साथ घोर अन्याय किया। इस अन्याय को समग्र नेपाली जाति सहन नही कर सकती थी और परिणामस्वरूप जातीय प्रश्न राष्ट्रीय स्तर पर उभर

कर आ गया । यह बात दूसरी है कि गोरखालैण्ड नेपालियों की भलाई के लिये नेतृत्व कौन करता है यह एक संयोग ही है कि एक अपरिचित व अनजान व्यक्ति के हृदय में अचानक आग भड़क उठी, नेतृत्व सुभाष घीसिंग के हाथ में आ गया । सुभाष घीसिंग के द्वारा उठाये गये प्रश्नों तथा उससे जुड़ी हुई माँगों को एक हद तक स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि 1950 की सन्धि के अनुसार भारत सरकार की ये जिम्मेदारी है कि यह समग्र नेपाली जाति की भलाई के लिए सन्निहित सुविधाओं को प्रदान करें। उनके जीविकोपार्जन की व्यवस्था करे ।

(2) दूसरा सम्भावित कारण यह हो सकता है कि सुभाष घीसिंग के द्वारा उठायी गयी माँग का सम्बन्ध उन ऐतिहासिक जड़ों से है जिसकी एक पुरानी कहानी है अधिक अतीत में जाने की आवश्यकता नहीं केवल यह कहना पर्याप्त होगा कि दार्जलिंग और इसका पर्यावरण हमेशा से ही नेपाल, सिक्किम तथा भूटान के बीच झगड़े का कारण बना रहा है । 18वीं तथा 19वी शताब्दी में इन झगड़ों का प्रारम्भ हुआ । अंग्रेजों के उपनिवेश नीति ने नेपाल के एक छोटे से हिस्से को हड़प कर सिक्किम को उपहार के रूप में दे दिया और फिर कुछ दिन बाद फिर नेपाल को दे दिया। लगभग सौ साल तक नेपाली लोग नेपाल से दार्जलिंग में बसते रहे और फिर बाद में कुछ हिस्सा सिक्किम की ओर बढ़ गया चूंकि ये नेपाली लोग शारीरिक रूप से तन्दुरुस्त और मेहनती थे, इसलिए पर्वतीय क्षेत्र में इनका उपयोग एक श्रमिक के रूप मे ही किया गया ।

यह एक बड़ा विचित्र संयोग रहा कि कम्युनिस्ट पार्टी पहली पार्टी थी जिसने 1946 में यह माँग उठायी थी कि गोरखाओं को एक अलग से भूखण्ड मिलना चाहिये । 1959 में इसी कम्युनिस्ट पार्टी ने अपनी गलती का सुधार करते हुए इस माँग की आलोचना की, जो उन्होने 1946 में की थी । अपनी गलती को सुधारते हुए कम्युनिस्ट पार्टी ने कहा कि पर्वतीय निवासियो के लिए क्षेत्रीय स्वायतत्ता होनी चाहिये । तब तक पहिया अपना पूरा चक्र पूरा कर चुका था । कम्युनिस्ट पार्टी की सुधारी गयी गलती का असर गोरखा नेपालियों पर न्यूनतम था । एक बार नेपालियों को अपने अस्तित्व के लिए रास्ता मिल जाने के बाद वापस जाना उनके लिए असम्भव था ।

किसी भी आन्दोलन को प्रारम्भ करना आसान होता है लेकिन उसकी निरन्तरता का निर्वाह करना बहुत मुश्किल होता है । जब सुभाष घीसिंग ने

आन्दोलन को प्रारम्भ किया था तब ऐसा लगता था कि उसका जोश केवल कुछ ही दिनों तक चल पायेगा क्योंकि आन्दोलन का प्रारम्भिक स्वरूप अव्यवस्थित तथा योजना विहीन था। परन्तु ज्यों ज्यों दिन बीतते गये आन्दोलन न केवल जोर पकड़ता गया अपितु उसमें वे सभी लक्षण स्वतः ही शामिल होते गये, जैसे कि किसी योजना युक्त आन्दोलन होता है। इसका श्रेय सुभाष घीशिंग के कुछ विशिष्ट आन्तरिक गुणों को दिया जा सकता है। घीशिंग जी एन. एल. एफ. को गोरखालैण्ड सेना कहकर पुकारते हैं। उनका यह बार-बार दोहराना यद्यपि बड़ा सीधा सादा लगता है लेकिन उनकी बात में कहीं न कहीं औचित्य है। उनका कहना है कि "बंगालियों के पास बंगाल है, गुजरातियो के पास गुजरात है, मिजो के पास मिजोरम है, तथा मणिपुरी के पास मणिपुर है तो हम गोरखाओं के पास गोरख क्यों नही है।" सुभाष घीशिंग का यह तर्क भी किसी हद तक ठीक लगता है जब वो कहते हैं कि "उस छोटे से सिक्किम को विधान सभा में 30 सदस्य हैं जबकि उसकी तुलना में दार्जलिंग की जनसंख्या तिगुनी होते हुए भी यहाँ से केवल तीन सदस्य विधान सभा के लिए चुने जाते हैं।" घीशिंग उस दहाड़ती हुई भीड के सामने अपनी खुखरी निकाल लेते हैं और घोषणा करते है, "यह खुखरी वर्षों से चले आ रहे केन्द्र तथा प्रान्त के अन्याय को जवाब है।"

भारत की प्रमुख चौदह दलीय समिति ने कलकत्ता में यह घोषणा की कि घीशिंग का यह आन्दोलन राष्ट्र विरोधी, विध्वंसकारी, तथा व्यक्ति विरोधी है। इस समिति ने यह भी अभियान छेड़ने का निर्णय किया कि घीशिंग के द्वारा छेड़ा गया यह आन्दोलन किसी न किसी तरह समाप्त किया जाये। परन्तु क्या ऐसा हो पायगा इसमे बड़ा सन्देह है। पश्चिमी बंगाल के मुख्य मन्त्री ज्योति बसु वचनवद्ध हैं कि दार्जलिंग क्षेत्र को एक स्वायत्तता मिले परन्तु साथ में इनको उन सुविधाओं से वंचित रखना चाहते हैं जो कि मिलनी चाहिये थी। दार्जलिंग का जिला वर्षों से उन सुविधाओं से वंचित है जिनको कि हम आवश्यकताओं को श्रेणी में स्वीकार करते हैं। उदाहरण के लिये दार्जलिंग जिले में वर्षों से बिजली की समस्या है। पानी का अत्यधिक अभाव, भयभीत कर देने वाली बेरोजगारी तथा अन्य ऐसी समस्याएं हैं जिससे वहां के लोग पीड़ित हैं। परन्तु पश्चिमी बंगाल सरकार के पास इन समस्याओ का उपचार करने के लिए कोई समाधान नही है।

मुख्य मंत्री ज्योति बसु अपने आंकड़ों के सहारे से समाधान चाहते हैं कि दार्जलिंग की तुलना में ऐसे और भी जिले हैं जहाँ पर समस्या और भी गम्भीर है। ज्योति बसु ने अपना तर्क इस प्रकार प्रस्तुत किया कि "दार्जलिंग जिले के विकास के लिए प्रति व्यक्ति खर्चा 250/= प्रति वर्ष रखा गया है, जबकि इसकी तुलना में अन्य जिलों पर केवल 112/= रुपये खर्च किया जाता है।" यह आंकड़े यद्यपि सही हैं और निसन्देह पश्चिमी बंगाल के कुछ जिलों जैसे बंकुरा तथा पुरलिया अत्यधिक पिछड़े हुए हैं परन्तु घीशिंग इन आंकड़ो के भुलावे में नहीं आने वाला है उसके हृदय में अन्याय की आग इतनी धधकी हुई है कि उसके लिये यह सभी तर्क निरर्थक है। उसका यह भी कहना है कि मैदानी लोग बड़े ऊँचे पद पर हैं परन्तु दार्जलिंग के मूल निवासी रोजगार के लिये भीख मांगते हैं। ज्योति बसु घीशिंग के आन्दोलन को राजनीतिक दृष्टि से दबा देना चाहते हैं।

ज्योति बसु की यह शक्ति से बाहर है कि वह भारत व नेपाल के बीच सन्धि में कोई परिवर्तन ला सकें। उन्हें नई दिल्ली व नेपाल से भी कोई आशा नहीं है कि वो इस समस्या को सुलझाने में मदद कर पायेंगे। हजारों नेपाली भारत में प्रवेश करते हैं और रोजगार की तलाश में इधर-उधर भटकते हैं। ये इन नेपालियों को अपेक्षाकृत भारत सरकार द्वारा अधिक सुविधाएँ प्राप्त हैं बजाये वे लोग जो जहाँ के मूल निवासी हैं। यह भेदभाव भी घीशिंग को अधिक पीड़ित कर रहा है। ज्योति बसु के पास विकल्प न्यूनतम है। ज्यादा से ज्यादा वे यही कर सकते हैं कि भारतीय नेपाली जो मूल निवासी हैं उनको रोजगार दें तथा शैक्षणिक संस्थाओं में प्राथमिकता प्रदान करें।

गोरखालैण्ड की समस्या से जुड़ी हुई भारत नेपाल सन्धि का विश्लेषण

गोरखा नेपालियों की समस्या का सम्बन्ध बहुत कुछ 1950 की सन्धि से है जो भारत और नेपाल के बीच में हुई थी। भारत और नेपाल के बीच की सीमा इतनी खुली हुई है जिसके जरिये व्यापार का आयात-निर्यात होता रहता है।

भारत के व्यापारियों का पैसा नेपाल में पर्याप्त मात्रा में लगा हुआ है और नेपाली लोग भी भारत से प्राप्त उन सुविधाओं का प्रयोग करते हैं जो मूल नेपाल निवासियों तक को प्राप्त नहीं हैं और इसी कारण से सुभाष घीशिंग की यह शिकायत है कि 1950 की सन्धि में उन धाराओं को समाप्त कर देना चाहिये जो नेपालियों के बीच में भेदभाव उत्पन्न करती है। भारत और नेपाल के बीच मे जो 40 वर्ष से सम्बन्ध बन पाये हैं उनकी प्रकृति कुछ इस

प्रकार की बन पड़ी है जिसमें दोनों ही देश अपने अच्छे राष्ट्रवाद से अनुप्रेरित हैं जिसके फलस्वरूप अविश्वास की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ी है। यह बात सही है कि दोनों ही राष्ट्र अपने अपने हितों की पूर्ति करने में लगे हैं लेकिन यदि कही मतभेद भी है तो उसको पारस्परिक समझ से सुलझाया जा सकता है। भारत की सीमा के अन्तर्गत नेपालियों की समस्या इसलिये भी प्रबल हो गई है क्योंकि प्रान्तीय सरकार गोरखालैण्ड की मांग करते समय घीशिंग ने यह अच्छी तरह जान लिया था कि उनकी मांगों को तभी पूरा किया जा सकता है कि जब केन्द्र सन्धि मे भारी परिवर्तन करें।

केन्द्र-राज्य सम्बन्ध

पंजाब, आसाम, मिजोरम तथा अन्य प्रान्तों की तरह पश्चिमी बंगाल मे उठी गोरखालैण्ड की समस्या ने केन्द्र-राज्य सम्बन्ध को एक बार फिर से ताजा कर दिया है जब कभी भी किसी प्रान्त मे कोई समस्या उठ खड़ी होती है तो एक सविधानी संकट सामने आता है कि क्या अमुख समस्या को प्रान्त का आन्तरिक मामला समझा जाये या उस मामले को सुलझाने के लिये केन्द्र का हस्तक्षेप हो जिस प्रकार पंजाब मे अकाली दल कि समस्या उठी थी तो केन्द्र के सामने एक भारी समस्या थी कि पंजाब की समस्या को क्या उसे आन्तरिक मामला समझा जाय या राष्ट्रीय हित में हस्तक्षेप किया जाये। ऐसी घटनायें अन्य प्रान्तों मे भी हुई थी और बाद में वे राष्ट्र के लिये सिरदर्द हो गईं, जब जुलाई के महिने में पहली बार सुभाष घीशिंग ने हिंसात्मक कार्यवाहियों के साथ गोरखालैण्ड की समस्या को उठाया तो पश्चिमी बंगाल के मुख्य मंत्री पर अधिक प्रभाव पड़ा और उन्होने केन्द्र पर आरोप लगाया। यह आन्दोलन कांग्रेस (आई) के कार्यकर्त्ताओं के भड़काने से हुई है। केन्द्र ने गोरखालैण्ड की समस्या को पश्चिमी बंगाल का आन्तरिक मामला न समझकर उसे राष्ट्रीय समस्या का रूप दिया। पश्चिमी बंगाल की सरकार यह नही चाहती थी कि केन्द्र किसी भी प्रकार से मामले में निहस्तक्षेप करे। इस संघर्ष मे केन्द्र-राज्य के सम्बन्ध बिगड़ गये हैं। इस प्रकार जब से यह समस्या उठी है तब से दोनों मे आरोप-प्रत्यारोप होते रहे हैं और समस्या का समाधान नही हो पाया है। समस्या का रूप और भी उग्र होता जा रहा है जिससे यह भय उत्पन्न हो गया है कि कही गोरखालैण्ड की समस्या राष्ट्रीय समस्या के रूप मे उभर कर न आ जाए। बहतर यही होगा कि केन्द्र-राज्य अधिक विवाद मे न पड़ते हुए कुछ ऐसे ठोस कदम उठाये जिस पर राष्ट्रीय एकता व अखण्डता पर कोई आंच न आये।

गोरखालैण्ड की माँग दार्जेलिंग में इतना जोर पकड़ गयी कि गोरखा-लीग ने सी. पी. एम. सरकार से अपने काम चलाऊ समझौतों को रद्द कर दिया और अपने सम्बन्ध तोड़कर जी. एन. एल. एफ. के आन्दोलन में शामिल हो गये। गोरखा लीग के अध्यक्ष पी. टी लाम्बा ने दार्जेलिंग में उन सभी कार्यकर्त्ताओं को एक विज्ञप्ति जारी की जिसमें कहा गया कि उचित ही है बल्कि कानूनी व संवैधानिक दृष्टि से आवश्यक भी है। इस प्रकार गोरखा लीग को अलग हो जाने से वामपंथी सरकार के लिये एक सरदर्द है। पश्चिमी बंगाल के मार्क्सवादी कार्यकर्ताओं ने गोरखा लीग के निर्णय से अधिक चिन्तित हुये हैं जिन्होंने गोरखालैण्ड के समर्थन मे अपने आप को शामिल कर लिया है। गोरखा लीग के शामिल होने से इतनी चिन्ता बढ़ गयी है कि उन्होंने सुभाष घीशिंग की माँगों का उपहास अपने समाचार पत्रों के कार्टूनों से जाहिर करना शुरू कर दिया है।

वे कार्टून न केवल समाचार मे दिखाये गये अपितु कलकत्ते की सभी दीवारों पर चिपकाये गये जिससे यह स्पष्ट होता है कि प्रान्त के केन्द्र से सम्बन्ध धीरे-धीरे बिगड़ते नजर आ रहे हैं। एक कार्टून का जिक्र कर देना यहाँ आवश्यक है जिससे लगता है कि वामपंथी सरकार केन्द्र से नाराज है। एक कार्टून में सुभाष घीशिंग को उस पहाड़ी बस्ती के मीनार के ऊपर जिसके आस-पास के सभी घर जल रहे हैं और वह खुखरी को हाथ मे उठाये हुए कह रहा है कि "मुझे किसी से डर नहीं है, क्योंकि राजीव गाँधी मेरे साथ है।" ठीक इस कार्टून के पास एक कार्टून चिपकाया गया है जिसमें सी. पी. एम. का नारा इन शब्दो मे लिखा हुआ है कि "हम अपनी खून की अन्तिम बूँद तक गोरखालैण्ड के आन्दोलन को पराजित करेंगे।"

यह दोनों कार्टून यद्यपि गोरखालैण्ड की माँग तथा केन्द्र के रवैये को व्यंगात्मक तरीके से व्यक्त करते हैं। पश्चिमी बंगाल की सरकार को यह पूर्ण विश्वास हो गया है कि गोरखालैण्ड का आन्दोलन केन्द्र के प्रोत्साहन से आगे बढ़ रहा है। केन्द्र पर यह आरोप है कि वर्षों से चली आ रही वामपंथी सरकार को कमजोर कर देना चाहती है। दूसरी ओर इस आरोप का खण्डन करते हुये केन्द्र का कहना है, गोरखालैण्ड की माग प्रान्त का आन्तरिक मामला नही समझा जा सकता और केन्द्र का हस्तक्षेप करना जरूरी है।

सिक्किम का राजनीतिक विकास व नवीनतम आयाम

भौगोलिक परिचय

दुनियां के नक्शे को देखकर यह मालूम होता है कि सिक्किम एक बहुत छोटा राज्य है जिसके पूर्व में भूटान और पश्चिम में नेपाल है। दक्षिण में दार्जिलिंग के पहाड़ी क्षेत्र स्थित हैं। उत्तर मे तिब्बती क्षेत्र हैं जो कि चीन के कब्जे में हैं। इसका क्षेत्रफल 2,818 वर्ग मील है।

सिक्किम एक पहाड़ी राज्य है। कोई भी स्थान मैदानी नही कहा जा सकता। महत्वपूर्ण नदियों मे दो मुख्य नदियों का नाम लिया जा सकता है। पहली नदी का नाम ङिचू है जिसने सिक्किम और भूटान के बीच में एक प्राकृतिक सीमा को निर्धारित कर दिया है। सिक्किम के उत्तर, पूर्व और पश्चिम की ओर बहुत से पहाड़ हैं जो हमेशा बर्फ से ढके रहते हैं। सबसे ऊँचे पहाड़ का नाम कंचिनचिंगा हैं जिसकी ऊंचाई 28,146 फीट है। इस पहाड़ को दुनियां में तीसरे नम्बर का गिना जाता है। दूसरी नदी का नाम टीस्टा है जिसका सिक्किम के लिए भौगोलिक महत्त्व हमेशा से रहा है। इस नदी का पानी सम्पूर्ण राज्य में बहता हुआ भारत के मैदानी क्षेत्र में उतरता है।

दक्षिण-पश्चिम मानसून के सीधे रास्ते में होने के कारण सिक्किम में अधिक वर्षा होती है।

सिक्किम निवासी

इतिहास वेत्ताओं का कहना है कि सिक्किम के निवासी मूल रूप में मंगोल के लोग हैं। ये लोग भिन्न समय में सिक्किम में प्रवेश हुए थे। ये लोग भिन्न जाति के थे और अपनी सुविधानुसार इस राज्य में बसने के लिये आये। सबसे पहले आने वाली जाति लैप्चा थी जो कि अपने आपको रोंगपो (अर्थात जंगल निवासी) कहते थे। ये लोग कौन थे, कहां से आये थे तथा थे तथा इनकी क्या परम्पराएँ रहीं? इन प्रश्नों का उत्तर सही-सही आज भी नहीं मिल पाया है क्योंकि जो कुछ भी इस जाति के बारे में रिकार्ड्स थे उनको तिब्बत के मठाधीशो ने बड़े तरीके से नष्ट कर दिया। कुछ विद्वानों का कहना है कि इस जाति के पूर्वज सबसे पहले तिब्बत या चीन से आसाम होते हुए आये। इसके

पश्चात् भूटिया जाति लेप्चा लोगों से भिन्न थी। ये लोग शक्तिशाली, उग्र तथा साहसी थे। जिस स्थान से भूटिया आये उसकी भूमि अनुत्पादक व बंजर थी। अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिये जिस प्रकार का इन्हे संघर्ष करना पड़ा था। उसके कारण इन लोगों में उग्रता व साहसी होना स्वाभाविक था। इसी संघर्ष ने इन लोगों को लड़ाकू व साहसी बना दिया था। इनकी तुलना मे लैप्चा जाति विनम्र, ईमानदार व शान्ति प्रिय थी। लड़ाकू व स्वार्थी जाति के सामने टिक पाना मुश्किल ही था और इस प्रकार जो सिक्किम लैप्चा की भूमि से जाना जाता था। अब उस पर भूटिया लोगों का आधिपत्य हो गया। लैप्चा के लोगों ने लड़ाकू जाति के सामने हार मान ली और ये लोग भूमि हीन हो गये। यह जाति पूर्णतया जाति के अधीन हो गये और शासन भूटिया लोगों के पास आ गया।

तीसरी जाति जो सिक्किम मे आकर बसी वह भी नेपाली। नेपाली जाति 19वी शताब्दी में आये और इनको सिक्किम के भूतपूर्व राजा ने इसलिए स्थान दिया क्योंकि ये लोग कृषि के क्षेत्र मे न केवल निपुण थे अपितु परिश्रमी भी थे। निसदेह आज भी सिक्किम कृषि प्रधान देश है और जो कुछ भी कृषि के क्षेत्र में प्रगति दिखाई देती है, वह नेपाली लोगों की वजह से है। धीरे-धीरे नेपाली लोगों की संख्या इतनी हो गई कि लैप्चा-भूटिया जाति अल्पसंख्यक में दिखाई दी और जो कुछ भी 1973–74 में राजनीतिक व सविधानिक परिवर्तन आये उसका पूरा श्रेय 70 प्रतिशत नेपाली लोगों को दिया जा सकता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

1947 से पूर्व सिक्किम राज्य का क्या दर्जा था और इस पर कौन शासन करता था तथा उसकी राजनीतिक व्यवस्था क्या थी इसके बारे मे जान लेना आवश्यक है। जैसा कि पहले उल्लेख हो चुका है कि तीन प्रकार की जातियां सिक्किम मे आकर बसी और किस प्रकार भूटिया जाति ने सम्पूर्ण सिक्किम पर आधिपत्य कर लिया। चूंकि भूटिया जाति तिब्बत से आकर बसी थी इसलिये इनकी निर्भरता भी तिब्बत पर ही थी। प्रशासन मे तिब्बत का हस्तक्षेप हर जगह था। प्रशासकीय कार्यों मे तिब्बत के अधिकारियों से न केवल परामर्श बल्कि आदेश प्राप्त किये जाते थे। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर विश्वास किया जाता है कि जब भूटिया लोग तिब्बत से आये तो उन्होंने पहले से बसे हुए लोग लैप्चाना को अपने में परिवर्तित करना शुरू किया और जिन लोगो ने परिवर्तन होना स्वीकार किया और तिब्बत से आने वाली

भूटिया जाति में शामिल हो गये। दोनों में यह समझौता हुआ कि प्रशासन में लेप्चा लोगों को समान रूप से व्यवहार किया जाएगा परन्तु राजनीतिक सत्ता तिब्बत के शासक के हाथ मे होगी। इस प्रकार का समझौता कुछ लेप्चा लोगों को स्वीकार नहीं था जिन्होंने बौद्ध धर्म न तो स्वीकार किया था और न बाहर से आने वाले व्यक्तियों का स्वागत। परन्तु धीरे-धीरे तिब्बत के लोग अपने प्रभाव को और भी बढ़ाते गये और अन्तिम रूप से सिक्किम का सम्पूर्ण प्रशासन भूटिया लोगों के हाथों में पहुंच गया। इस प्रकार तिब्बती राजतन्त्र की स्थापना करने का रास्ता और भी साफ हो गया।

जिस तरीके से सिक्किम में राजतन्त्र की स्थापना हुई उसका वहां की राजनीति पर गहरा असर पड़ा इस प्रकार की व्यवस्था करने में न तो कोई रक्तपात हुआ और न कोई तूफानी संघर्ष। तीन मुख्य और प्रभावशील लामा, जिनको धर्म के आधार पर नियन्त्रण करने में असफलता मिली, निश्चय किया कि राजतन्त्र की स्थापना करने से सिक्किम के प्रशासन पर नियन्त्रण किया जा सकता है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर 1642 में इन्हीं लामाओं ने "फुट सांग नाम्ग्याल" व्यक्ति को सिक्किम का राजा नियुक्त किया। इस प्रकार सिक्किम की राजनीति पर लामा और बौद्ध धर्म का प्रभुत्व जम गया। ये लामा तिब्बत के लोग थे और राजा भी तिब्बत का ही रहने वाला था। इतने लम्बे समय के बीच बौद्ध धर्म के आपसी झगड़े भी समाप्त हो चुके थे। इस प्रकार सिक्किम के राजा पर तिब्बत का पूरा-पूरा प्रभाव जम गया। जिन परिस्थितियों के आधार पर राजा की नियुक्ति हुई, शक्तियों में कमी हो जाना स्वाभाविक था। यहां के राजा को किसी न किसी प्रकार से भूटिया लोगों को सन्तुष्ट करना पड़ता था। इसके परिणामस्वरूप सिक्किम मे जमीदारी व्यवस्था पनपना प्रारम्भ हुआ। कभी-कभी ये जमीदार राजा के आदेशों की न केवल अवज्ञा करते थे, अपितु उपहास भी।

सिक्किम राज्य 12 जिलों में विभाजित कर दिया गया। राजा ने 12 लेप्चाम जो कि उच्च श्रेणी के परिवारों से थे, जिला-अधिकारी के रूप में नियुक्त किया और 12 भूटिया प्रमुख को राजा को प्रशासनिक कार्यों में सहायता करने के लिए एक परिषद् का गठन किया। स्थानीय प्रशासन को जमीदारों के हाथों में सौंप दिया जो काजी या टीकादार्स के नाम से जाने जाते थे। इन जमीदारों की ये जिम्मेदारी थी कि अपने इलाकों में कानून और व्यवस्था कायम करें। इनको यह भी काम दिया गया था कि वहां के राजस्व को एकत्रित करें और राज्यकोष में जमा करायें।

राजतन्त्रीय व्यवस्था

व्यावहारिक स्वरूप—भूटिया द्वारा राजतन्त्रीय व्यवस्था जिस दिन से सिक्किम में कायम हुई तबसे ही इसमें कमियों का आ जाना स्वाभाविक था। इस व्यवस्था में शोषण करने की प्रवृत्ति पहले से ही व्याप्त थी। राजा और उसके शाही परिवार के सदस्यों ने सर्वाधिक उत्पादक भूमि को निजी सम्पत्ति के रूप में कब्जा कर लिया। सिक्किम में कृषि के योग्य कुल भूमि 90,130 हैक्टर्स थी। 12,740 हैक्टर्स जमीन राजा के नाम थी। जिसको काश्तकार बिना कुछ लिये हुए जोतते थे और जमीन से प्राप्त हुई सम्पूर्ण राशि शाही परिवार के व्यक्तिगत खर्चों के लिए चली जाती थी।

इतनी भारी मात्रा मे राज्य की निजी सम्पत्ति काबू करने के बावजूद भी राजा ने जनसाधारण की दयनीय स्थिति को सुधारने का प्रयास नहीं किया। वस्तुस्थिति यह थी कि राजा ने प्रशासन को सुधारने के लिए कभी समय मुश्किल से ही दिया होगा। राज्य के प्रशासन का काम प्रधानमन्त्री और दीवान के हाथों में सौंप रखा था। जो कि परिषद् के सदस्य थे और जिसको राजा के सहायक के रूप मे नियुक्त किया था। परन्तु इन प्रशासकों ने व्यक्तिगत स्वार्थों की अधिक परवाह की बनिस्पत राज्य की भलाई के। यही नहीं, यहां का राजा अधिकतर समय तिब्बत में व्यतीत करता था। इस प्रकार सिक्किम की सम्पूर्ण पूंजी विदेशों के लिए (अर्थात् तिब्बत के मठाधीश) खर्च होता था। राज्य की सार्वभौमिकता व सम्मान तिब्बत की दया पर निर्भर थी। राजा ने अपनी स्थिति को इतना कमजोर बना दिया था कि जब कभी भी विदेशी राष्ट्र सिक्किम पर आक्रमण की धमकी देते थे तो या तो राजा तिब्बत से मदद की भीख मांगता था और या वह स्वयं तिब्बत भाग जाता था और जनता को छोड़ जाता था। नामग्यालशाही परिवार ने किसी भी योग्य प्रशासक को जन्म नही दिया। अधिकांश स्थानीय अधिकारी वर्ग ने राजा के आदेशों की न केवल अवहेलना की बल्कि कभी-कभी राजा को भी अपने क्षेत्र मे भगा देते थे।

राज्य के लगभग सभी निर्णयों में उच्च लामाओं की सक्रिय और प्रभावशाली भूमिका होती थी। राजा की तरह, मठो के लिए भी सम्पत्ति पहले से ही सुरक्षित थी। लगभग 8,550 हैक्टर्स कृषि योग्य जमीन इनके लिये दे दी गई थी। वे सभी लोग जो मठों के क्षेत्र-परिधि मे बसे हुए थे उनको भूमि राजस्व देना पड़ता था तथा कुल फसल का हिस्सा भी मठों के अधिकारियों को समर्पित करना होता था। इसके अतिरिक्त हर व्यक्ति को वर्ष में सात दिन का मुफ्त श्रम का दान देना होता था। मठों के अधिकारी वर्ग न केवल अपने क्षेत्र

के प्रशासन में स्वतन्त्र थे अपितु न्यायिक शक्तियां भी इनको प्राप्त थीं। राजा और सामाओं की साठगांठ से "काजी" के माध्यम से लोगों पर अत्याचार करते थे और उनकी मनमानी का बोलबाला था। राज्य की पूरी व्यवस्था कुछ इस प्रकार की बनी हुई थी जिसके माध्यम से केवल कुछ भूटिया और उच्च लैप्चा जाति को ही सर्वाधिक लाभ होता था। परिणामस्वरूप, राज्य में भूटिया और लैप्चा जाति के बीच निरन्तर संघर्ष रहता था।

उक्त राजनीतिक व्यवस्था के कारण दुष्परिणाम होना भी स्वाभाविक था। आर्थिक दृष्टि से राज्य की कोई प्रगति नहीं हुई। 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी का लगभग सिक्किम पर पूर्ण प्रभुत्व जम गया तब तक सिक्किम की आन्तरिक स्थिति आदिवासियों-जैसी हो गई थी। न तो किसी सड़क का निर्माण कराया गया न कोई पुलिस की व्यवस्था। न्यायालय की व्यवस्था भी नहीं थी। सार्वजनिक निर्माण शून्य और शिक्षा का क्षेत्र अछूता तथा राज्य के खजाने में भी दिवाला निकाला हुआ था। प्रशासनिक दृष्टि से राज्य अस्तव्यस्त था। शाही परिवार के सदस्यों के बीच पारस्परिक झगड़े रहते थे। प्रशासनिक परिषद् के अधिकारी वर्ग में भारी मतभेद थे। परिषद् के कुछ सदस्यों ने राजा की सत्ता को चुनौती दे रखी थी और शक्तियों को अपने हाथ में ले लिया था। भूटिया और लैप्चा के बीच हमेशा झगड़ा रहता था। कभी-कभी इन झगड़ों के कारण राज्य में कानूनी अव्यवस्था इतनी अधिक हो जाती थी जिसके कारण राजा को तिब्बती लोगों से हर प्रकार की सहायता लेनी पड़ती थी। इस तरह की हालत या अव्यवस्था राज्य में अनेकों बार हुई। तिब्बत पर इतना अधिक निर्भर हो जाने के कारण सिक्किम के लोगों में यह बात घर कर गई कि सिक्किम की प्रशासनिक बागडोर तिब्बत के हाथ में है और राजा केवल नाममात्र का पुतला है जो कमजोर, निस्सहाय और गुलाम है। जब तिब्बत स्वयं चीन के अधीन बन गया तो सिक्किम के लोग यह साफ तौर से कहने लगे कि सिक्किम की बागडोर चीन के हाथ में है। वैसे चीन ने कभी भी सिक्किम पर प्रभुत्व जमाने का प्रयास नहीं किया।

विदेशी आक्रमण

सच ही कहा है कि यदि घर में झगड़े हैं तो उसका बाहर वाले लाभ उठाने का प्रयास करते हैं और प्रयास में सफल भी होते हैं। यह शाश्वत सत्य सिक्किम राज्य पर लागू किया जा सकता है। सिक्किम के आन्तरिक झगड़ों तथा राजा की स्वयं की कमजोरी ने विदेशी राष्ट्रों को उसका लाभ उठाने का मौका दिया। सिक्किम राज्य ने कई आक्रमणों का सामना किया और सबसे

बड़ा आक्रमण नेपाल की तरफ से था। जिसका फल यह हुआ कि सिक्किम को बहुत से भूखण्ड से हाथ धोना पड़ा। नेपाल की योजना तो यह थी कि वह पूरे ही सिक्किम को अपने अधीन कर ले परन्तु यह योजना इसलिए भी सफल नहीं हो पाई क्योंकि तब तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी का आधिपत्य हो चुका था। अंग्रेजी शासक किसी अन्य विदेशी राज्य का सिक्किम पर आधिपत्य सहन नही कर सकते थे क्योंकि उनका स्वयं का स्वार्थ इसमें निहित था। अंग्रेज लोग सिक्किम के माध्यम से तिब्बत से अपना व्यापार बढ़ाना चाहते थे। इसलिए सिक्किम पर पूरा नियन्त्रण भी होना जरूरी था। अंग्रेजी शक्ति ने बढती हुई नेपाली सेना को हराया और गोरखा के चंगुल से सिक्किम को बचा लिया। इस अहसान का बदला सिक्किम के राजा ने एक संधि के रूप मे चुकाया जो कि 1861 में दोनों के बीच हुई। इस संधि के अनुसार अंग्रेजों को भारत और तिब्बत के बीच व्यापार करने की सुविधा प्राप्त हो गई जो कि बिना सिक्किम के सम्भव नही थी। अंग्रेजों ने बहुत जल्दी ही अपनी व्यापार की सुविधा के लिए सडकों का निर्माण कराया। यह काम 1880 तक पूरा कर दिया गया परन्तु तिब्बत के अधिकारी वर्ग ने इस प्रकार की गतिविधियों को पसन्द नही किया क्योंकि तिब्बत से सिक्किम को हमेशा से ही आरक्षित राज्य समझा था। उन्होने छम्ब घाटी की ओर अपनी सेना भेजी। अंग्रेजी लोग ऐसे कदम से चौंक गये और कुछ समय के लिए उन्होंने अपने इरादे बदल लिये। अंग्रेजों की इस कमजोरी को समझ कर तिब्बत के लोगों ने सिक्किम पर पूरा नियन्त्रण करने की नीति अपनाई और इस दिशा मे कुछ कदम भी उठाये। अंग्रेजी प्रशासनिक वर्ग ने सिक्किम के राजा से शिकायत की कि 1861 की संधि के अनुसार तिब्बत को कोई अधिकार नही है कि वह सिक्किम के किसी भी आन्तरिक क्षेत्र मे हस्तक्षेप करे। अब सिक्किम के राजा ने इस प्रकार की आपत्तियो का कोई उचित उत्तर नही दिया। तब अंग्रेजी अधिकारी वर्ग के पास और कोई विकल्प नही था कि वे सिक्किम की दिशा मे अपनी सेना भेजें और सिक्किम से तिब्बत की सेना को खदेड़ दे। अंग्रेजो की शक्ति के सामने तिब्बत की सेना मुकाबला न कर सकी और अन्त में तिब्बत और चीन दोनो ने ही अंग्रेजी के प्रभाव को पूरी मान्यता दी, 19 मार्च, 1890 ई. में अंग्रेज और चीन के बीच एक सम्मेलन हुआ जिसमें चीन ने अंग्रेजों के सिक्किम पर प्रभुत्व को स्वीकार किया।

इस प्रकार अंग्रेजों का प्रभुत्व सिक्किम पर पूर्णतया जम गया और उन्होंने सिक्किम के प्रशासन के लिए अपनी कुछ नीतियां बनाई। उन्होंने एक सिक्किम का संविधान 1889 ई. मे बना। इसके अनुसार राज्य की शक्तियां

राजा के हाथों में सौंप दी गईं परन्तु संविधान में यह भी लिख दिया गया कि शक्तियों का प्रयोग राज्य की परिषद की सलाह से करेगा। यदि कभी दोनों के बीच में मतभेद हो तो उसका अन्तिम फैसला अंग्रेजी राजनीति अधिकारी करेगा। वस्तुत: राज्य की वास्तविक शक्तियां अंग्रेजी शासक के पास ही पहुँच गईं क्योंकि परिषद का गठन किस प्रकार हुआ था उसमें अधिकतर सदस्य अंग्रेजों के थे। राजा के पास और कोई विकल्प नहीं था सिवाय इसके कि वह अंग्रेजों के थे। राजा के पास और अधिकारी वर्ग की बात माने। राजा को हमेशा इस बात का भी भय था कि कहीं वह अपने पद को खो न बैठे। अंग्रेज अधिकारी वर्ग को इस बात की चिन्ता नहीं थी कि जनसाधारण की समस्यायें क्या हैं और उनका जीवन स्तर कैसे सुधारा जा सकता है। उन्हें इस बात की भी चिन्ता नहीं थी कि वहां का सामन्त वर्ग कुछ उनके लिये खतरा पैदा कर सकता है। वे जानते थे कि सामन्त वर्ग भी अपने स्वार्थों की पूर्ति करने के लिए उन्हीं की ओर ताकेगा और ऐसा हुआ भी। सामन्तवर्ग ने राजा की आज्ञा का उल्लंघन करना प्रारम्भ किया और अंग्रेजी अधिकारी वर्ग के गुलाम हो गये। इस प्रकार राज्य में सामन्ती प्रथा अधिक शक्तिशाली और अधिक अत्याचारी हो गई।

अंग्रेज लोगों ने नेपाली जाति को प्रवेश होने के लिए प्रोत्साहन दिया। इस प्रोत्साहन के पीछे अंग्रेजों की एक कूटनीति स्पष्ट थी। वे चाहते थे कि पहले से बसे हुए भूटिया और लेप्चा नेपाली लोगों से डर जायें। इस योजना के अनुसार भारी संख्या में नेपाली लोगों का सिक्किम में प्रवेश होना शुरू हुआ और धीरे-धीरे संख्या इतनी बढ़ गई कि लेप्चा और भूटिया सिक्किम में अल्पसंख्यक हो गये। प्रशासनिक दृष्टि से कुछ ऐसे सुधार किये गये कि जिसने अंग्रेजों के हितों की पूर्ति में पूरी सहायता की। राजा को यह कहा गया कि तिब्बत में तीन महीने से ज्यादा न ठहरे और राजकुमारों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए भारतीय विद्यालयों में भेजा गया। अंग्रेजों की नीति इसमें सफल हुई और धीरे-धीरे सिक्किम तिब्बत के चंगुल से बाहर निकलने लगा। उक्त प्रशासनिक सुधारों ने पूर्ण रूप से सिक्किम को भारतीय राज्य के रूप में परिवर्तित कर दिया। भारत सरकार की स्वतन्त्रता के पश्चात् सिक्किम की क्या नीति रही उसके इस सन्दर्भ में स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

इस प्रकार की अंग्रेजी नीति में प्रभावशाली भूटिया जाति पर गहरा असर डाला। जब 19वीं शताब्दी में भूटिया जाति ने सिक्किम पर प्रभुत्व कायम किया तो उन्होंने उच्च घराने के लेप्चा परिवार से ऐसा समझौता किया

जिसमें अधिकांश नीचे परिवार के लेप्चा अछूत रह गये। इस समझौते ने उन पर शोषण करने के लिए पूरा-पूरा मौका दिया। समझौते का पहला प्रभाव यह हुआ कि लेप्चा की उत्पादक भूमि को जब्त कर लिया गया, उनके धर्म को नष्ट किया और उनको न केवल बौद्ध धर्म में परिवर्तित किया अपितु उनको लामा की व्यवस्था में कोई स्थान नहीं मिला उनको एक फकीर का दर्जा ही प्राप्त हो सका जो कि प्रभावशाली भूटिया की दया पर निर्भर थे। इस अन्याय ने ही जातियों के बीच निरन्तर संघर्ष को जन्म दिया परन्तु अंग्रेजी शासन ने नेपाली लोगों को बसाने के लिए प्रोत्साहन बराबर दिया जिसके कारण दोनों जातियों को नेपालियों से खतरा हो गया। नेपाली लोग न केवल संख्या में अधिक थे अपितु वे साहसी, परिश्रमी और कृषि के क्षेत्र में निपुण थे। इस खतरे के कारण उसे शोषक भूटिया जाति ने शोषित लेप्चा जाति से समझौता करना प्रारम्भ किया जिससे कि वे नेपालियों से मुकाबला कर सकें। लेप्चा लोगों ने इस समझौते को समर्थन दिया क्योंकि उन्हें भी नेपालियों से अधिक डर था परन्तु यह समझौता अधिक सुविधाजनक नहीं था क्योंकि यह सामान्य नियम है कि समझौता दो बराबरों के बीच होता है न कि ऊँचे और नीचे के बीच। नेपाली लोगों को दक्षिण और दक्षिण-पूर्व के भाग में बसाया गया। उनके प्रति हर प्रकार का अन्याय किया गया और इस प्रकार नेपालियों के हृदय में उनके प्रति घृणा पैदा हो गयी।

नेपाली विद्रोह

नेपालियों का असन्तोष तभी तक नियन्त्रण में बना रहा जब तक अंग्रेज लोग सिक्किम पर शासन करते रहे, क्योंकि नेपाली लोग अंग्रेजों के मित्र से बन गये थे। अंग्रेजों के चले जाने के बाद से ही जिन्होंने कि सिक्किम के शासकों को लगभग शक्तिहीन कर दिया था, वहा कोई भी ऐसी शक्ति बच न रही थी जो कि नेपाली असन्तुष्ट भावना को नियन्त्रण में कर सकता उनके जाते ही दोनों के बीच संघर्ष होना स्वाभाविक था। राजा की स्वयं की भूमिका भी कभी निष्पक्ष नहीं रही। वह अल्पसंख्यक भूटिया लेप्चा को ही समर्थन देता था जिसके परिणामस्वरूप राजा नेपालियों से न तो कभी सम्मान ही प्राप्त कर सका और न ही आदेशों को पालन करवा सका। जितना अधिक राजा भूटियों पर निर्भर था उनको समर्थन देता था उतना ही अधिक नेपालियों के हृदय में उनके प्रति विद्रोह पैदा हो गया था। अंग्रेजों के तुरन्त जाने के बाद सबसे बड़ी समस्या यहाँ थी कि नेपालियों पर कैसे काबू पाया जाय क्योंकि सिक्किम में न तो पुलिस और न मिलिट्री की व्यवस्था थी।

नेपाली लोग हमेशा इसी भाव में रहते थे कि कब राजा उनसे सिक्किम से चले जाने के लिए कह दे। उनका यह डर सच भी निकला, जब राजा ने उन

लोगों को सिक्किम से बाहर निकल जाने की चेतावनी दी और तब से ही सिक्किम के प्रशासनिक वर्ग ने यही प्रयास किया कि वह दिन कब आये जब नेपालियों को राज्य से बाहर निकाला जाय। नेपालियों को हमेशा विदेशी के रूप में ही समझा गया। पारस्परिक घृणा की भावना ने अनवरत् संघर्ष को जन्म दिया।

अंग्रेजी प्रशासन के चले जाने के बाद सिक्किम में आन्तरिक झगड़े पैदा हो गये। नेपाली लोग जानते थे कि उनके प्रति घोर अन्याय हो रहा है। उनमें राजनीतिक जागरूकता स्पष्ट नजर आने लगी थी। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन व जनतान्त्रिक भावना के बारे मे नेपाली लोग अनभिज्ञ थे। सिक्किम में भी जनतान्त्रिक भावना धीरे-धीरे फैल रही थी। नेपाली लोगों मे भी वे सभी जनतान्त्रिक आदर्श घर कर रहे थे जिनको राष्ट्रीय आंदोलन में मुख्य स्थान दिया जा रहा था। भारतीय नेताओ से प्रभावित नेपाली लोग उसी मार्ग को अपनाने के लिए अग्रसर हुए जिसकी हवा भारत में पहले से ही व्याप्त थी। बहुसंख्य नेपाली लोग यह जानते थे कि यदि सिक्किम में जनतान्त्रिक व्यवस्था कायम हो जाये तो शासन उनके हाथों में होगा। इसी उद्देश्य को हाथ में लेकर नेपालियों ने जनतन्त्र शासन के लिए आन्दोलन प्रारम्भ करने की घोषणा की। सिक्किम में जनतान्त्रिक मूल्यों का प्रचार भारत के द्वारा हुआ और नेपालियों ने ऐसे मौके का पूरा-पूरा लाभ उठाने की कोशिश की। भूटिया-लैप्चा लोगों को यह बात अच्छी तरह मालुम थी कि सिक्किम में जनतन्त्र व्यवस्था का क्या परिणाम होगा। वे अपना हित अच्छी तरह जानते थे इसलिए उन्होंने इसका विरोध करना शुरू किया।

उक्त जनतान्त्रिक आन्दोलन के विरोध में कौन लोग सामने आये वे भी छुपे हुए नहीं थे। सिक्किम के पूंजीपति, शाही परिवार, सामन्त लोग, उच्चलामा, व्यापारी, ठेकेदार, धनी कृषक—ये सभी लोग जनतान्त्रिक व्यवस्था के विरोध में थे। इन बुर्जुआ वर्ग में बहुत से नेपाली भी शामिल थे जो राजतन्त्र के पक्ष में थे। उसी प्रकार लैप्चा भूटिया लोगों में भी ऐसे दलित लोग थे जिनकी यह इच्छा थी कि जनतान्त्रिक व्यवस्था हो जाने में उनका उद्धार है।

जनतान्त्रिक आन्दोलन

सिक्किम में जनतान्त्रिक आन्दोलन का प्रारम्भ अंग्रेजी शासन के चले जाने के बाद हुआ। 1947 के तुरन्त पश्चात् दो शक्तियां साफ तौर से दिखाई दीं—वे थीं जनतान्त्रिक शक्ति एवं सामंत शक्ति। सत्ता को अपने हाथ में

लेने का मुकाबला इन दोनों शक्तियों के बीच शुरू हुआ। भारत में जनतान्त्रिक व्यवस्था की स्थापना होने के पश्चात सिक्किम में तीन राजनीतिक दलों के बीच गठबन्धन हुआ और दल को अधिक प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से तीनों दलों का एक दल बनाया जिसका नाम सिक्किम स्टेट कांग्रेस रखा। जिन दलों को मिलाया ये थे—(1) प्रजा सुधारक समाज, (2) प्रजा सम्मेलन, (3) प्रजा मण्डल। एक दल के बनते ही शक्ति का संचार हुआ, आन्दोलन की घोषणा कर दी गई। नये गठित दल ने तीन माँगें रखी थीं ये–(अ) लोकप्रिय और उत्तरदायी सरकार का निर्माण और सामन्तवादी व्यवस्था को समाप्त करना, (ब) अन्तरिम जनतान्त्रिक सरकार का गठन, (स) सिक्किम को तुरन्त भारत में विलय कर देना। यह आन्दोलन महाराजा के विरुद्ध था जो कि पहले से ही जनतान्त्रिक शक्ति का मुकालला करने के लिए सामन्त शक्ति से सहायता ले रहा था। राजा के पास कम शक्ति होने के कारण उसने निम्न तरीके अपनाये जिससे आन्दोलन टूट जाय और शक्ति बनी रहे।

दल में मतभेद करना

राजा ने उक्त तीन मांगों में से केवल एक मांग को स्वीकार किया और वह थी अन्तरिम लोकप्रिय सरकार का गठन जिसमे उसने तीन प्रमुख नेताओं को अपनी सहायता के लिए "सेक्रेटरी" के रूप में नियुक्त किया। राजा यह पहले से ही जानता था कि दल के नेताओं मे निष्ठा का अभाव है और इस कमजोरी का उसने लाभ भी उठाया। तीन "सेक्रेटरी" की नियुक्ति के बाद राजा के उनको अपनी चतुराई से स्वयं के पक्ष में कर लिया और कांग्रेस सेक्रेटरी धीरे-धीरे राजा का पक्ष लेने लगे तथा आन्दोलन की गर्मी को भूल गये। सिक्किम कांग्रेस पार्टी के नेताओं मे आक्रोश पैदा हुआ और तीनों सेक्रेटरी से त्याग-पत्र मांगा। उन्होने त्याग-पत्र देने के लिए मना कर दिया और इस प्रकार दल की एकता समाप्त होने लगी।

राजभवन दल का गठन

जनतान्त्रिक दल का सामना व विरोध करने के लिए राजा ने एक ऐसे दल का गठन किया जिसका नाम "नेशनल पार्टी" रखा। इस दल का मुख्य काम यही था विशिष्ट वर्ग के हितों की रक्षा करना और यथास्थिति को बनाये रखने का पूरा-पूरा प्रयास। जिन लोगों से दल बना वे थे लेप्चा, भूटिया, मगर्स, शेरपा तथा शुद्र। यह पार्टी सामन्तवादियों के हितों की रक्षक थी। कांग्रेस के तीन नेताओं की इस स्वार्थपरता का देखकर यह स्पष्ट अवश्य होता है कि दल में जनतान्त्रिक परिपक्वता का पूर्ण अभाव था।

वास्तविकता से समझौता

राजा का यह प्रयास कि दल में फूट पड़े-उसमें आंशिक सफलता तो मिली लेकिन उसने वास्तविक स्थिति को समझ लिया था। राजा यह जानता था कि भारत सरकार का रुख जनतान्त्रिक शक्ति की तरफ है। वह यह भी समझ रहा था कि जब तक भारत का रुख उसके पक्ष में नहीं होगा तब तक स्थानीय दल का आन्दोलन शान्त नही किया जा सकता।

जब 1 मई, 1949 को जनतान्त्रिक शक्ति ने पूरी ताकत के साथ राजा के सामने अपनी मांगों को लेकर प्रदर्शन किया तो उस समय राजा का मानस यथार्थ स्थिति से उन्मुख था। भारी संख्या में प्रदर्शनकारियों को देखकर राजा ने तुरन्त "भारतीय रेजीडेन्सी" में शरण ली और भारतीय "पोलीटिक्स आफिसर" की राय को मानने के लिये तैयार हो गया। राजा को यह सलाह दी गई कि वह एक लोकप्रिय सरकार का गठन करे जिसमें तीन सदस्य सिक्किम कांग्रेस के हों तथा दो राजा के मनोनीत व्यक्ति। इसकी अध्यक्षता कांग्रेस का अध्यक्ष करेगा। राजा ने उक्त सलाह को तुरन्त मान लिया।

भारत सरकार सिक्किम के मामले को हल करने में अधिक जल्दबाजी करना नहीं चाहती थी। उसकी स्पष्ट तस्वीर केवल 1950 की संधि से ही हो सकी जिसने सिक्किम को भारत का "आरक्षित" दर्जा दिया। संधि के अनुसार सिक्किम के विदेशी मामले, सुरक्षा तथा न्याय-व्यवस्था की जिम्मेदारी भारत सरकार के हाथों में सौंप दी। घरेलू मामले में राजा को लगभग अपरिमित शक्ति प्रदान कर दी गई। राजा ने शक्ति का दुरुपयोग करना शुरू किया। सामन्त लोगों के स्वार्थों की पूर्ति करने में राजा ने कोई हिचकिचाहट नहीं दिखाई। स्वयं के स्वार्थों की पूर्ति का कानूनी रूप देने के लिए राजा ने 1953 में संविधान का निर्माण किया जिसने केवल अल्पसंख्यक भूटिया लेप्चा को और अधिक सुविधायें प्रदान कीं तथा 75 प्रतिशत नेपाली लोगों को सुख-सुविधाओं से वंचित किया, उसको जानना भी आवश्यक है।

1953 का संविधान

इस संविधान का मूल आधार "पैरिटी फार्मूला" था जिसके अन्तर्गत यह निश्चय किया गया कि "राज्य परिषद" की सीटों का वितरण समान अधिकार के आधार पर होगा। इन सीटों का विभाजन भूटिया, लेप्चा और नेपाली के बीच होगा। यद्यपि बहुसंख्यक नेपालियों के लिए परेशानी का कारण था क्योंकि उक्त नियम हो जाने से नेपालियों के लिए सत्ता का रास्ता अवरुद्ध हो गया। राजा ने फिर भी अपने आपको सुरक्षित नही समझा और इसी असुरक्षा की भावना से संविधान में एक प्रावधान और जुड़वाने के लिए बाध्य किया। राजा ने पांच सदस्य मनोनीत करने का अधिकार अपने हाथ में सुरक्षित

रखा। निर्वाचित सदस्यों से गठित "राज्य परिषद" का महत्त्व और भी कम करने के लिए राजा ने "द्वैध शासन" की व्यवस्था को प्रारम्भ किया। प्रशासन के मुख्य विभाग राजा के हाथों में सौंप दिये गये और कम महत्त्वपूर्ण विषय परिषद को दिये गये। राज्य परिषद के सामने और भी अड़चनें डाल दी गई। परिषद को प्रतिबन्धित विषयों पर बहस करने की अनुमति नही दी गई। नये संविधान ने परिषद को उन उचित शक्तियों से भी वंचित कर दिया जो उसे स्वतः मिलने ही चाहिये थे। संविधान ने परिषद को इतना कमजोर कर दिया कि वह केवल राजा के निर्देशन का पालन करने वाली एक संस्था बनकर रह गई। ऐसे संविधान ने धीरे-धीरे 1973 तक राजा को इतनी भारी शक्ति प्रदान कर दी थी कि वह सिक्किम में सबसे अधिक धनवान व्यक्ति मे गिना जाने लगा।

राजा के प्रति विद्रोह

राजा ने अपने उन सभी तरीकों को प्रशासन में लागू किया जिससे वह लोकप्रिय हो सके। जिस आवरण में वह ख्याति प्राप्त करना चाहता था वह बहुसंख्यक नेपाली व जनतान्त्रिक शक्ति को इतना स्पष्ट था कि राजा ने अन्यायपूर्ण व्यवहार सभी के सामने आ गये। राजा का प्रशासन वस्तुतः केवल कुछ सामन्तवादी लोगों को सर्वाधिक लाभ पहुँचाने के लिए था। उनके अन्याय और दमन की पराकाष्ठा थी। केवल मठों के उच्च लामा और जमींदार लोग राजा की छत्र-छाया में पनप रहे थे। 26,700 हैक्टर्स भूमि का नियंत्रण पचास परिवार के बीच में था। करीब 8560 हैक्टर्स भूमि 6 मठों को दे रखी थी। सिक्किम की दलित जनता इस प्रकार के शासन से तंग व दु.खी थी। नेपाली लोग अच्छे मौके का इन्तजार करने लगे। वे राजा को अहसास कराना चाहते थे कि जो कुछ भी उनके सानिध्य में हो रहा है वह भयंकर, अन्याय और भ्रष्टाचार है और वह घड़ी आई भी जब बहुसंख्यक नेपाली लोगों ने अवसर का लाभ उठाया।

1973 के चुनाव ने नेपाली लोगों को वह मौका दिया जिसका वे इन्तजार कर रहे थे। सिक्किम नेशनल काग्रेस ने राजा पर यह दोषारोपण किया कि चुनाव के परिणाम को स्वीकार नही किया। वस्तुतः स्थिति यह भी कि जिस चुनाव पद्धति को राजा ने कानूनी रूप से नेपालियो पर थोप रखा था वह मूलतः अन्यायपूर्ण थी। चुनाव पद्धति भूटिया-लैप्चा लोगो के पक्ष में थी। अतः हर स्थिति में चुनाव का परिणाम केवल सामन्त लोगों के पक्ष में जाता था। अतः 1973 के चुनाव परिणाम के पश्चात नेपालियों में घोर असन्तोष फैल गया और विद्रोह चोगयाल (राजा) के खिलाफ छेड़ दिया। सिक्किम

कांग्रेस ने चोगालय के सामने प्रदर्शित किये और जनतान्त्रिक व्यवस्था के आधार पर चुनाव कराने की मांग रखी। राजा ने ऐसी मांगों पर कोई ध्यान नही दिया और उसके ठीक विपरीत आतंक का वातावरण फैला दिया। इस विद्रोह और असन्तोष की कोई सीमा न थी। राजा ऐसे विद्रोह का सामना नही कर सका। सिक्किम प्रशासन का सम्पूर्ण ढांचा चरमरा गया। राजा के सामने और कोई विकल्प न रह गया और उसने भारत सरकार को प्रशासन की बागडोर सौंप दी।

समझौते की व्यवस्था

भारत सरकार ऐसी स्थिति को देखकर सरल रास्ता ढूँढने का प्रयास करने लगी जिससे सिक्किम का राजा किसी प्रकार से गलत न समझे। नई दिल्ली में उच्च अधिकारी वर्ग राजा से यही आशा करते रहे कि आन्तरिक व्यवस्था को सूझबूझ से राजा सम्भाल लेगा। परन्तु स्थिति और भी बिगड़ती देख कर भारत को ऐसे कदम उठाने के लिए बाध्य होना पड़ा जिससे सिक्किम की जनता न्याय और व्यवस्था से रह सके। अन्त में एक समझौते की व्यवस्था हुई जिसमें राजा जनतान्त्रिक शक्ति के प्रतिनिधि और भारत स्वयं। 8 मई, 1973 को तीनों के बीच यह समझौता किया गया जिसमें एक पूर्ण उत्तरदायी जनतान्त्रिक सरकार के गठन का निर्णय लिया गया जिसकी जिम्मेदारी भारत सरकार पर छोड़ी गई। समझौते ने यह भी निर्णय लिया कि एक कार्यकारिणी के प्रमुख की सलाह पर राजा द्वारा होगी। कार्यकारिणी प्रमुख को समझौते के अनुसार यह भी शक्ति प्राप्त हुई कि वह कार्यकारिणी की मीटिंग की अध्यक्षता करें। 1973 के समझौते ने यह भी तय किया कि यदि राजा और कार्यकारिणी के बीच में कोई मतभेद हो तो उस मसले को सिक्किम में "इण्डियन पोलीटीकल आफिसर" को सौंप दें और उसका निर्णय अन्तिम होगा। समझौते से यह अवश्य निष्कर्ष निकला है कि जनतान्त्रिक शक्ति को राजा पर बिल्कुल भरोसा उठ गया था और भारत सरकार पर अधिक।

उक्त समझौते से राजा यद्यपि नाराज था लेकिन हस्ताक्षर करने पड़े। राजा ने भारत सरकार पर आरोप लगाया कि सिक्किम नेपालियों को उसके खिलाफ उकसाने में भारतीय नेताओं का हाथ है। राजा ने हस्ताक्षर के रूप में तो समझौते को स्वीकार किया परन्तु आन्तरिक द्वन्द्व ने उसे शान्ति से नहीं बैठने दिया। अपने हाथों से शक्ति जाते देख राजा सहन नही कर सका। समझौते के अनुसार अप्रेल, 1974 को सिक्किम विधान सभा चुनाव हुए जिसमें सिक्किम कांग्रेस पूर्ण बहुमत मे आयी। दुर्भाग्य की बात है कि राजा मठ की एक मात्र सीट भी हार गया।

1974 का संविधान

चुनाव होने के बाद काजी लैंडप दोरजी के नेतृत्व मे सरकार का गठन हुआ। सरकार बनते ही सिक्किम कांग्रेस के सामने प्रमुख काम था। नये संविधान का निर्माण करना जिससे 1973 के समझौते की भावना को सम्मिलित किया जा सके। 1974 का संविधान तैयार हुआ और उसको विधानसभा ने 20 जून, 1974 को सर्वसम्मति से पारित किया। इस संविधान ने नेपाली लोगों को प्रशासन में उचित स्थान दिलाने के लिए कई प्रावधान रखे। नये संविधान के अन्तर्गत कार्यकारिणी प्रमुख को अधिक शक्तियां प्राप्त हो गई। चोगयाल को संवैधानिक राजा के रूप मे स्वीकार किया गया।

उक्त संविधान ने राजा की शक्ति को काफी कम कर दिया था परन्तु वास्तविक स्थिति कुछ भिन्न ही दिखाई देती थी। प्रशासन को देखकर यह नहीं लगता था कि राजा की शक्तियों में किसी भी प्रकार से कमी आई है। बाह्य दृष्टि से यह स्पष्ट हो चुका था कि राज्य की वास्तविक शक्ति निर्वाचित सदस्यों के पास पहुँच चुकी है लेकिन आन्तरिक स्वरूप कुछ और ही था। कारण स्पष्ट था कि राजा (चोगयाल) ने यथार्थ स्थिति को स्वीकार नहीं किया। जब उसने यह समझ लिया कि भारत सरकार का रुख भी जनतान्त्रिक शक्ति की ओर है और जो कुछ भी आन्दोलन हुआ उसमें भारत का पूरा पूरा हाथ था तो उसने अन्य राष्ट्रों की सहायता लेने का अभियान शुरू किया। नये संविधान के अन्तर्गत राजा को अपने राज्य से बाहर जाने से पूर्व विधीवत अनुमति लेना आवश्यक था। परन्तु राजा ने अपनी हठधर्मी का परिचय दिया।

राजा का अन्तिम प्रयास

यद्यपि जनतान्त्रिक सरकार बन चुकी थी, मुख्यमन्त्री काजी लैंडप दोरजी, ने अपना मंत्रिमंडल बना लिया था और प्रशासन की बागडोर भी जनता के हाथों में चली गई फिर भी राजा वास्तविक स्थिति को समझने में असमर्थ दिखाई देता था। उसका भ्रम अन्तिम क्षण यही था कि राज्य की वास्तविक शक्ति उसके हाथ है। इसी भ्रम को लिए एक दिन राजा (चोगयाल) मार्च 1975, को चुपचाप नेपाल की ओर चल दिये जहाँ कि उन्हें राजा बीरेन्द्र के राज्याभिषेक मे शामिल होना था। इस तरह से संविधानिक सरकार को बिना किसी सूचना दिये चल देना असंविधानिक समझा गया। नेपाल में जाकर राजा ने अन्य राष्ट्रों के आये हुए प्रतिनिधियों को सिक्किम की स्थिति से अवगत कराया और सहायता भी मांगी। राजा को यह पूर्णविश्वास था कि इस सम्बन्ध में चीन, पाकिस्तान और नेपाल उसे अवश्य मदद देगा। परन्तु उसका दुर्भाग्य ही रहा कि इस मुद्दे पर किसी ने भी हस्तक्षेप करना

नहीं चाहा। चीन ने प्रतिक्रिया अवश्य जाहिर की परन्तु सिक्किम के नये परिवर्तन में दखल देना अपने हित में ठीक नहीं समझा।

सिक्किम का भारत में विलय

सिक्किम को 22वा राज्य बनाने से पूर्व संविधानिक अड़चनों को भी दूर करना आवश्यक था। इसकी पूर्ति के लिए भारतीय संसद में 36वां सविधानिक बिल को प्रस्तुत किया गया ससद से जब इसको पारित कर दिया, उसके पश्चात समस्त राज्यों की विधान सभाओ में पारित होने के लिए भेजा गया। जब विधान सभाओ ने भी अपनी स्वीकृति दे दी। उसके पश्चात राष्ट्रपति ने हस्ताक्षर किये और इस प्रकार सिक्किम को भारत का एक अंग मान लिया गया। चोगयाल के पद को समाप्त कर दिया और सिक्किम के नये राज्यपाल बी.बी.लाल को नियुक्त कर वहा भेज दिया गया।

काजी दोरजी व प्रशासन

मुख्यमन्त्री काजी दोरजी के नेतृत्व में मन्त्रिमण्डल का निर्माण हुआ। अपने पांच वर्ष के प्रशासन में काजी दोरजी उन वायदो को पूरा करने में असमर्थ रहे जिनको चुनाव घोषणा-पत्र में सम्मिलित किया गया था। घोषणा पत्र में भूमि सुधार करने का वायदा किया हुआ था परन्तु काजी दोरजी का प्रशासन कुछ भिन्न ही सिद्ध हुआ। स्वयं दोरजी सामन्त वर्ग से अधिक निकट थे। कहा जाता है कि दोरजी का प्रशासन भ्रष्ट और बेईमानी से परिपूर्ण था। उन शोषित नेपाली व लेप्चा लोगों के जीवन स्तर में कोई सुधार नहीं किया गया। सिक्किम के सभी लोग दोरजी के प्रशासन से दुःखी हो गये।

सिक्किम विधानसभा भंग

मुख्यमन्त्री काजी दोरजी के प्रशासन से कुछ विधान सभा के सदस्य नाराज हो गये। कहा जाता है कि कुछ दोरजी के समर्थक ही उससे इसलिए अप्रसन्न हुए क्योंकि दोरजी भूटिया लेप्चा के लिए 12 सीट का रिजर्वेशन करने के लिए बिल विधान सभा में प्रस्तुत करने वाले थे। उससे पहले कि यह बिल पास होता एक मन्त्रिमण्डल के सदस्य ने स्तीफा दे दिया और शेष समर्थकों में ही दोरजी के प्रति विद्रोह उठ खड़ा हुआ। काजी दोरजी को यह साफ अहसास हो गया कि उनकी सरकार गिरने वाली है। उसी प्रतिक्रिया के दौरान दोरजी ने राज्यपाल को विधान सभा भग करने की सलाह दे दी और तुरन्त विधानसभा भंग कर दी गई और चुनाव की घोषणा भी साथ मे कर दी गई।

विधानसभा चुनाव

सिक्किम विधान सभा चुनाव के लिए 2 अक्टूबर की तारीख निश्चित कर दी गई। यह चुनाव 1974 के चुनाव से अपना अलग स्थान रखता था। इसकी भिन्नता निम्न प्रकार से थी—

(1) पहले चुनाव का वातावरण जनतान्त्रिक आन्दोलन की भावना से अनुप्रेरित था, जबकि इस चुनाव में राजा से संघर्ष न होकर मुख्यमन्त्री के भ्रष्ट प्रशासन से था।

(2) पहले चुनाव में सिक्किम की जनता यानी नेपाली भूटिया-लेप्चा सभी एक झण्डे के नीचे (सिक्किम कांग्रेस) आकार राजा के अत्याचारी शासन से मुक्त होना चाहते थे और स्वतन्त्र वातावरण में सरकार बनाने के लिए बड़े आतुर थे। परन्तु इस बार बहुसंख्यक नेपाली लोगों में भी भारी मतभेद थे।

(3) 1974 के चुनाव में मत देने का अधिकार केवल नेपाली भूटिया-लेप्चा ही लोगों को था। परन्तु इस बार भारतीय मैदानी नागरिकों, भारी विरोध के बाद भी, को भी मत डालने का अधिकार दिया गया यह कहा जाता है कि काजी दोरजी ने मैदानी नागरिकों (मारवाड़ी, हरिजन, बिहारी और मुस्लिम) का समर्थन प्राप्त करने के लिए उनको मताधिकार दिलाया। इस कारण भी सिक्किम के मूल-नागरिक नाराज हो गये।

(4) 1974 में मतदाताओं को परिचय-पत्र वितरित नहीं किये गये, जबकि इस बार ऐसा हुआ। लगभग 80,000 लोगों के बीच परिचय-पत्र बांटे गये।

चुनाव के परिणाम

12 अक्टूबर को सिक्किम में विधान सभा के 32 सीटों के लिए शान्तिपूर्वक चुनाव सम्पन्न हुए। चुनाव का परिणाम इस प्रकार रहा :—

घोषित परिणाम

सिक्किम जनता परिषद	सिक्किम कांग्रेस (क्रान्तिकारी)	सिक्किम प्रजातन्त्र	जनता पार्टी	कांग्रेस (उर्स)	सी० पी० (एम०)	स्वतन्त्र
16	11	3	0	0	0	1

उक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि वह सिक्किम कांग्रेस जिसने 1974 के चुनाव में पूर्ण बहुमत प्राप्त किया था इसी पार्टी का नाम 1977 के आम चुनाव के पश्चात् जनता पार्टी हो गया था। वह 1979 के चुनाव में एक

भी सीट प्राप्त न कर सकी। यहां तक स्वयं भूतपूर्व मुख्यमन्त्री काजी लैंडप दोरजी अपने क्षेत्र से पराजित हुए। जो दल बहुमत मे आया उसका किसी भी राष्ट्रीय दल से कोई सम्बन्ध नहीं था। राष्ट्रीय समाचार पत्रों से यह जानकारी प्राप्त हुई कि सिक्किम जनता परिषद का गहरा सम्बन्ध भूतपूर्व राजा से था और वस्तुतः राजा से अनुप्रेरित दल ने विधान सभा में बहुमत प्राप्त किया है। दूसरे नम्बर की पार्टी जिसने 11 सीटें प्राप्त कीं उसका सम्बन्ध नेपाली जाति से जोड़ा गया है जो विद्रोही थे और काजी दोरजी के प्रशासन से नाराज होकर सरकार से अलग हो गये।

इस प्रकार बहुमत दल के नेता नर बहादुर भण्डारी को मुख्यमन्त्री बनाया गया और उसके भण्डारी ने अपने मन्त्रिमण्डल की सूची राज्यपाल को भिजवा दी।

नवीनतम आयाम

1975 में सिक्किम भारत का 22वां राज्य बना और तब से राजनीतिक घटनाचक्रों का अजीब तरीके से सिलसिला प्रारम्भ हुआ। भारत मे विलीन हो जाने के बावजूद वहां के निवासियों में राष्ट्रीय भावना की झलक *अभी भी दिखाई नहीं देती। यद्यपि केन्द्र की ओर से सिक्किम के विकास के* लिए करोड़ों रुपये तथा हजारों गैलन पेट्रोल खर्च हो गया होगा लेकिन वहा के लोग भावनात्मक दृष्टि से अभी भी राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड़े हुए नहो लगते। क्षेत्रीयवाद सिक्किम में इस हद तक दिखाई देता है जैसे उन्होंने भारत में विलय को स्वीकार ही नहीं किया हो। अलगाववादी विचारधारा से वहाँ के निवासी ओतप्रोत लगते हैं।

चोगियाल के हटने के बाद काजी लैंडप दोरजी पहली बार जनतान्त्रिक पद्धति के आधार पर वहां के मुख्यमन्त्री बने। आश्चर्य की बात है कि जिस मुख्यमन्त्री ने 1975 के जनतान्त्रिक आन्दोलन के आधार पर वहां की 32 सदस्यीय विधानसभा मे शत-प्रतिशत सीट जीती वही 1979 के चुनाव मे न केवल अपनी पार्टी को बहुमत दिलाने में पूर्णतया असफल रहा अपितु वह स्वयं अपने क्षेत्र से जीत न सके। 1975 से 79 तक सिक्किम की राजनीति कुछ ऐसी स्थिति मे पहुँच गई जिसका अनुमान भी नही लगाया जा सकता था।

पाँच वर्ष के अल्पकाल मे प्रशासन का ढांचा पूर्णतया बिखरता हुआ नजर आया। जिस संघर्ष से सामंतवादी शक्तियों से लड़कर जनतान्त्रिक शक्ति को विजय दिलाई वह संघर्ष व यातना कुछ ही महीनों बाद में धुंधली हो

गई तथा नेपाली राजनेता भ्रष्टाचार का मार्ग अपनाते हुए सामने आये। काजी दोरजी का प्रशासन भ्रष्टाचारियों से भर गया यही कारण था कि 1979 के चुनाव मे काजी दोरजी की पार्टी व स्वयं दोनों की ही करारी हार हुई। 1979 के चुनाव में क्षेत्रीयवाद पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। चुनाव अभियान मे प्रत्येक दल ने क्षेत्रीय भावना का शोषण या लाभ लेने का प्रयास किया। हर दल ने "सिक्किम को सिक्किमी निवासियों का ही है" नारा लगाया। यह नारा राष्ट्रीय भावना पर आघात करने वाला था।

चुनाव के परिणामों ने सिक्किम परिषद पार्टी को विजयी घोषित किया। यह चुनाव 1975 के चुनाव से बिल्कुल भिन्न थे। पहला चुनाव आन्दोलन का परिणाम था लेकिन दूसरे चुनाव में आपसी मतभेद तथा टकराहट खुलकर सड़क पर आ गई थी। 1979 के चुनाव ने एक और संकेत दिया वह यह कि राष्ट्रीय भावना लेश मात्र भी नही रह गई थी। क्षेत्रीय भावना की ओर झुकाव रखने वाली शक्ति की न केवल विजय हुई अपितु चोगियाल (राजा) समर्थकों की संख्या बहुमत में हो गई। नर बहादुर भंडारी भारी बहुमत से सिक्किम के मुख्यमन्त्री बने। सिक्किम परिषद एक ऐसा दल उभरकर आया जो सामंतवादी शक्तियो का समर्थक हो गया। जिन गुटों का सिक्किम परिषद को समर्थन प्राप्त था वे थे—लैप्चा-भूटिया, कबीले-आदिवासी-लिम्बू तथा नेपालियो में निवार उपजाति, जिनको चोगियाल के गुट से अधिकांश जोड़ा जाता रहा है। पहली जून, 1981 को चोगियाल ने अपने बयान मे कहा था कि, "काजी दोरजी की सरकार मेरे विरोध में थी लेकिन वर्तमान सरकार के साथ मेरे सम्बन्ध अच्छे हैं" यह बयान इस बात को स्पष्ट करता है कि सिक्किम परिषद पार्टी के सदस्य तथा उनके नेताओं का चोगियाल से न केवल मधुर सम्बन्ध है अपितु उनकी यह विचार धारा दृढ़ है कि सिक्किम का भारत मे विलय असंविधानिक था।" सिक्किम परिषद की नीति भी लैप्चा भूटिया आदिवासी तथा निवार नेपाली जाति को पूरा समर्थन देने वाली थी। उक्त विशेष गुट के लोगो को रोजगार देना सिक्किम परिषद सरकार का परम कर्तव्य हो गया था। मुख्यमन्त्री नर बहादुर भंडारी स्वयं ने बयान में कहा था—"सिक्किम केवल मूल निवासियो का ही है और बाहर के लोगो का यहां कोई भी स्थान नही है।" हमने उन सभी लोगो को वापस भेज दिया है जो यहां प्रतिनियुक्ति पर आये हुए थे।

सिक्किम परिषद की सरकार ने लिम्बू भाषा को मान्यता दे दी थी। इसी सरकार के अन्तर्गत "लैप्चा संगठन" को उभरने का पूरा मौका मिला।

इस प्रकार सिक्किम परिषद पार्टी के साथ लेप्चा-भूटिया-लिम्बू तथा नेवार नेपाली थे जिनको सर्वाधिक सुख-सुविधायें प्राप्त थी, जबकि अन्य निवासी आवश्यक सुविधाओं से पूर्णतया वंचित रखे गये। यही कारण था कि मुख्य-मन्त्री भंडारी सिक्किम परिषद क्षेत्रीय दल को राष्ट्रीय दल यानी कांग्रेस (इ) में नहीं बदल सके जैसा कि पूर्व मुख्यमंत्री काजी दोरजी ने 1977 मे कांग्रेस को जनतापार्टी में बदल दिया था। 1981 में भंडारी ने अपने बयान में अपनी असमर्थता को व्यक्त करते हुए कहा कि, "यद्यपि केन्द्रीय हाईकमान के द्वारा मुझे संकेत मिला है कि मै सिक्किम परिषद को कांग्रेस (इ) में परिवर्तित कर दूं परन्तु मुझे जिस गुट का समर्थन प्राप्त है तथा जो लोग मेरे मंत्रिमण्डल मे हैं वे दल को दूसरा स्वरूप देने के विरोध में हैं।" यह बयान पार्टी के बदलने का विरोध तो करता था लेकिन साथ में नई दिल्ली से उन सुविधाओं को भी लेना आवश्यक था जिनके आधार पर अपने दल के सदस्यों को लाभ पहुंचाना था। मुख्यमंत्री भंडारी की राजनीति तथा उसकी सूझ-बूझ ने उसे मजबूर किया कि वह केन्द्रीय हाईकमान के संकेत को स्वीकार करे जिससे वह उन लाभों से वंचित न हो जाय जिसके न होने से सरकार चलाना असंभव ही हो जाय। इस प्रकार 8 जुलाई, 1981 को भंडारी अपने 46 सदस्यीय दल को दिल्ली लाये तथा प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के निवास स्थान पर उन्होंने सामूहिक तौर पर कांग्रेस (इ) की सदस्यता स्वीकार की। 8 जुलाई, 1981 से सिक्किम मे रातोरात कांग्रेस (इ) की सरकार का निर्माण हुआ। केवल दल का परिवर्तन तो अवश्य हुआ लेकिन बहुसंख्यक नेपाली निवासियों के प्रति भेदभाव की नीति में कोई परिवर्तन नही हुआ। बहुसंख्यक निवासियों मे असुरक्षा की भावना ज्यों की त्यों बनी रही।

समस्या यहां तक सीमित नही है। इनके अलावा अन्य भावी खतरे भी दिखाई देते हैं जो राष्ट्रीय भावना से हटकर है। उदाहरण के लिए, सिक्किम मे एक अल्पसंख्यक गुट और है जो बुद्ध-लेप्चा के नाम से जाना जाता है। यह गुट उन शक्तियों से गठबंधन कर रहा है जो भारतीय विरोधी शक्ति कहा जा सकता है। बुद्ध-लेप्चा उन बहुसंख्यक नेपालियों की राजनीतिक गतिविधियों के बारे मे सुशिक्षित रहते हैं जिनके नजदीक रहने से उनका अस्तित्व खतरे मे पड़ जायेगा। अपनी सुरक्षा की दृष्टि से बुद्ध-लेप्चा दार्जिलिंग तथा सिक्किम के लेप्चा ईसाई के साथ अधिक नजदीक दिखाई देते है। ईसाई लेप्चा लोगों का शैक्षणिक स्तर अपेक्षकृत अधिक ऊंचा है तथा रहन-सहन का दर्जा भी अधिक समृद्ध है। यही कारण है कि बुद्ध लेप्चाओ को

से है कि सिक्किम के मूल निवासियों का मैदानी लोगों के प्रति घिनौना दृष्टिकोण। यह घृणा उन 60,000 भारतीय मैदानियों के प्रति है जिनको अधिक चतुर, होशियार तथा चालक समझा जाता है। उनका यह भ्रम है कि इन मैदानी लोगों ने वर्षों से बहुसंख्यक लोगों को यातना दी है तथा उनका हर दृष्टि से शोषण किया है। ये 60,000 मैदानी लोग वर्तमान परिस्थिति में हमेशा असुरक्षा की भावना से रह रहे हैं तथा उन्हें हमेशा यही डर बना रहता है कि इनको कभी भी वहां से भगाया जा सकता है।

असुरक्षा की भावना की पुष्टि मुख्यमन्त्री नरबहादुर भंडारी के बयान से की जा सकती है। 8 जुलाई, 1981 को पटना से प्रकाशित "इंडियन नेशन" में मुख्यमन्त्री ने बयान दिया था कि बाहर से आने वाले लोगों को यद्यपि एक दम रोका तो नहीं जा सकता लेकिन भविष्य में रोकने के लिये ऐसे कदम उठा लिये गये हैं।" सिक्किम के एक विख्यात लेखक हेमलाल भंडारी ने अपनी एक टिप्पणी में कहा था कि, "भंडारी सरकार उन लोगों के बारे में चिन्तित है जो दार्जिलिंग, कलकत्ता, बिहार-राजस्थान-उत्तरप्रदेश तथा कलिमपोंग से आकर बराबर बसने का इरादा कर रहे हैं।" अपनी टिप्पणी में लेखक ने यह भी कहा कि बाहर से आने वाले लोगों का तांता यदि इसी तरह बना रहा तो सिक्किम के मूल निवासियों (नेपाली-भुटिया-लेप्चा आदि) के लिये अधिक संकट पैदा हो जायेगा। भंडारी सरकार ने उन 60,000 मैदानी लोगों को सिक्किम का निवासी नहीं माना है यद्यपि वे लोग सिक्किम में उन्हीं दिनों आये थे जब नेपालियों का प्रवेश हुआ था। जबकि नेपालियों को भंडारी सरकार ने पूर्णरूपेण स्वीकार कर लिया है। मैदानी लोगों को इस प्रकार के भेदभावपूर्ण व्यवहार से डर है कि कहीं ऐसा न हो कि एक दिन उनको राजनैतिक अधिकारों के उपभोग से भी हाथ धोना पड़ जाए। यह डर इसलिये भी बढ़ गया है क्योंकि श्री रामचन्द्र पोदियाल ने कोर्ट में याचिका पेश कर दी है कि बाहर से आये हुए लोगों को प्रान्तीय विधानसभा में प्रतिनिधित्व न दिया जाये क्योंकि संविधानिक दृष्टि से उनको "पैरिटी शेड्यूल" के [illegible] अधिकार प्राप्त हैं। यद्यपि श्री पौदियाल का मैदानी लोगों के प्रति

ईसाई लैप्चाओं ने अधिक आकर्षित किया है। इन दोनों श्रेणी के लैप्चाओं ने एक संगठन का निर्माण कर लिया है जो भारतीय राष्ट्र भावना से अपना संबंध नही रखना चाहते। लैप्चाओं के नाम से दो संगठन हैं जिनके नाम हैं· (अ) सिक्किम लैप्चा साहित्य परिषद, (ब) सिक्किम लैप्चा परिषद। ये दोनों ही संगठन इतने भोले भाले तथा निर्बल नहीं हैं जितने वे बाहर से देखने में लगते हैं। भूटिया लोगों की भी भूमिका चोगियाल समर्थक शक्ति को निरन्तर बल देने की रही है। इस प्रकार चोगियाल के नाम पर चोगियालवाद धीरे-धीरे पनप रहा है। भूटिया लोगों ने बार-बार सिक्किम के निवासियों को आह्वान सा किया है कि सिक्किम की एक अलग संस्कृति है, अलग भाषा है तथा रहने सहने का तौर तरीका भी मैदानी लोगों से भिन्न है। कहने का अर्थ यही है कि सिक्किम के मूल निवासियों के मानस में अभी भी वही बात बैठी हुई है कि सिक्किम भारत की मुख्य धारा से आत्मसात नही कर सकता। यही बात चोगियाल भी 1975 से पूर्व वहां के निवासियो से कहा करता था। इस प्रकार अलग संस्कृति, अलग धर्म तथा धार्मिक संगठनों के माध्यम से जनतान्त्रिक विरोधी तथा भारत विरोधी तत्वों को अनवरत रूप से उकसाया जाता रहा है।

दूसरी ओर 70 प्रतिशत नेपाली लोग अभी भी सामन्तवादी शक्तियो के हाथों पीड़ित व शोषित हैं। उनको अभी भी प्रान्तीय विधानसभा में सुरक्षित सीट प्रदान नही की गई है। नेपाली भाषा को भी भारतीय संविधान में सम्मिलित नही किया गया है। यद्यपि नेपाली बहुसंख्यक निवासियो का नेतृत्व श्री रामचन्द्र पोदियाल करते रहे है जिनके दल का नाम क्रान्तिकारी सिक्किम कांग्रेस है। भौगोलिक तथा राजनीतिक समानता दार्जिलिंग व कलिंगपौंग मे देखने को मिलती है जिसका लाभ नेपाली लोग लेना चाहते हैं। नेपालियों ने भी एक नारा प्रस्तुत किया है वह है "अलग गोरखा प्रान्त"। यह नारा निश्चित ही समस्त नेपालियो को एक झडे के नीचे ला देगा। यही नारा नेपाली भाषा को भारतीय संविधान में शामिल करने में मदद देगा। इसी के दौरान नेपालियों ने समस्त भारतीय नेपाली भाषा समिति का गठन किया है। विधानसभा में भी सिक्किम कांग्रेस (क्रांति) का सबसे बड़ा विरोधी दल है जो जनता पार्टी से टूट कर बना है।

सिक्किम में अलगाववादी तत्वों की राजनीतिक गतिविधियाँ किस प्रकार राष्ट्रीय भावना से प्रतिकूल दिखाई देती है? पहली झलक तो इसी बात

से है कि सिक्किम के मूल निवासियों का मैदानी लोगों के प्रति घिनौना दृष्टिकोण। यह घृणा उन 60,000 भारतीय मैदानियों के प्रति है जिनको अधिक चतुर, होशियार तथा चालक समझा जाता है। उनका यह भ्रम है कि इन मैदानी लोगों ने वर्षों से बहुसंख्यक लोगों को यातना दी है तथा उनका हर दृष्टि से शोषण किया है। ये 60,000 मैदानी लोग वर्तमान परिस्थिति में हमेशा असुरक्षा की भावना से रह रहे हैं तथा उन्हें हमेशा यही डर बना रहता है कि इनको कभी भी वहां से भगाया जा सकता है।

असुरक्षा की भावना की पुष्टि मुख्यमन्त्री नरबहादुर भंडारी के बयान से की जा सकती है। 8 जुलाई, 1981 को पटना से प्रकाशित "इंडियन नेशन" में मुख्यमन्त्री ने बयान दिया था कि बाहर से आने वाले लोगों को यद्यपि एक दम रोका तो नही जा सकता लेकिन भविष्य में रोकने के लिये ऐसे कदम उठा लिये गये हैं।" सिक्किम के एक विख्यात लेखक हेमलाल भंडारी ने अपनी एक टिप्पणी में कहा था कि, "भंडारी सरकार उन लोगों के बारे में चिन्तित है जो दार्जिलिंग, कलकत्ता, बिहार-राजस्थान-उत्तरप्रदेश तथा कलिंगपोंग से आकर बराबर बसने का इरादा कर रहे हैं।" अपनी टिप्पणी में लेखक ने यह भी कहा कि बाहर से आने वाले लोगों का तांता यदि इसी तरह बना रहा तो सिक्किम के मूल निवासियों (नेपाली-भूटिया-लेप्चा आदि) के लिये अधिक संकट पैदा हो जायेगा। भंडारी सरकार ने उन 60,000 मैदानी लोगों को सिक्किम का निवासी नही माना है यद्यपि ये लोग सिक्किम में उन्ही दिनों आये थे जब नेपालियों का प्रवेश हुआ था। जबकि नेपालियों को भंडारी सरकार ने पूर्णरूपेण स्वीकार कर लिया है। मैदानी लोगों को इस प्रकार के भेदभावपूर्ण व्यवहार से डर है कि कही ऐसा न हो कि एक दिन उनको राजनीतिक अधिकारों के उपभोग से भी हाथ धोना पड़ जाय। यह डर इसलिये भी बढ़ गया है क्योंकि श्री रामचन्द्र पोदियाल ने कोर्ट में याचिका पेश कर दी है कि बाहर से आये हुए लोगों को प्रान्तीय विधानसभा में प्रतिनिधित्व न मिले जबकि संविधानिक दृष्टि से उनको "पैरिटी फार्मूला" के अन्तर्गत अधिकार प्राप्त है। यद्यपि श्री पोदियाल का मैदानी लोगों के प्रति रुख बदल तो गया है विशेष रूप से इसलिये [illegible] सिक्किम में राजनीतिक वातावरण भी तीव्र गति से बदल रहा है। [illegible] में यह स्पष्ट किया है कि, "हमारी पार्टी मैदानी लोग तथा व्यापारी समुदाय के खिलाफ नही है परन्तु उन्हे जरूरत से ज्यादा महत्व नही दिया जायेगा।"

इस प्रकार सिक्किम की राजनीति को दिशा देने वाले वे विशिष्ट लोग हैं जो वहां के जाति व उपजातियों में बटे हुए हैं। यह सच है कि सिक्किम के विकास के लिये केन्द्र द्वारा करोड़ों रुपये का अनुदान का गलत तरीके से उपयोग इन्हीं विशिष्ट लोगों में विभाजित हुआ। योजना के अन्तर्गत केन्द्र ने सिक्किम को 121.82 करोड़ रुपये दिये थे जिसका दुरुपयोग इन्हीं लोगों ने किया।

चोगियालवाद

कहने को सिक्किम के चोगियाल (राजा) को 1975 में हटा दिया था और 21 राज्यों की तरह वहां जनतान्त्रिक सरकार बनी तथा प्रशासन का ढाचा संविधानिक तरीके से गठित हुआ। 22 वां राज्य बनने के बाद ऐसी आशा की जाती थी कि सिक्किम के निवासी भारत के प्रशासन तथा राजनीति की मुख्य धारा से जुड़ जायेंगे। ऐसी उम्मीद तीन बातों के आधार पर की जा रही थी।

पहला आधार तो यह था कि सिक्किम की जनता सदियों से चोगियाल प्रशासन से पीड़ित थी और उनके शोषण होने से जनतान्त्रिक आन्दोलन भी हुए। दूसरी बात यह थी कि केन्द्रीय सरकार का ध्यान नये प्रान्त के विकास की ओर अधिक था। इसीलिये आर्थिक सहायता अपेक्षाकृत सिक्किम को अधिक प्रदान की यहां तक कि जम्मू-काश्मीर भी प्राथमिकता की श्रेणी में न रह पाये। छठी योजना के अन्तर्गत सिक्किम को 121.82 करोड़ रुपये आर्थिक सहायता केन्द्र के द्वारा प्राप्त हुई। इतनी भारी आर्थिक सहायता देने का प्रमुख उद्देश्य यही था कि सिक्किम के निवासी सभी तरह से सुखी रहें— उनको किसी भी प्रकार से कष्ट न हो। तीसरा आधार यह था कि केन्द्र का सिक्किम के निवासियों की भावना तथा संवेदना को पूरी तरह समझते हुए यह उद्देश्य था कि उन पर कोई भी चीज लादी या थोपी न जाये। उनकी देश के प्रति सही दिशा में निष्ठा बढ़े तथा वे धीरे-धीरे भारत के राष्ट्रवाद को समझने का प्रयास करें। केन्द्र की उक्त तीन आधारों पर सिक्किम के प्रति नीति उचित ही दिशा में मानी जा सकती है। परन्तु यह नीति आगे वाले दिनों में सफल होती हुई दिखाई नहीं दी।

परन्तु केन्द्र की तीन आधारों पर संजोयी गई उम्मीदें असफल रहीं। कटु सत्य यह है कि सिक्किम में चोगियालवाद अभी भी जीवित है। यद्यपि चोगियाल पालदेन नाम ग्याल की मृत्यु हो गई और उसका दाह-संस्कार

गैंगटोक में परम्परागत पद्धति से किया गया। चोगियाल की चिता की लपटें अभी शान्त भी नही हुई थीं तभी एक षड्यन्त्र होता हुआ दिखाई दिया जो चोगियाल की संस्था को जीवित करने के लिये कटिबद्ध था। ऐसा लगने लगा जैसे सिक्किम के निवासियों ने भारत मे विलय के विरोध मे फिर से झंडे उठा लिये हैं। दूसरे शब्दो में चोगियालवाद सिक्किम में फिर से जीवित हो उठा है तथा भारतीय राष्ट्रवाद के लिये खतरे के संकेत मिलने लगे हैं। सिक्किम के अन्दर व बाहर कई ऐसी सशक्त शक्तिया काम कर रही हैं जो राष्ट्रीय एकता के प्रतिकूल हैं। जिस दिन (19 2.82) चोगियाल का दाह-संस्कार किया गया, उसी दिन, क्षेत्रीय तथा विघटनकारी तत्त्वो ने भारतीय राष्ट्रवाद को चुनौती देते हुए कहा था कि "चोगियाल का पुत्र तेनजिंग तोपग्याल नामग्याल सिक्किम का 13वा चोगियाल होगा।" यह चुनौती केवल भावना का उफान ही नही थी, बल्कि एक संकेत भी था कि चोगियाल के समर्थक अभी भी राजनीतिक व्यवस्था में शक्तिशाली हैं जो भारत के भूखंड से जुड़ने के लिये तैयार नही हैं। उल्लेखनीय है कि सिक्किम विधानसभा के दस विधायकों ने उस कागज पर हस्ताक्षर करके चोगियाल के पुत्र को 13वां चोगियाल स्वीकार किया। उन दस विधायकों मे से 6 कांग्रेस (इ) के, 3 कांग्रेस (क्रान्तिकारी) तथा एक स्वतन्त्र थे। जिस कागज पर विधायको ने हस्ताक्षर किये उस पर लिखा था, "19 फरवरी, 1982 को, तिब्बत के कलैन्डर का वर्ष 'व्याकज्या व चुखी' सिक्किम की जनता ने 13वा चोगियाल को परम्परागत स्कार्फ भेंट करने का निश्चय किया है। भेंट करने का स्थान गैंगटोक का शुक्ला खाग चुना गया तथा, समय साय 3 बजे।" उक्त राजनीतिक गतिविधियाँ स्पष्ट संकेत देती हैं कि सिक्किम का भारत में विलय एक वास्तविक तथ्य नहीं है। चोगियाल के पुत्र ने भी सिक्किम की स्वतन्त्र सत्ता के बारे में बयान देना शुरू किया। अपने बयानों में पुत्र ने यह भी कहा कि "जिस ढंग से सिक्किम को भारत मे मिलाया गया वह गलत था।" अपने पिता की तरह पुत्र ने भी वही बात कहना प्रारम्भ किया कि सिक्किम में राजतन्त्र को वापस लाना इतना महत्त्वपूर्ण नही है जितना उसकी स्वतन्त्र सत्ता को कायम रखना।

इसी प्रकार की ध्वनि तथा संघ मुख्यमन्त्री नर बहादुर भंडारी के चुनावी अभियान के भाषणों मे भी मिलती है। श्री भंडारी ने अपने भाषणों मे सिक्किमी जनता से उसी प्रकार के वायदे पूरे करने को कहा जिनको चोगियाल के पुत्र वांगचुक ने अपने बयानों में बखान किया था। श्री भंडारी तो अपने भाषणों में यहां तक कह गये कि "सिक्किम का भारत में विलय

असंवैधानिक तथा जल्दबाजी का परिणाम है।" भंडारी ने भाषणों में यह भी कहा कि "सिक्किम के बारे में सोचने तथा भविष्य में उसका दर्जा क्या हो यह सब उसके निवासियों को ही अधिकार है–बाहर वालों को नहीं।" भंडारी के इस प्रकार के भाषणों ने भारतीय राष्ट्रवाद को अत्यधिक झकझोरा ही नहीं अपितु कमजोर किया है। सिक्किम के सभी राजनीतिक दलों का यही मत है कि सिक्किम की एक स्वतन्त्र सत्ता है और बनी रहनी चाहिये।

श्री भंडारी न केवल शब्दों में चोगियाल के शाही घराने का समर्थन करते रहे अपितु उन्होंने इस दिशा में प्रभावी काम भी किया। उन्होंने केन्द्र पर बराबर दबाव बनाये रखा कि चोगियाल के शाही परिवार तथा उनके सम्बन्धियों को उचित मुआवजा तथा सुविधायें मिलनी चाहिये जो कि रहन-सहन के स्तर को ठीक रख सके। यह भंडारी जी का ही केन्द्र पर दबाव तथा आग्रह था कि चोगियाल का दाह-संस्कार सरकारी तौर पर सम्मानपूर्वक हो। यही कारण था कि केन्द्र ने चोगियाल के दाह-संस्कार के लिये सिक्किम सरकार को 20 लाख रुपये दिये।

श्री भंडारी की राजनीति को "दुहरी नीति" की संज्ञा दी जाने लगी है। एक ओर तो भंडारी सिक्किम में हिन्दी भाषा का प्रचार तथा उसको लागू करने के लिये केन्द्र से वचनबद्ध है जिससे की उन्हे आर्थिक सहायता बराबर सहूलियत से मिलती रहे तथा उनका व्यावहारिक स्वरूप तथा राजनैतिक शैली पूर्णतया प्रतिकूल दिखाई देती है। केवल हिन्दी के नाम पर केन्द्र से अनापशनाप आर्थिक सहायता लेना तथा काम उसके बिल्कुल प्रतिकूल करना यह उनकी दुहरी नीति साफ नजर आती है। एक उदाहरण से दुहरी नीति स्पष्ट होती है वह यह कि जब मार्च, 1982 को विदेश मंत्री नरसिंह राव गैंगटोक गये तो भंडारी जी ने पश्चिमी बंगाल की भाषायी नीति की आलोचना की, जबकि स्वयं ने कुछ महिने पहले ही गंगटोक डिग्री कालेज में हिन्दी विभाग को समाप्त कर हिन्दी के प्राध्यापक की सेवाओं से मुक्त कर दिया। जिन हिन्दी प्राध्यापकों की सेवा को समाप्त किया उनका नाम है लबोदार झा।

अकेले भंडारी जी ही भारत विरोधी भावना को सिक्किम में नहीं फैला रहे अपितु विरोधी दल भी इस अभियान मे शामिल हैं। सिक्किम कांग्रेस (क्रान्तिकारी) के प्रमुख नेता तथा विधान सभा के पूर्व अध्यक्ष बी. बी. गुरंग तथा उनके निकट साथी पी. एल. गुरंग दोनों का यही मत है कि सिक्किम की स्वतन्त्र सत्ता पुनः स्थापित होनी चाहिये तथा राजतंत्र घराने के सदस्यों

को उचित मुआवजा मिले जिससे वे स्तर से अपना जीवन व्यतीत कर सकें। पी. एल. गुरंग ने तो यहां तक कह दिया कि "सिक्किम को भूटान की तरह दर्जा मिलना चाहिये।" पी. एल. गुरंग भी उन 10 विधायकों में से एक थे जिन्होंने चोगियाल के पुत्र को 13वां चोगियाल घोषित किया था तथा स्कार्फ भेंट किया था। सिक्किम कांग्रेस (क्रान्तिकारी) के अध्यक्ष श्री रामचन्द्र पोदियाल न केवल वर्तमान संवैधानिक दर्जे के आलोचक ही हैं अपितु उन्होंने भाषणों में स्पष्ट कहा है कि, "सिक्किम को जम्मू-कश्मीर से अधिक विशेष दर्जा मिलना चाहिये।"

भारत विरोधी भावना तथा चोगियाल समर्थक केवल राजनीतिज्ञों तक ही सीमित नहीं है अपितु यह नौकरशाही तथा शैक्षणिक केन्द्रों तक पहुंच चुकी है। उल्लेखनीय है कि जिस समय चोगियाल के पुत्र का राज्याभिषेक उत्सव हो रहा था, उस क्षण न केवल 10 विधायक मौजूद थे बल्कि चार आई.ए.एस. वरिष्ठ अधिकारी भी उपस्थित थे और उन्होंने खुलकर चोगियाल समर्थक विचार प्रस्तुत किये।

भारतीय तथा मैदानी निवासी विरोधी भावना इस हद तक पहुंच गई कि एक दिन पंजाब निवासी शिक्षा निदेशक श्री मधुसूदनसिंह पर वहां के उपद्रवी लोगों ने घातक प्रहार किया। उनके ऊपर भारत सरकार के एजेन्ट होने का आरोप लगाया गया। एक दक्षिणी निवासी महिला, जो कि पुलिस विभाग में इन्सपैक्टर थी, को भी गंगटोक के एन्वी कैम्पस स्थान पर पीटा गया। उक्त हिंसात्मक घटनाओं से स्पष्ट जाहिर होता है कि सामंतवादी शक्तियां, सिक्किम में फिर से किस प्रकार सर उठा रही हैं।

यहां तक कि धार्मिक मठाधीश लामा लोग भी सिक्किम के विलय के विरोध में अपनी राय खुले आम देने लगे हैं। लामाओं का प्रतिकूल रुख होना स्वाभाविक है क्योंकि जो अनाप-शनाप आर्थिक सहायता चोगियाल के शासन में मिलती थी वह विलय के बाद आर्थिक लाभ मिलना सम्भव नहीं हुआ। एक अन्य कारण भी स्पष्ट लगता है जिसके कारण लामा समुदाय वर्तमान परिस्थितियों से खुश नहीं है। कारण यह है कि अति आधुनिकता के पर्यावरण में लामायुक्त शिक्षा का प्रावधान स्वतः ही गायब हो रहा है जिससे उनकी महत्ता घट रही है।

चोगियाल के पुत्र का राज्याभिषेक उत्सव तथा उससे जुड़ी हुई राजनीतिक गतिविधियां कुछ मुद्दों की ओर संकेत अवश्य करती हैं। पहला मुद्दा तो यह है कि भारत की अखण्डता तथा सुरक्षा-सिक्किम की वर्तमान समस्या

से जुडी हुई है। वहां के निवासियों ने विलय के अध्याय को पुनः खोलना शुरू कर दिया है। इस समस्या से क्षेत्रीयवाद तथा विघटनकारी शक्तियाँ भी उभर कर आयी हैं। इस प्रकार की समस्याएँ न केवल सिक्किम से ही सीमित हैं अपितु सपूर्ण उत्तरी पूर्व सीमा विघटित गतिविधियों से पहले से ही पीडित है। विघटनकारी शक्तियो ने बाहरी ताकतों को भी मौका दिया है जो दिनों-दिनो अपनी कार्यवाहियों मे सक्रिय होते चले जा रहे हैं।

उदाहरण के लिए चीन तभी से यह आपत्ति उठा रहा है कि "सिक्किम का भारत मे विलय संविधानिक नही है।" ऐसी आशंका व्यक्त की जा रही है कि स्व चोगियाल के एक पुत्र शोनाम गियाल जो बीजिंग में रह रहे हैं उनका चीन अवश्य भारत विरोधी कार्यवाही मे प्रयोग करेगा। अम-रीका की तो पहले से ही भूमिका जारी थी जब एक महिला से चोगियाल की शादी हुई और विलय के बाद वह अपने पति को छोड़कर अमरीका भाग गई। नेपाल भी भारत की कडी आलोचना को भूला नही है जब नेपाल के राजा ने चोगियाल के समर्थन मे अपने विचार व्यक्त किये थे। पूर्व प्रधानमन्त्री श्री मोरारजी देसाई के भोले भाले विचारों का नेपाल, चीन व सिक्किम निवासियों ने पूरा-पूरा लाभ उठाया है।

नेपाली निवासियों की नागरिकता का प्रश्न

भंडारी सरकार प्रारम्भ से ही सिक्किम में रह रहे 30,000 नेपाली नागरिकों के बारे में चिन्तित रही है कि किस प्रकार उनको अपने प्रान्त में विशेष रूप से केन्द्र सरकारी तौर पर मान्यता दी जाये। भंडारी सरकार की विशेष रूप से केन्द्र से शिकायत है कि 1975 से इस समस्या पर कोई गम्भीरता नही बरती गई है। इसी के साथ जुड़ी हुई समस्या यह भी है कि सुरक्षित सीटों के बारे मे कोई निर्णय नही हो पाया है तथा भारतीय सविधान में नेपाली भाषा को उचित स्थान नही मिल पाया है। असली विवादास्पद समस्या 30,000 नेपालियों की नागरिकता, जो पीढी दर पीढी पिछले कई दशकों से रहते आ रहे है फिर भी उनके स्थायी बसने की गारंटी नही है। इस समस्या ने केन्द्र व राज्य सम्बन्ध का भी विवाद उठा रखा है। मुख्यमन्त्री भंडारी के अलावा अन्य विपक्षी दलों ने भी केन्द्र से दबाव डालते हुए मांग की है कि नेपाली निवासियों की नागरिकता का विवाद शीघ्र तय किया जाय।

नेपालियों की नागरिकता का प्रश्न और भी विकट होता जा रहा है, जितना केन्द्र इस समस्या को उदासीनता से ले रहा है। जब नव. 26-1983 को श्रीमती इन्दिरा गांधी गैंगटोक गई थीं तो उन्होने यही कहा था कि, "अभी उन नेपालियों को तरीके से पहिचाना नही जा सका है जो दशकों से सिक्किम

में रह रहे हैं और यह समस्या अभी विचाराधीन है।" राज्यसभा में भी राज्य गृहमन्त्री एन. आर लस्कर ने कहा था कि, "16 मई, 1975 को एक आदेश जारी किया गया था जिसके अन्तर्गत 26 अप्रैल, 1975 से पहले जिन्होंने 1961 के एक्ट की शर्तों को पूरा कर दिया है वे भारत के नागरिक समझे जायेंगे।" उक्त आदेशों को व्यावहारिक रूप, में अभी भी केन्द्र द्वारा पूरा नही किया है।

विधान सभा भंग

नर बहादुर भंडारी की सरकार जब केन्द्र से अधिक तालमेल रखने में असमर्थ रही तो सिक्किम के राज्यपाल ने केन्द्र की सलाह से भग कर दिया। वस्तुतः स्थिति यही थी कि भंडारी सरकार की राजनीति लगातार नई दिल्ली को न केवल किसी न किसी मुद्दे पर परेशान किया जाय बल्कि निरन्तर दबाव बनाये रखने के आवरण में आर्थिक लाभ प्राप्त करती रहे। इस दुहरी नीति के बारे में केन्द्र जागरूक था। इसलिये देश की अखंडता तथा एकता को सुदृढ़ रखने के लिये यह जरूरी समझा गया कि भंडारी सरकार को हटा दिया जाय।

लोकसभा चुनाव

श्रीमती इन्दिरा गांधी की हत्या के तुरन्त पश्चात् श्री राजीव गांधी प्रधान मन्त्री बने और उन्होंने आम चुनाव की घोषणा कर दी। सारे देश में 24 व 25 दिसम्बर को चुनाव सम्पन्न हुए तथा 31 दिसम्बर, 1984 को परिणाम घोषित होना शुरू हुए। चुनाव परिणाम में सिक्किम से अपदस्थ मुख्य मन्त्री श्री भंडारी लोकसभा सीट के लिये चुन कर आये।

निष्कर्ष

नर बहादुर भंडारी को मुख्य मन्त्री पद से हटाने के बाद भी सिक्किम जनता ने उन्हे *लोक सभा के लिये चुनकर भेजा।* इस विजय से यह संकेत अवश्य मिलता है कि सिक्किम में सामंतवादी शक्तियों का जोर है और उनकी समस्त उन मांगों को केन्द्र किस प्रकार संतुष्ट कर पायेगा जो राष्ट्र हित में नहीं हैं। शाही घराने के प्रति झुकाव कोई बुरी बात नही है परन्तु उससे जुड़ी हुई मांग अधिक खतरनाक है। सिक्किम को स्वतन्त्र सत्ता के रूप में कैसे स्वीकार किया जा सकता है जब वह भारत का 22वां राज्य संविधानिक तरीके से घोषित हो चुका है। 30,000 नेपाली निवासियों की समस्या का हल निकट

भविष्य में संभव नही लगता क्योंकि हल करने से पूर्व कुछ नाजुक क्षेत्रों की गम्भीरता तथा भावी परिणाम के बाद भी सोचना होगा। केन्द्र की नीति पर्वतीय राज्यों के बारे में सोचनीय समस्या है।

इतना आवश्यक है कि सिक्किम निवासियों को समझदारी से काम करना होगा। उन्हें भारतीय राजनीति के मुख्य धारा से जुड़ना होगा तथा राष्ट्रीय एकता तथा अखंडता के लिये निष्ठापूर्वक काम करना होगा।

संदर्भ सूची

1—पॉलिटिक्स ऑफ सिक्किम — अवधेश कुमार
2—सिक्किम जोइन्स दा मदरलैंड — डा. आर सी मिश्रा
3—सिक्किम हैरल्ड — गैंगटॉक
4—सिक्किम टाइम्स — गैंगटॉक
5—सिक्किम एक्सप्रेस — गैंगटॉक
6—इंडिया टू डे — पटना
7—दॉ इन्डियन नेशन

सिक्किम में नेतृत्व का स्वरूप

भारत की भौगोलिक स्थिति को देखते हुए ऐसा मालूम देता है कि स्थानीय समस्याओं का हल और उससे बढ़ता हुआ असंतोष के लिए वहाँ की भूगोल अधिक जिम्मेदार है। स्वतन्त्रता के बाद से लेकर आज तक परिस्थितियो में कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ है। अन्तर केवल इतना है कि 1947 के बाद की अवधि एक प्रारम्भिक काल की थी जिसमें घरेलू समस्याओं पर काबू पाने के लिए सभी भारतीयों का कर्तव्य बन जाता था कि तत्कालीन परिस्थितियों का सामना सहिष्णुता-कर्त्तव्यपरायणता तथा मानवीयता के आधार पर करें और ऐसा हुआ भी। सभी लोगो ने अपनी स्थानीय समस्याओं को महत्व नही देते हुए व्यापकता और विशाल दृष्टिकोण का परिचय दिया। परन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया राजनीतिक नेता तथा नौकरशाही का व्यवहार उसी गति से प्रान्तों की स्थानीय समस्याओं के बारे में उदासीन तथा उपेक्षापूर्ण होता गया। असंतोष तथा कष्ट को व्यक्त करने की शालीनता को भी प्रशासकों ने कोई ध्यान नहीं दिया। सहिष्णुता की सीमा भी पार हुई। उसके पश्चात तो केवल उन प्रस्तावों के अपनाने का विकल्प रह गया कि जिसके माध्यम से प्रशासकों का ध्यान मजबूरन जाय। असतोष को जाहिर करने का तरीका उन लोगों को अच्छी तरह आ गया कि यहाँ पर्वतीय क्षेत्रों में विशेष रूप से सिक्किम-कलिपोक–दार्जिलिंग-नई जलपाईगुड़ी आदि स्थानों पर नेपाली लोग बसे हुए हैं जो बडे मेहनती होते हैं और शारीरिक कार्य करने में बड़े कुशल माने जाते हैं। चूंकि यह जाति बहुपत्नि जाति है इसलिये नेपालियों की जनसंख्या भी द्रुतगति से पिछले 40 साल मे बढी है। सिक्किम में 1973 का जनतांत्रिक विद्रोह इन्हीं नेपाली लोगो ने प्रारम्भ किया था और उस आन्दोलन में नेपालियों को सफलता भी मिली। जिस तरह का नेतृत्व सिक्किम मे उभर कर आया है उसका भी विश्लेषण करने का प्रयास है।

भारत जैसे विकासशील देश में एक प्रान्त का समग्र विकास बहुत कुछ वहां के स्थानीय नेतृत्व तथा उसकी प्रकृति से गहरा सम्बन्ध रखता है। वहां के राजनीतिक नेता ही प्रान्त की नीति निर्माण तथा क्रियान्वयन के लिये जिम्मेदार समझे जाते हैं, अतः विभिन्न क्षेत्रों में विकास व प्रगति को राजनीतिक विश्लेषण किये बिना नहीं समझा जा सकता। यहाँ राजनीतिक नेतृत्व का अर्थ प्रशासक वर्ग से है।

1975 के पश्चात (सिक्किम का भारत में विलय के बाद) सिक्किम के राजनीतिक नेतृत्व का स्वरूप तथा उसकी उभरती हुई प्रकृति किस रूप में सामने आई है। इसका प्रयास प्रस्तुत लेख मे किया गया है। जैसा कि सभी को विदित है कि एक दशक के बाद भी राजनीतिक दलों की स्थिति स्थिरता की ओर बढ़ नही पाई है। ऐसी स्थिति में प्रशासकों द्वारा निर्मित सामाजिक-आर्थिक नीतियां भी उसके राजनीतिक झुकाव को स्पष्ट नही करती।

अतः सरकार के कृत्यो का विश्लेषण करने का प्रयास भी अपूर्ण सा ही होगा जब तक राजनीतिक दलों की तस्वीर स्पष्ट नहीं हो जाती। इसके लिये आवश्यक होगा कि प्रशासक वर्ग का सामाजिक– आर्थिक परिचय प्राप्त करें। कारण यह है कि विधायको की कोई विचार-धारा न होने पर उनके सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि को जान लेने से उनकी नीतियों के बारे में ज्ञान हो सकता है।

पृष्ठभूमि

राज्य परिषद (State Council) का गठन 1953 मे हुआ। इसके अन्तर्गत एक अध्यक्ष होता था जिसको वहां के महाराजा मनोनीत करते थे। परिषद के कुल चुने हुए 12 सदस्य होते थे जिसमें से 6 सदस्य लैप्चा-भूटिया तथा नेपाली होते थे और शेष राजा के द्वारा मनोनीत किये जाते थे। गाँवों के स्तर पर पंचायतों का गठन 1965 मे किया गया तथा महानगर के स्तर पर बाजार कमेटी (Market Committee) का गठन 1969 मे हुआ, इन *संस्थाओं के गठन के दो प्रमुख उद्देश्य थे : (अ) जनतान्त्रिक स्वरूप की रचना* जिसके लिए वहां के राजनेताओं की माँग थी (ब) जाति के आधार पर मतों की प्रक्रिया की शुरूआत। ऐसा करने से अंशतः राजा की शक्ति बरकरार रही और लोकप्रिय प्रशासन का स्वरूप भी सामने आ गया। प्रान्त की नीतियों के निर्माण में राजा की ही भूमिका प्रमुख बनी रही। इसके साथ प्रशासन का ढांचा द्वैध शासन प्रणाली जैसा सामने आया जब 1953 में दो प्रकार के विषयों की अलग अलग सूची सामने रखी। पहली सूची उन विषयों की थी जो आरक्षित (Protectorate) के नाम से जानी गई तथा दूसरी वह जिसे स्थानान्तरण के रूप में जानी गई। आरक्षित विषय राजा के व्यक्तिगत माने गये जिन पर राज्य परिषद का अधिकार स्वीकार किया गया। आरक्षित विषय थे—धार्मिक, विदेशी, गृह व पुलिस तथा वित्त। स्थाना-न्तरण के विषय थे-शिक्षा, जनकल्याण, प्रेस व आबकारी, यातायात व आदि।

उक्त ढांचे में सिक्किम का प्रशासन चलता रहा जब तक 1973 में जनतान्त्रिक शक्ति ने एक राजनीतिक विप्लव उत्पन्न नहीं कर दिया।

नेतृत्व का दूसरा तत्व राजनीतिक दल को माना गया है। इस प्रकृति के नेतृत्व को समझने के लिए राजनीतिक दलों के विकास के बारे में भी जानना आवश्यक होगा।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि सिक्किम मे राजनीतिक दलों का उद्‌भव वहां के किसान वर्ग की दयनीय स्थिति में सुधार लाने के लिए किया गया था। साथ में प्रान्तीय स्तर पर जनतान्त्रिक लोकप्रिय सरकार का गठन भी करना था। 1940 के व 1947 के बीच राजनीतिक दलों की स्थिति कुछ इस प्रकार की थी जैसे कमरे में बैठकर योजनाएँ बनाने की। यद्यपि उद्देश्य तो वही थे लेकिन खुलकर सामने आने जैसी स्थिति नहीं बन पाई थी। योजनाबद्ध तथा औपचारिकता का रूप राजनीतिक दलों ने 1947 के बाद ही लिया। 1947 तथा 1975 के बीच जिन मुख्य दलो ने अपने अस्तित्व को ऊपर उठाया, वे थे :—

(1) 1947 में ताशी सो नाम मे रिंग तथा जांग जेरिंग के नेतृत्व में प्रजा सुधारक समाज का गठन गैंगटाक मे हुआ। प्रजा सम्मेलन का गठन गोवर्धन प्रधान तथा धन बहादुर तिवारी के नेतृत्व में तेमी तरकर स्थान पर हुआ। प्रजामण्डल का गठन पश्चिमी सिक्किम के चाकुंग स्थान पर हुआ जिसका नेतृत्व काजी लैंडपदोर जी ने किया। परन्तु दिसम्बर, 1947 को उक्त सभी दलों का विलय एक नई पार्टी में हो गया जिसका नाम सिक्किम स्टेट कांग्रेस रखा गया।

(2) सिक्किम राष्ट्रीय दल का गठन केवल सिक्किम स्टेट कांग्रेस की मांगों का विरोध करने के लिए हुआ। इस दल का गठन 1948 में हुआ।

(3) स्वतन्त्र दल का निर्माण काजी लैंडपदोर जी ने किया जो सिक्किम स्टेट कांग्रेस की अध्यक्षता छोड़कर आये थे।

(4) 1960 में सिक्किम नेशनल कांग्रेस का गठन हुआ। इस दल का निर्माण चार दलों के विलय हो जाने में हुआ। वे चार दल थे। स्वतन्त्र दल, प्रजा सम्मेलन, स्टेट कांग्रेस के विरोधी पक्ष तथा नेशनल पार्टी के असंतुष्ट तत्व।

(5) सिक्किम जनता कांग्रेस का गठन 1972 मे हुआ।

(6) सिक्किम कांग्रेस का गठन 1974 को हुआ।

उक्त दलों के गठन की प्रक्रिया से यह जानकारी मिलती है कि सिक्किम में राजनीतिक विकास दलों के द्रुतगति से बदलने के कारण हुआ

ऐसा होते हुए भी दलों की प्रभावशीलता में कोई कमी नहीं आई। दलों का निरन्तर प्रभाव विधायकों पर रहा तथा उनके व्यवहार को प्रभावित करते रहे।

सिक्किम विधान सभा 1974-85

गठन—(अ) जातीय प्रतिनिधित्व

1973 के राजनीतिक उथल-पुथल के बाद सिक्किम का भारत में विधिवत विलय हुआ और 1974 में पहली सिक्किम विधान सभा का गठन हुआ। 1974 से 1985 तक तीन बार विधान सभा के चुनाव सम्पन्न हो चुके हैं। 32 सदस्यीय सिक्किम विधान सभा के तीनों चुनावों की जातीय स्थिति निम्न तालिका से स्पष्ट होती है।

तालिका—1

1974 के चुनाव में जातीय स्थिति

भूटिया-लेप्चा के लिए आरक्षित सीट	15
नेपालियों के लिए आरक्षित सीट	15
एस० सी० आर० एस० टी०	1
मठों के लिए	1
कुल	32

तालिका—2

1979 व 1985 के विधान सभा चुनाव में सीटों का वितरण

भूटिया लेप्चा की आरक्षित सीट	12
एस. सी. आर. एस. टी.	2
मठो की आरक्षित सीट	1
अन्य सीट	17
कुल	32

(ब) विभिन्न राजनीतिक दलों का प्रतिनिधित्व

1974 के चुनाव में सिक्किम काँग्रेस का एक क्षेत्रीय बहुमत रहा और यह प्रमुख दल के रूप में उभर कर आया। एक सीट को छोड़कर सभी सीट सिक्किम काँग्रेस को मिली। वह एक सदस्यों जो सिक्किम नेशनल पार्टी का था, उसने भी बाद में अपने आप को सत्ता दल में शामिल कर लिया। 1975

के अन्त तक सत्ता दल राष्ट्रीय स्तर पर सफाया हो. जाने के कारण-सिक्किम कांग्रेस ने अपने पूरे दल को केन्द्र की सत्ता दल जनता पार्टी में मिला दिया। इस प्रकार दल परिवर्तन से कुछ विधायकों ने तत्कालीन मुख्य मन्त्री काजी दोरजी से असंतुष्ट होकर अपना नया दल बना लिया। विधान सभा के दूसरे चुनाव होने तक तीन प्रमुख दल सामने आये। वे तीन दल थे– (1)अखिल भारतीय जनता पार्टी, (2) सिक्किम प्रजातन्त्र कांग्रेस तथा (3) सिक्किम कांग्रेस (क्रान्तिकारी)।

दूसरे विधान सभा चुनाव में काजी दोरजी के नेतृत्व में सत्ता दल, अखिल भारतीय जनता पार्टी का पूरा सफाया हो गया। यहां तक मुख्यमंत्री काजी दोरजी भी अपने क्षेत्र से जीत न सके। नर बहादुर भंडारी के नेतृत्व में गठित जनता परिषद को 17 सीटें प्राप्त हुई तथा सिक्किम कांग्रेस (क्रान्तिकारी) को 12 सीटें मिली। सिक्किम प्रजातन्त्र कांग्रेस केवल तीन सीटो पर जीत पाई। सिक्किम जनता परिषद ने भी बहुमत में आ जाने के बाद वही इतिहास दुहराया जो पूर्व मुख्यमंत्री काजी दोरजी ने 1978 के चुनाव में किया था। मुख्यमन्त्री नर बहादुर भंडारी ने भी सत्ता में आने के बाद अपने दल को केन्द्र में सत्ताधारी दल मे विलय कर लिया। दल बदल का क्रम सिक्किम में चलता रहा।

अचानक ही सिक्किम के राज्यपाल ने नर बहादुर भंडारी की सरकार को बर्खास्त कर दिया। इस सरकार को उस समय समाप्त किया जब विधान सभा की अवधि की समन्वय में कुछ महीने ही शेष थे। राज्यपाल के इस व्यवहार से असंतुष्ट होकर श्री भंडारी ने कांग्रेस (इ) से अपने सम्बन्ध तोड़ लिये और एक नये दल का निर्माण किया जिसका नाम सिक्किम संग्राम परिषद रखा। यह दल बाद में एक राजनीतिक शक्ति के रूप में उभर कर आया। विधान सभा के तीसरे चुनाव में, जो 5 मार्च,1985 को हुए, सिक्किम संग्राम परिषद को 32 सीटों में से 30 सीटें मिली। दो सीटो मे से एक सीट कांग्रेस (इ) को तथा एक स्वतंत्र उम्मीदवार को मिली।

1975–1985 के बीच नीति सम्बन्धी प्रोग्राम

विधान सभा के चुनाव तीन बार हुए और मिश्र शासन काल में हर तरह के बिल व कानून पास किये गये। जो बिल पास हुए उनसे हवाला मिलता है कि मिश्र समय मे शासक वर्ग का झुकाव किस ओर था।

पहली बार काजी दोरजी के नेतृत्व में सरकार बनाई गई। दोरजी के शासनकाल में लगभग 26 बड़े-छोटे बिल पास किये गये। [1975-79] महत्वपूर्ण बिलों का विवरण इस प्रकार है :—

[1] सिक्किम के खेतिहर के लिये सुरक्षा बिल [1975]।
[2] भूमि का गैर कानूनी तरीके से प्रयोग तथा उसके हस्तान्तरण को रोकने के लिए अध्यादेश [1975]।
[3] गंगटोक म्यूनीसिपल कोरपोरेशन बिल [1975]।
[4] सिक्किम नगरीय भूमि संबधी बिल [1976]।
[5] सिक्किम पुलिस बिल [1978]।
[6] सिक्किम खादी व ग्रामीण उद्योग बोर्ड बिल [1978]।
[7] सिक्किम बोर्ड ऑफ स्कूल एज्यूकेशन बिल [1978]।
[8] सिक्किम सिनेमा बिल [1978]।
[9] सिक्किम कोपरेटिव सोसायटीज बिल [1978]।

उक्त पारित बिलों को देखकर यह संकेत मिलता है कि अधिकाश बिल कृषि के उत्थान तथा किसानों के कल्याण के लिए बनाए गए थे। 9 मुख्य बिलों में से 5 ऐसे बिल है जो खेतिहर की भलाई के लिए बनाये गये और दो गांव के विकास के लिये। बिलों को गौर से देखने के बाद लगता है कि बिलो का उद्देश्य प्राचीन सामाजिक ढाँचे को झकझोरने का है जोकि राजतंत्र व्यवस्था मे अच्छी तरह पल रहा था। कुल मिलाकर सभी बिल नीचे और निर्धन लोगों का भला करने वाले थे।

जब दूसरी विधान सभा के सदस्य चुनकर आये तो प्रशासन का अन्दाज कुछ और ही रहा। अक्टूबर, 1979 व मई, 1984 के बीच 31 बिल पास किये गये। इन पारित बिलों में से 14 वे बिल थे जो सशोधित बिल कहे जा सकते हैं। सबसे प्रमुख सशोधित बिल नई पंचायत व्यवस्था के बारे में है। 1965 के पंचायत एक्ट को सशोधित इस बिल ने किया। इसीलिये इससे प्रमुख माना गया।

यदि हम दो विधान सभाओं का तुलनात्मक विश्लेषण करें तो यह जानकारी मिलती है कि दोनो सरकार की पद्धति व शैली में भिन्नता थी। पहली विधान सभा के द्वारा पारित बिलों को देखकर यह लगता है कि सरकार की नीति का झुकाव ग्रामीण लोगों की तरफ था और उनके कल्याण के लिये कई बिल पास किये। लेकिन दूसरी सरकार का झुकाव शहरी पर्यावरण की ओर भी विकास की ओर बढ़ाना था। पहली सरकार ने भूमि सुधार पर अधिक ध्यान दिया लेकिन दूसरी ने इस ओर उपेक्षा की। कहने का अभिप्राय है कि दोनों सरकार के द्वारा पारित बिलों में काफी भिन्नता थी।

दूसरी सरकार को अधिक श्रेय इसलिये दिया गया कि इसके सानिध्य में सिक्किम पंचायत बिल पास किया गया जो एक भारी उपलब्धि थी। इस बिल के पारित हो जाने के बाद प्रयास किया गया कि इसको व्यावहारिक रूप दिया जाये। गांवो के स्तर पर पंचायती संस्थाओं का गठन हुआ जिससे कि गांवों में तरीके से विकास हो और वे प्रगति करें।

प्रस्तुत लेख को पूरा न्याय देने के लिये यह आवश्यक है कि प्रान्त के राजनीतिक प्रशासकों का सामाजिक–आर्थिक दर्जा व पृष्ठभूमि जान ली जाय। ऐसा करने से उनके द्वारा निर्धारित नीतियों तथा उनके संस्कार के बारे में तालमेल बिठाया जा सकता है।

उम्र—राजनीतिक नेतृत्व के प्रतिमान को निर्धारित करने के लिये यह जरूरी है कि निर्णयकर्त्ता किस उम्र स्तर के हैं। इससे यह भी मालूम हो जाता है कि पुरानी पीढ़ी के सामने नई पीढ़ी का क्या रुख है और क्या वे चुनौती के रूप में उभर रहे हैं या सहयोगी के रूप में। तीन विधान सभाओं के विधायकों की उम्र का विश्लेषण निम्न तालिका से स्पष्ट है—

तालिका–3

विधायकों की उम्र

		राज्य विधानसभा		
	उम्र	1974	1979	1985
युवा	25—35	12[37.5]	14 [47.75]	9 [28.12]
	36—45	9[28.12]	10[31.25]	18[53.12]
मध्यम	46—55	7[21.87]	7[21.87]	4[12.5]
	56—65	2[6.25]	—	7[3.12]
वृद्ध	66—75	1[3.12]	—	—
	75—ऊपर	—	1[3.12]	—
		32[100.0]	32[100.0]	32[100.0]

तालिका स० 3 से स्पष्ट होता है कि 1974 की विधान सभा के अधिकांश सदस्य (37.5%) 25–35 की उम्र के थे। 1979 की विधान सभा में अधिकार सदस्य 25–35 उम्र के थे। उसकी प्रतिशत बढ़कर 43.75 हो गई तथा 1985 की विधानसभा में इसी उम्र की श्रेणी की संख्या बढ़कर 56% हो गई। इससे निष्कर्ष यही निकलता है कि पुरानी पीढ़ी के सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर कम हो रही है और युवाओं का राजनीति में प्रवेश बढ़ रहा है।

विधायकों की शिक्षा-यद्यपि राजनीतिज्ञों का शिक्षित होना और भी ठीक होता है, यदि गुणात्मक पक्ष को ध्यान में रखा जाय। शिक्षा निसंदेह व्यक्तित्व में निखार लाता है। राजनीति की शैली का स्वरूप भी उसके अनुसार बदल जाता है। इस पक्ष को ध्यान में रखते हुए तीनों विधानसभाओं के शिक्षित विधायकों का क्या प्रतिशत था तथा शिक्षा से राजनीति में किस प्रकार का व्यवहार दिखाई देता है। निम्न तालिका से विधायकों के शिक्षा का स्तर स्पष्ट होता है।

तालिका नं० 4

विधायकों के शिक्षा का स्तर

राज्य विधान सभा

शिक्षा का स्तर	1974	1979	1985
अशिक्षित	4 (12·5)	—	—
प्राथमिक	4 (12 5)	3 (9·37)	—
मिडिल क्लास	7 (21·5)	7 (21·5)	2 (6·25)
मैट्रिक	4 (12·5)	6 (18·75)	8 (25·00)
उच्च माध्यमिक शिक्षा	1 (3·12)	—	5 (15·62)
बी. ए.	9 (28·12)	14 (43 75)	15 (46·85)
एम. ए.	—	1 (3 12)	2 (6 25)
धार्मिक शिक्षा	4 (9·37)	1 (3·12)	—
कुल	32 (100 0)	32 (100·0)	32 (100 0)

उक्त तालिका से विधायको की शिक्षा के बारे मे जानकारी स्पष्ट होती है। पर्वतीय राजनीति मे प्रवेश करने वालों की प्रतिशत अधिकतर शिक्षित होने का संकेत मिलता है। 1974, 1979 तथा 1985 मे अधिकतर विधायक ग्रेजुएट थे तथा सरकार का गठन भी उन्ही शिक्षितो मे से ही हुआ था। जहाँ तक धार्मिक-शिक्षा प्राप्त विधायकों का प्रतिशत गिरता गया, तीसरी विधानसभा में एक भी सदस्य स्थान नही पा सका।

जातीयता :—सिक्किम की राजनीति मे जातीयता का प्रश्न महत्वपूर्ण रहा है। आज भी यह मुद्दा अधिक विवादास्पद है। चोगियाल के शासन काल में भूटिया, तथा लेंटचा तथा नेपालियों का प्रतिनिधित्व का अनुपात 50 : 50 था जो

कि "परिटी फार्मूला" के नाम से जाना जाता था। 1973 के विद्रोह की प्रमुख माँग यही थी कि इस प्रकार के फार्मूला को रद्द कर दिया जाय। 1974 के चुनाव में तो उक्त फार्मूला का अन्त नही हो सका लेकिन 1979 के चुनाव में कुछ संशोधन हुआ। दूसरे चुनाव में 12 सीटें भूटिया लेंटचाओं के लिये रखीं, दो सीटें अनुसूचित जाति के लिये, 1 सीट मठों के लिये तथा 17 सीटों पर खुला चुनाव घोषित किया गया। व्यवहार में एक सीट भूटिया–लेंटचा को जाती थी तथा 2 अनुसूचित सीटें नेपालियों को दे दी जाती थी। निम्न तालिका से जातीय प्रतिनिधित्व की तसवीर स्पष्ट होती है :—

तालिका नं० 5

	विधानसभा		
विभिन्न जातियाँ	1974	1979	1985
लेंटचा	9 (28·12)	4 (12·5)	3 (9·37)
भूटिया (मठ भी सम्मिलित है।	7 (21·87)	9 (28·12)	10 (31·25)
नेपाली (अनुसूचित जाति)	16 (15·00)	19 (17+2) (59·37)	18 (16+2) (56·25)
मारवाड़ी	—	—	1 (3·12)
कुल	32	32	32

आर्थिक पक्ष—राजनीति मे प्रवेश के लिये किसी भी व्यक्ति का आर्थिक पक्ष कैसा है और राजनीति की अनिश्चितता को देखते हुए किसी मे आर्थिक भार को वहन करने की कितनी ताकत है। इसको भी मालूम करना जरूरी है। दूसरे शब्दों में कहें तो किसी भी राजनीतिज्ञ का आर्थिक पक्ष ही निश्चित करता है कि उसमें राजनीति के उतार-चढ़ाव की स्थिति के सामना करने की कितनी ताकत है। दी गई तालिका नं०6 में विधायकों के आर्थिक स्रोत के बारे में तस्वीर स्पष्ट करती है कि राजनीति में हर तपके के व्यक्ति प्रवेश करते हैं। लेकिन राजनीति में लम्बे समय तक वे ही रह पाते हैं जिनकी

जनता के सामने आ नहीं सके जब पानी सर के ऊपर से निकलने लगा तो भंडारी ने खुले आम राज्यपाल की गतिविधियों पर आपत्ति करना शुरू किया। भंडारी ने खुले आम राज्यपाल पर आरोप लगाया व उसके प्रशासन में ऐसा करने से मुख्यमन्त्री भंडारी व्यक्तिगत दृष्टि से परेशान होने लगे। उन्हें यह लगने लगा कि राज्यपाल का जनता से व्यक्तिगत संपर्क उनकी लोकप्रियता में कमी लायेगा। भंडारी के अतिरिक्त अन्य राजनेता भी राज्यपाल की गतिविधियों से अप्रसन्न थे। वरिष्ठ कांग्रेस (इ) के नेता सी. डी. राय तथा सिक्किम प्रजातन्त्र कांग्रेस के नेता एन. बी. काठीवाड़ा दोनों ने ही संयुक्त बयान में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा कि "राज्यपाल तेलियारखा की भूमिका पद की गरिमा से प्रतिकूल है। राज्यपाल ने जनता को आश्वस्त किया है कि वे गरीब जनता के लिये स्कूल तथा स्वास्थ्य केन्द्र खुलवायेंगे, जबकि सरकार का आर्थिक बजट इन वायदों को पूरा करने में सक्षम नहीं है" साथ में यदि आर्थिक सीमाओं के कारण राज्यपाल द्वारा किये हुए वायदे पूरे नहीं हुए तो भंडारी की सरकार अपनी लोकप्रियता खो देगी जिसका सीधा प्रभाव उनके चुनावों पर पड़ेगा।

इसके अतिरिक्त मुख्यमन्त्री तथा राज्यपाल के बीच मतभेद का मुद्दा एक और जुड़ गया वह था "हैलीकोप्टर की सेवा" से संबंधित। बागडोगरा (जो कि पश्चिमी बंगाल में है) से गंगटोक तक पहुंचने के लिये राज्यपाल के अथक प्रयासों से इंडियन एयरलाइन्स की हवाई सेवा प्रारम्भ की गई। परन्तु यह सेवा एक साल के बाद स्थगित करनी पड़ी क्योंकि राज्य सरकार ने खर्चे के सहभागी के रूप में 16 लाख रुपये का भुगतान नहीं किया था। भंडारी ने राज्यपाल को दोषी ठहराते हुए कहा कि तेलियारखा ने राज्य को इतने भारी कर्ज में दबा दिया है और अपने बयान में कहा "मैं प्रारम्भ से ही हैलीकोप्टर की सेवा के विरुद्ध था लेकिन मैंने इसका इसलिये कड़े रूप से विरोध नहीं किया, यह अनुमान लगाते हुए कि उक्त हवाई सेवा एक उपहार के रूप में प्रदान की गई जिसके साथ कोई आर्थिक दायित्व जुड़ा हुआ नहीं है। अब मेरे सामने एक भारी बिल रख दिया गया है जिसकी कुछ मुझे उम्मीद भी नहीं थी और न सरकार इसको वहन कर सकती है" भंडारी ने अपने बयान में यह भी कहा कि जब हवाई सेवा प्रारम्भ की गई थी, उससे पूर्व इस प्रकार की कोई शर्त भी नहीं रखी गई थी जिस पर वे कुछ विचार कर पाते। इसके उत्तर में राज्यपाल ने कहा कि जब हवाई सेवा शुरू हुई थी तो भंडारी जी ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने इसकी तालियों के साथ स्वागत

आर्थिक स्थिति मजबूत होती है। यद्यपि तीन विधानसभा के चुनाव ने उक्त कथन को सही साबित नहीं किया है क्योंकि विधायकों का बहुमत उन लोगों का बढ़ गया जो पहले सरकारी नौकरी करते थे और उसको छोड़कर चुनाव में कूद पड़े। 1985 के चुनाव में 32 सीटों में से 16 सीटें उन्होंने प्राप्त कीं जो सरकारी नौकरी छोड़कर आये थे और दूसरा नंबर व्यापारी वर्ग तथा कृषि का आता है। अतः अभी तक सिक्किम की राजनीति में यह स्पष्ट नहीं हो पा रहा है कि कृषि व व्यापार करने वाले राजनीतिज्ञ क्यों पिछड़े हुए हैं।

तालिका नं० 6

विधायकों का व्यवसाय

व्यवसाय	विधान सभा 1974	1979	1985
कृषि	13 (40·62)	10 (31·25)	8 (25%)
व्यापार	4 (12·5)	8 (25·00)	7 (21·87)
नौकरी	8 (25·00)	7 (21·87)	16 (50·00)
राजनीति व कृषि	6 (18·75)	6 (18.75)	1 (3.12)
धर्म–मठ	1 (3·12)	1 (3·12)	1 (3·12)
कुल	32	32	32

सितम्बर, 1983 के महीने में कांग्रेस (इ) की वरिष्ठ नेता राजकुमारी बाजपेयी ने दोनों के बीच उत्पन्न विवाद को शान्त करने के लिये मध्यस्थता का प्रयास किया। बच्चों की तरह से राजकुमारी बाजपेयी की उपस्थिति में दोनों में हाथ मिलवाया गया तथा विवाद को समाप्त करने का दिखावा किया गया।

दोनों के बीच मतभेद तभी से शुरू हो गये जिस दिन से कि राज्यपाल सिक्किम आये और अपनी लोकप्रियता को बढ़ाने के प्रयास में प्रान्त के हर स्थान पर दौरे लगाने शुरू किये। मुख्यमन्त्री भंडारी को इस प्रकार की गतिविधियाँ अच्छी नहीं लगी। एक ओर राज्यपाल के रूप में प्रान्त में नहीं रहना चाहते थे और दूसरी ओर मुख्यमन्त्री चाहते थे कि राज्यपाल अपने पद की गरिमा व शालीनता का उल्लंघन नहीं करें। प्रारम्भ के मतभेद तो

जनता के सामने आ नही सके जब पानी सर के ऊपर से निकलने लगा तो भंडारी ने खुले आम राज्यपाल की गतिविधियों पर आपत्ति करना शुरू किया। भंडारी ने खुले आम राज्यपाल पर आरोप लगाया व उसके प्रशासन मे ऐसा करने से मुख्यमन्त्री भंडारी व्यक्तिगत दृष्टि से परेशान होने लगे। उन्हें यह लगने लगा कि राज्यपाल का जनता से व्यक्तिगत संपर्क उनकी लोकप्रियता मे कमी लायेगा। भंडारी के अतिरिक्त अन्य राजनेता भी राज्यपाल की गतिविधियों से अप्रसन्न थे। वरिष्ठ कांग्रेस (इ) के नेता सी. डी. राय तथा सिक्किम प्रजातन्त्र कांग्रेस के नेता एन. बी. काठीवाडा दोनों ने ही संयुक्त बयान में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा कि "राज्यपाल तेलियारखां की भूमिका पद की गरिमा से प्रतिकूल है। राज्यपाल ने जनता को आश्वस्त किया है कि वे गरीब जनता के लिये स्कूल तथा स्वास्थ्य केन्द्र खुलवायेंगे, जबकि सरकार का आर्थिक बजट इन वायदों को पूरा करने में सक्षम नही है" साथ में यदि आर्थिक सीमाओं के कारण राज्यपाल द्वारा किये हुए वायदे पूरे नहीं हुए तो भंडारी की सरकार अपनी लोकप्रियता खो देगी जिसका सीधा प्रभाव उनके चुनावों पर पड़ेगा।

इसके अतिरिक्त मुख्यमन्त्री तथा राज्यपाल के बीच मतभेद का मुद्दा एक और जुड़ गया वह था "हैलीकोप्टर की सेवा" से संबंधित। बागडोगरा (जो कि पश्चिमी बंगाल में है) से गैंगटोक तक पहुंचने के लिये राज्यपाल के अथक प्रयासों से इंडियन एयरलाइन्स की हवाई सेवा प्रारम्भ की गई। परन्तु यह सेवा एक साल के बाद स्थगित करनी पड़ी क्योंकि राज्य सरकार ने खर्चे के सहभागी के रूप मे 16 लाख रुपये का भुगतान नही किया था। भंडारी ने राज्यपाल को दोषी ठहराते हुए कहा कि तेलियारखां ने राज्य को इतने भारी कर्ज में दबा दिया है और अपने बयान में कहा "मैं प्रारम्भ से ही हैलीकोप्टर की सेवा के विरुद्ध था लेकिन मैंने इसका इसलिये कड़े रूप से विरोध नही किया, यह अनुमान लगाते हुए कि उक्त हवाई सेवा एक उपहार के रूप मे प्रदान की गई जिसके साथ कोई आर्थिक दायित्व जुड़ा हुआ नहीं है। अब मेरे सामने एक भारी बिल रख दिया गया है जिसकी कुछ मुझे उम्मीद भी नहीं थी और न सरकार इसको वहन कर सकती है" भंडारी ने अपने बयान में यह भी कहा कि जब हवाई सेवा प्रारम्भ की गई थी, उससे पूर्व इस प्रकार की कोई शर्त भी नही रखी गई थी जिस पर वे कुछ विचार कर पाते। इसके उत्तर में राज्यपाल ने कहा कि जब हवाई सेवा शुरू हुई थी तो भंडारी जी ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने इसकी तालियों के साथ स्वागत

किया था। राज्यपाल ने यह भी कहा कि उनका हवाई सेवा प्रारम्भ कराने में केवल यह उद्देश्य था कि तीन घंटे की यात्रा का समय घटकर मात्र 20 मिनट रह गया था।

राज्यपाल तेलियारखा उन अल्पसंख्यकों के भी समर्थक हो गये थे जिनको भंडारी सरकार अपने प्रान्त में कोई स्थान देने को तैयार नहीं थे। भंडारी सरकार ने यह लगभग तय कर लिया था कि 60,000 मैदानी लोगों को किसी न किसी पद्धति से प्रशासन से ही बाहर नहीं अपितु प्रान्त से भी बाहर कर देना है। यह मुद्दा भी दोनों के बीच मतभेद का कारण बन गया।

उक्त मतभेदों के कारण भंडारी को सरकार से बाहर निकाल दिया गया और कुछ दिन बाद ही राष्ट्रपति शासन घोषित हुआ।

सिक्किम में 5 मार्च, 1985 को 32 सदस्यीय विधानसभा के लिये चुनाव हुए। चुनाव के दौरान राजनीतिक घटना-चक्र बड़ी गर्मा गर्मी में शुरू हुए।

चुनावी दौड़

भूतपूर्व सिक्किम विधान सभा के उपाध्यक्ष श्री लाल बहादुर बासनेत (जो एक बुद्धिजीवी भी हैं) ने अपने प्रेस इन्टरव्यू में कहा कि, "यह चुनाव मुख्य रूप से कांग्रेस दल तथा सिक्किम संग्राम परिषद के बीच में है जिनको नागनाथ तथा सांपनाथ की संज्ञा दी जा सकती है।"

श्री बासनेत की उक्त अभिव्यक्ति यथार्थ से कतई हटकर नहीं है। एक औसतन मतदाता के समक्ष यह प्रश्न नहीं था कि कोई दल सत्ता में आने के बाद मूलभूत परिवर्तन ला पायेगा। मतदाता यह भी जानते थे कि राजनेता केवल वायदों के अलावा कुछ नहीं करते। लेकिन आश्चर्य की बात है कि सिक्किम का राजनेता अन्य राजनेताओं की तरह आर्थिक पक्ष का तो जिक्र कभी करते ही नहीं। चुनाव में केवल एक ही मुद्दा था कि क्या नर-बहादुर भंडारी पुनः प्रान्त के मुख्यमन्त्री बनेंगे, जिन्होंने सिक्किम संग्राम परिषद से जीतकर लोकसभा की सीट अर्जित की? इसी के साथ दूसरा प्रश्न भी जुड़ा हुआ है कि यदि भंडारी सत्ता में आते हैं तो क्या पुनः कांग्रेस में शामिल होंगे तथा सिक्किम संग्राम परिषद को भंग कर देंगे।

दूसरा प्रश्न महत्वपूर्ण ही नहीं अपितु इसके ठोस आधार भी थे। जब से सिक्किम भारत का 22वां राज्य हुआ है। तभी राजनेताओं का राजनीतिक व्यवहार अत्यधिक विचित्र रहा है। सिक्किम के दलों की स्थिति का तालमेल

केन्द्र में सत्ता दल के साथ रहा है। 1977 में केन्द्र मे जनता पार्टी सत्ता में आई तो काजी लैंडप दोरजी (जो उस समय मुख्यमन्त्री थे) ने कांग्रेस का नाम बदल कर जनता पार्टी कर दिया। 1979 में श्रीमती इन्दिरा गांधी पुनः सत्ता में आई तो सिक्किम जनता परिषद दल के मुख्यमन्त्री नरबहादुर भंडारी ने भी रातोंरात अपने दल को बदल कर कांग्रेस कर दिया। दिसम्बर, 1984 के लोकसभा के चुनाव में नर बहादुर भंडारी ने सिक्किम संग्राम परिषद दल चुनाव जीता और लोकसभा के सदस्य बन गये। परन्तु उनकी वास्तविक ललक सिक्किम का पुन. मुख्यमन्त्री बनना था। इसी अभिलाषा को लेकर 5 मार्च, 1985 के चुनाव में फिर से आ गये है और उन्होंने अपने बयान में किसी को भी भ्रम मे न रखते हुए कहा कि, "मैं कांग्रेस मे फिर से आने के लिये नहीं हिचकूँगा। यदि मेरी मांगें केन्द्र स्वीकार कर लेता है" भंडारी ने यह स्पष्ट किया कि उनका अन्य विरोधी दलों से गठबन्धन करने का कोई इरादा नहीं है।

भंडारी की मांग– अपने मुख्यमंत्री पद के दौरान भंडारीजी ने सिक्किम के जोरथांग स्थान पर अपने भाषण मे न केवल अपनी मांगों को दुहराया था अपितु केन्द्र सरकार की खुले आम आलोचना करते हुए कहा था कि केन्द्र की उनकी मांगों के प्रति उदासीनता न केवल असाध्य हो गई है बल्कि उनको कुछ कड़े कदम उठाने के लिये मजबूर कर दिया है। भंडारी जी की मांग उन नेपालियों की नागरिकता के लिये है जिन्हें अभी संविधानिक रूप में नागरिकता नहीं मिली है। यह समस्या उन 75 प्रतिशत नेपालियों की है जिनको चोगियाल के शासन में वे सभी अधिकार प्राप्त थे परन्तु जनता पार्टी के शासन काल में अधिकार छीन लिये गये जिसके कारण मुख्यमंत्री काजी लैंडप दोरजी के दल का ही पूरा सफाया नही हुआ बल्कि वे स्वयं भी सिक्किम विधान सभा की सीट के लिये पराजित हुए। 5 मार्च, 1985 को विधान सभा के चुनावी अभियान में उन नेपालियों को पूरी तरह जानकारी है कि भंडारी को पद से केन्द्र ने इसलिये हटाया था क्योंकि उन्होने नेपालियों के अधिकार दिलाने के लिए लड़ाई लड़ी थी।

राज्यपाल की सिफारिश

पूर्व राज्यपाल श्री तेलियारखां ने भंडारी को हटाने में पूरा सहयोग दिया था, जो कि आम राय की दृष्टि से असंविधानिक था, इसलिये तुरन्त तेलियार खां को आन्ध्रप्रदेश की तरह से अपने पद से स्तीफा देना पड़ गया था और नये राज्यपाल श्री कौना प्रभाकर राव ने शपथ ग्रहण की। हाल की

सूचना के अनुसार यह विश्वास किया जाता है कि श्री राव ने केन्द्र से सिफारिश की है कि भंडारी की मांगों को स्वीकार कर लिया जाय।

यद्यपि उक्त सिफारिश का भविष्य से अधिक सम्बन्ध है। अभी तो भंडारी जी अपने चुनावी अभियान मे बार-बार नेपालियों की नागरिकता का प्रश्न को दुहरा रहे हैं और समस्या का पूरा-पूरा लाभ लेना चाहते हैं। यह सम्भावना व्यक्त की जा रही है कि यदि भंडारी जी अपने दल को बहुमत में लाने में सफल हो जाते हैं तथा साथ में केन्द्र भी उनकी मांगों को स्वीकार कर लेता है तो वे कांग्रेस में शामिल हो जायेंगे तथा दल-बदल विरोधी विधेयक भी उनके रास्ते में व्यवधान नहीं बनेगा।

कांग्रेस पार्टी का रुख

इस समय कांग्रेस पार्टी का भी रुख भंडारी की मांगों के प्रति नम्र होता दिखाई देता है। कांग्रेस दल के एक उम्मीदवार जो गैंगटोक से लड़ रहे हैं। श्री मदनलाल जी का कहना है कि "सिक्किम राजनीति में ऐसा ही होता रहा है। हमने प्रान्तीय स्तर पर कांग्रेस दल को इसलिये बढाने का प्रयास नही किया क्योंकि अभी तक किसी भी दल का जो मुख्यमंत्री बना है वह समूचे रूप मे कांग्रेस मे शामिल होता रहा है। इसलिये मतदाताओं के लिए सिक्किम के राजनेता नागनाथ व सांपनाथ की कहावत को सच्चे रूप में चरितार्थ करते हैं।

कांग्रेसी उम्मीदवारों की सूची

सिक्किम विधान सभा के लिये लड़ने वाले कांग्रेसी उम्मीदवारों की सूची देखने से हवाला मिलता है कि कांग्रेस पार्टी ने किन-किन समूहों के लोगों को शामिल किया है। उदाहरण के लिये पूर्व मुख्यमंत्री जिन्होंने अपने शासन काल में जनता पार्टी को स्वीकार कर लिया था—कांग्रेस दल से लड रहे हैं। इसी प्रकार रामचन्द्र पोदियाल जो सिक्किम कांग्रेस (क्रान्तिकारी) के नेता थे वे भी कांग्रेस की ओर से चुनाव लड़ रहे हैं। सी०डी० राय भी कांग्रेस की ओर से चुनाव अभियान में हैं जो कुछ दिन पहले तक "हिमाली कांग्रेस संस्था" के नेता थे। जहां तक नर बहादुर भंडारी का सम्बन्ध है उनके सामने कांग्रेस में शामिल होने से पहिले एक ही रुकावट है वह है उनके खिलाफ सी०बी०आई० के द्वारा जांच। लेकिन भंडारी यदि पुनः राज्यीय सत्ता मे आते हैं तो केन्द्र भी उनके प्रति नरमाई का व्यवहार दिखायेगा तथा सी०बी०आई० की जांच को वापस ले सकता है। इस तथ्य को भी नहीं भूलना चाहिये कि अभी भंडारी के खिलाफ भ्रष्टाचार के आरोप सिद्ध होने बाकी हैं, कांग्रेस दल ने आर०सी० पोदियाल को अपने दल में मिला लिया है तथा एक क्षेत्र का

इन्चार्ज भी बना दिया है, जबकि पोदियाल ने सुप्रीम कोर्ट में भूटिया लोचाओ के लिए रिजर्वेशन सीटों के लिये याचिका दर्ज कर रखी है।

सच तो यह है कि कांग्रेस पार्टी के अन्दर ही कार्यकर्ताओं में असंतोष है कि पोदियाल को कांग्रेस में शामिल नहीं करना चाहिये था। बी०बी० गुरुग, जो भंडारी के बाद 13 दिन के लिए मुख्यमंत्री बने थे, भी इससे खुश नहीं हैं। वैसे रामचन्द्र पोदियाल नेपाली लोगों में इतने लोकप्रिय नहीं हैं जितने काजी लैंडप दोरजी तथा भूतपूर्व विधान सभा अध्यक्ष श्री सोमनाथ जैरिंग।

सिक्किम कांग्रेस पार्टी में आन्तरिक असंतोष इसलिये भी है कि जिन उम्मीदवारों को टिकट दी है उनकी सूची केन्द्र द्वारा थोपी हुई लगती है। उदाहरण के लिये मदन क्षेत्री जो अब तक एस० पी० थे, उन्होंने 24 घंटे के अन्दर अपने पद से स्तीफा देकर अपने चुनाव अभियान में लग गये। कांग्रेस दल के सभी प्रमुख कार्यकर्ताओं को आश्चर्य हुआ जब मदन क्षेत्री का नाम विधान सभा की सीट के लिए सूची में देखा गया। मदन क्षेत्री के खिलाफ मुख्यमंत्री रहे नर बहादुर भंडारी की पत्नी श्रीमती दिल कुमारी भंडारी हैं। इसी क्षेत्र से एक विद्रोही कांग्रेस कार्यकर्ता बालचन्द सारदा भी निर्दलीय खड़े हुए हैं जो एक खतरा पैदा कर सकते हैं।

औद्योगिक कम्पनियों का सिक्किम से विदा

सिक्किम में ज्यों ही आबकारी कानून लागू होना शुरू हुआ, उसके आठ महिने बाद ही औद्योगिक कम्पनियों के गैर कानूनी गतिविधियों का भंडाफोड़ सामने दिखाई देने लगा। न केवल वे कल-कारखाने बंद होने लगे जिनके प्रारम्भ होने के साथ ही अनाप-शनाप लाभ अर्जित कर रहे थे अपितु वे भी अपने कारखाने बंद करते हुए पाये गये जो वर्षों से गंगटोक में गलत तरीके से धनाढ्य हो गये थे। सिक्किम में तीन प्रमुख स्थान है जहाँ औद्योगिक कारखाने स्थित थे, वह हैं—सिमतांग, रागयो तथा गंगटोक। टैक्स लाभ के बिना, सिक्किम औद्योगिक व्यापारियों के लिये स्वर्ग नही है।

फरवरी, 1983 तक सिक्किम मे उन कम्पनियो की भीड़ सी लग गई जब तक वहाँ आबकारी तथा नमक कर अधिनियम लागू नही हुआ था। विशेष रूप से उन कम्पनियो का ताता-सा बंध गया जो अपनी कम्पनियो को ऊँचे कर क्षेत्रो मे चला रहे थे। सिक्किम में सिर्फ दो साल के अन्दर आठ सिगरेट फैक्टरियों की स्थापना हुई और उसी के साथ 2 करोड़ रुपये का टैक्स बचाने लगे। यह बचत 400 मिलियन सिगरेट के उत्पादन से होती है। कई शराब कारखाने भी स्थापित हो गये। इसके अतिरिक्त जिन कारखानो की

स्थापना हुई वे थे, रेफरीजिरेटर्स, एयरकंडीशनर्स, वनस्पति, गैस भरने के यंत्र, टूथपेस्ट, बैटरीज, स्टूपवस, दियासलाई तथा फलों के रस आदि।

ज्यों ही केन्द्रीय आवकारी कम प्रभावशाली होने लगा, तुरन्त ही सिगरेट की आठ फैक्ट्रियों में से 7 फैक्ट्री मालिकों ने अपनी दुकानें बन्द कर दीं तथा जो कम्पनी वर्तमान में काम कर रही हैं वे केवल प्रान्तीय सरकार के अधीन है। उदाहरण के लिये हिन्दुस्तान मशीन टूल्स वाच कम्पनी तथा इण्डिया कौसमेटिक (पौड) फैक्ट्री। शराब कारखाने इसलिये भी मौजूद हैं क्योंकि यह कारखाने केन्द्र आवकारी के अधीन नहीं आते। शराब पर कर का विषय प्रान्तीय सरकार के अधीन होता है।

इसका परिणाम यह हुआ कि लगभग 3000 कर्मचारियों को अपनी नौकरियों से हाथ धोना पड़ा परन्तु सबसे ज्यादा नुकसान स्थानीय राजनेताओं तथा नौकरशाही को हुआ है जिनको कम्पनियों के मालिकों से गैर कानूनी लाभ लगातार मिल रहा था। इस आसान लाभ से वंचित होते हुए देख राजनेताओं का विरोध आवकारी कर के प्रति शुरू हो गया। स्थिति यहां तक पहुँच गई कि विरोध मुख्यमंत्री तथा राज्यपाल अर्थात् नरबहादुर भंडारी होमी जे. एच तेलियार खां के बीच शुरू हुआ।

विशेषकर सिगरेट कम्पनियों को, केन्द्रीय आवकारी के लागू होने से पूर्व अत्यधिक लाभ हुआ। राष्ट्रीय तंबाकू के मार्केटिंग मैनेजर राजा स्वामीनाथन का कहना था कि "प्रत्येक एक हजार सिगरेट, जो कम्पनी बनाती थी, पर लगभग 35 रुपये की बचत होती थी, जबकि यातायात का खर्च केवल 8 रुपये है। इस प्रकार 27 रुपये का शुद्ध लाभ आसानी से मिल जाता था।" "स्वामीनाथन ने यह भी कहा कि पिछले सात महीने में हमने अनुमान से कहीं ज्यादा लाभ कमाया और इस लाभ की गति को देखते सोचने लगे थे कि हमारी आर्थिक समस्या का सिक्किम का प्रान्त आसानी से पूरा कर देगा।"

जो एक मात्र सिगरेट की कम्पनी सिक्किम में रह गई है वह आई. टी. सी. से सम्बन्धित यद्यपि कम्पनी की ओर से इस तथ्य को नकार दिया गया है। पौंड की कम्पनी भी सिक्किम में रह गई है जिसकी भावी योजना है कि व अपना माल पूर्वी क्षेत्रों के बाजारों में उपलब्ध करा सकेगी। इसी कम्पनी की ओर से एक बयान में कहा गया था कि हमको पूर्वी भारत के क्षेत्र में फैक्ट्री लगाने की आवश्यकता थी जिससे उत्पादित माल तुरन्त ही, कम खर्चे पर बड़े बाजारों में जा सके। इसीलिये हमने सिक्किम इस फैक्ट्री को प्रारम्भ करने के लिये चुना जबकि कर माफ पहिले से ही है। अब जबकि

कर की ढ़ील समाप्त हो गई है फिर भी हम अपने शुद्ध लाभ लेने से वंचित नहीं रहेंगे क्योंकि यहां से हमारा माल आसानी से बड़े बाजारो में जा सकेगा। अपेक्षाकृत मद्रास से।

केन्द्रीय आबकारी करों के हो जाने से न केवल अन्य औद्योगिक कम्पनियो पर ही प्रभाव हुआ अपितु इसकी आलोचना भी राजनीतिक स्तर पर भी हुई। विरोधी दल के नेता एन. बी काठीवाड़ा (प्रजातन्त्र कांग्रेस के नेता) ने आलोचना करते हुए कहा कि प्रान्तीय सरकार की रेवेन्यू पर गलत प्रभाव पड़ेगा। सिक्किम कांग्रेस (क्रान्तिकारी) दल के नेता आर. सी. पोदियाल ने मुख्यमंत्री भंडारी की आलोचना करते हुए कहा कि जब तक सिक्किम में केन्द्रीय आबकारी कर लागू नही किये गये थे तब तक मुख्यमंत्री तथा कम्पनियो के मालिकों के बीच आर्थिक लाभ की साजिश रही। दूसरी ओर भंडारी ने राज्यपाल तेलियार खां का पक्ष लेते हुए सार्वजनिक रूप मे आबकारी कर का समर्थन किया। ऐसा विश्वास किया जाता है कि मुख्यमंत्री इस प्रकार से राज्यपाल को खुला समर्थन एक दोहरी नीति का सूचक है। यह भी सूचना दूसरी ओर से आई कि राज्यपाल तेलियार खां ने सिक्किम सरकार के निर्णय का खुले रूप में जितना समर्थन दिया होगा उतना शायद भंडारी ने भी नहीं दिया। राज्यपाल का कहना था कि 3000 लोगों का बेरोजगार होना इतना महत्त्वपूर्ण नही है। (क्योंकि वे मजदूर डेली वेजेज पर थे) जितना सिक्किम सरकार को केन्द्र की भागीदारी पर आर्थिक लाभ होगा।

सच तो यह है कि जितनी भी औद्योगिक कारखाने सिक्किम में लगे वे केवल कर से बचने के लिये गये थे। कई सिगरेट फैक्ट्रियाँ केवल कच्चे माल, वह भी थे। सिक्किम कांग्रेस (ई) के जनरल सैक्रेटरी श्री सी. डी. राय ने स्वयं स्वीकार किया कि "मेरे दल के बहुत से नेता, कर के लागू होने से पूर्व, लाइसैंन्स को बेच-बेच कर मनमानी तरीके से लाभ ले रहे थे।"

मुख्यमंत्री भंडारी ने अपने बयान में कहा "कुछ कारखाने निश्चित ही बंद हो गये होंगे परन्तु केन्द्र की भागीदारी के साथ नई व्यवस्था के अन्तर्गत लगभग प्रान्तीय सरकार को एक करोड़ प्राप्त हो सकेगा जो दीर्घकालीन योजना के अन्तर्गत अधिक लाभप्रद सिद्ध होगा।

निष्कर्ष

सिक्किम का बाहरी रूप में कोई परिवर्तन दिखाई नहीं देता। सिवाय लोगों की भीड़ में वृद्धि के अलावा। गैंगटाक में शून्य की स्थिति दिखाई देती है। जिस राजधानी पर चोगियाल शासन करता था उसने नौकरशाही के

बावजूद वायू लोग चुने हुए प्रतिनिधि तथा केन्द्र के अधिकारी वर्ग के अलावा कुछ भी नजर नही आता ।

एक और महत्त्वपूर्ण परिवर्तन जो सामने है वह है नर बहादुर भंडारी का नेतृत्व जिसने सिक्किम के विलय का कड़ाई से विरोध किया था। दूसरी ओर काजी लैंडप दोरजी जो 1974 में पहले मुख्यमन्त्री बने थे । आज चुनाव में दो बार हारने के पश्चात राजनीति से लगभग सन्यास ले चुके हैं और आराम कर रहे हैं ।

सिक्किम के अन्य मुख्य नेताओं ने भी वर्तमान परिस्थिति से समझौता सा कर लिया है । जैसे विलय के पक्षधर नेता बी. बी. गुरंग जिनको हाल ही में 13 दिन की मुख्यमंत्री पद से हटा दिया गया था, वे भी आज राजनीति के दावपेच मे शिथिल हुए लगते हैं । रामचंद्र पोदियाल भी उन नेताओं में से थे जिन्होंने विलय का पूर्ण समर्थन किया था । आज राजनीति में अकेले से लगते हैं । जहाँ तक 12 वें नवयुवक चोगियाल की बात है वे अपने महल मे एकाकी जीवन व्यतीत करते हुए लगते हैं । वह शाही भवन जहाँ हमेशा कर्मचारियों व अधिकारी वर्ग की भीड़ लगी रहती थी वह भी वीरान हो गया है ।

लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण मुद्दा अभी शेष है कि कुछ लोगों ने सिक्किम के विलय को अभी तक स्वीकार नही किया है । नर बहादुर को दूसरी बार चुनाव मे शानदार विजय तथा मुख्यमंत्री पद पर आ जाने से यह सिद्ध सा होता जा रहा है कि विलय के विरोध का समूह सिक्किम में बढ रहा है । नर बहादुर की पार्टी सिक्किम सग्राम परिषद ने विधान सभा की 30 सीटो में से 30 सीट जीती है जिससे हवाला मिलता है कि नर बहादुर भंडारी का नेतृत्व विलय के विरोधी लोगों को एक बार फिर से इकट्ठा करेगा तथा नई देहली के लिये सरदर्द बन सकता है ।

नौकरशाही का वह तपका जो भूटिया है वे, मुख्यमन्त्री भंडारी के रुख व नीतियों को समझते हुए महसूस करने लगे हैं कि वह दिन दूर नहीं जब नेपाली लोग उनको आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्र से उपेक्षित कर देंगे और वे सभी सुविधाओं से वंचित कर दिये जायेंगे । सिक्किम प्रान्त की जनसंख्या भी तीव्र-गति से बढती जा रही है । 1971 में सिक्किम की जनसंख्या 1.62 लाख थी और 1981 में बढ़कर 3.16 लाख हो गई । स्थानीय समाचार-पत्र के संपादक ने अधिकृत सूचना के आधार पर यह कहा है कि 1979 और 1984 के बीच में नेपालियों की संख्या में 46 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, जबकि भूटिया लेप्चा में 22 6 प्रतिशत की वृद्धि हुई है ।

सिक्किम का सामाजिक तत्व एक चीज से और भी खिन्न व नाराज है। स्थानीय व मूल निवासी मैदानी लोग विशेषकर मारवाड़ियों से अधिक नाराज हैं जिन्होंने व्यापारिक क्षेत्र में एक छत्र अधिकार कर रखा है। मारवाड़ियों का व्यापार कलकत्ता, कानपुर व लखनऊ तक फैला हुआ है जिसके कारण सिक्किम के लोग अपनी मेहनत का उचित फल प्राप्त करने में वंचित रहे हैं।

परन्तु ठीक इसके विपरीत एकमात्र मैदानी विधायक बालचन्द्र सरदा, जो गैंगटोक से चुनकर आया है। उसका कहना है कि व्यापारी लोग किसी प्रकार से स्थानीय कृषकों को शोषण नहीं कर रहे हैं। उसका यह दृढ़ मत है कि मारवाड़ियों का एक छोटा-सा टुकड़ा जो 70 वर्ष पहले यहाँ आकर बसा, उसने ही बाजार में अपनी धाक जमा रखी है जिसको सरकार आसानी से एकाधिकार को समाप्त कर सकती है। इसमें सभी मैदानी लोग तथा मारवाड़ी शामिल नहीं हैं। सिक्किम के पश्चिमी जिले के कलेक्टर टी. एन. वरफुंघा का यह मानना है कि थोड़े से ही मारवाड़ी व्यापारियों ने बाजार पर अधिकार कर रखा है अतः 1982 से सरकार ने ऐसे उपाय अवश्य किये हैं जिससे आधिपत्य में कमी आये। इस दिशा मे सरकार निरन्तर प्रयास कर रही है लेकिन वर्षों से चला आ रहा क्रम धीरे-धीरे ही कम होगा। ☐☐

संदर्भ सूची

1. दॉ इण्डियन नेशन (पटना)
2. सिक्किम एक्सप्रैस (गैंगटॉक)
3. हिमालयन ओब्सरवर (कलिपोंग)
4. सिक्किम टाइम्स (गैंगटॉक)
5. दॉ नेशन (गैंगटॉक)
6. दॉ ट्रुथ (साप्ताहिक—गैंगटॉक)

भूटान-अन्तर्राष्ट्रीय मंचों से

भारत-चीन युद्ध के बाद से भूटान नरेश तथा अन्य सहयोगियों को एक तथ्य अवश्य आश्वस्त कर गया कि अन्तर्राष्ट्रीय जगत में एकांगी नीति व अन्य राष्ट्रों से अलग-थलग रहने का इरादा यथार्थ से दूर हटकर है। स्वयं को बाहरी वातावरण से सम्पर्क को शुरू करना एक आवश्यक बुराई है जिसको अधिक दिन तक टाला नहीं जा सकता। 1958 में पं. नेहरू की भूटान यात्रा तथा उनसे वार्तालाप करने के पश्चात यह बात अवश्य समझ आई कि यदि अपने राष्ट्र को जीवन तथा प्रगति प्रदान करना है तो बाहरी राष्ट्रों से सम्पर्क बढ़ाना आवश्यक है। अपने राष्ट्र की सदियों पुरानी संस्कृति व परम्पराओं के नष्ट होने के भय से अपने देश को इतने वर्षों अलग-थलग रखने में अधिक समझदारी नहीं है-यह बात प्रशासकों के पूरी तरह से गले से उतर गई थी। संकट या मुश्किल यही थी कि वह शैली या पद्धति किस प्रकार की हो जिससे दोनों ही इच्छाओं की पूर्ति हो। इस प्रकार भूटान की राजतंत्रीय व्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्रीय हितों की पूर्ति के लिए प्रयास के दौर प्रारम्भ हुए। 1961 में देश के आर्थिक विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का प्रारम्भ हुआ। भूटान-कोलंबो योजना का भी सदस्य बना तथा 1966 में तत्कालीन प्रधानमंत्री से संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य बनने के लिये आग्रह किया और अन्त में 1971 में भूटान पहली बार एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का सदस्य बना जिसका सभी देशों ने स्वागत किया। इस प्रकार भूटान को अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर स्वयं की भूमिका अदा करने का एक अच्छा अवसर मिला। भूमिका अदा करने का नया उत्साह तथा हर अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दे पर कुछ कहना एक स्वाभाविक लक्षण होता है और भूटान कोई अपवाद नहीं है। परन्तु हर कदम पर फूंक-फूंक कर चलने की पद्धति भूटान की वाह्य नीति में प्रतिपल झलक देती रही।

भूटान संयुक्त राष्ट्र संघ में

28 सित.,1972 को संयुक्त राष्ट्र संघ के 27वें अधिवेशन में भूटान के प्रतिनिधि ने पहली बार अपने भाषण में 'तनाव शैथिल्य' का स्वागत किया और आगे कहा कि, "विश्व की दो महाशक्तियों के पारस्परिक सूझ-बूझ तथा सकारात्मक दृष्टिकोण से यह पूर्णरूपेण उम्मीद बनी है कि विश्व में वास्तविक शान्ति अवश्य स्थापित हो सकेगी।" इसी प्रकार उत्तरी व दक्षिणी कोरिया के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत करते समय भूटान के प्रतिनिधि ने कहा कि, "उत्तरी व दक्षिणी कोरिया के बीच वार्ता का प्रारम्भ होना एक महत्व-

पूर्ण घटक है और वार्ता के माध्यम से तनावों में कमी आयेगी और समस्या के समाधान होने की संभावना बढ गई है।" भूटान के प्रतिनिधि ने उपनिवेशवाद तथा रंग-भेद की नीति को प्रारम्भ से ही संयुक्त राष्ट्र संघ मे आलोचना की है। संयुक्त राष्ट्र संघ की साधारण सभा में अक्टूबर, 1973 को भूटान के प्रतिनिधि ने कहा, "एक महत्वपूर्ण समस्या जो मेरे देश के लिए चिन्ता का विषय है तथा विश्व शान्ति के लिए खतरा है, वह दक्षिणी अफ्रीका की समस्या है जहां मुट्ठीभर गोरे लोग बहुसंख्यक काली चमडी की जनता पर अन्याय व अत्याचार की नीति वर्षों से अपनाये हुए हैं। नामिबिया की जनता को मूलभूत अधिकारो से वंचित रखना सरासर अन्याय है। दक्षिण रोडेसिया मे अल्पसंख्यक लोग बहुसंख्यक जनता पर शक्ति के बल पर शासन कर रहे है। यह खेद का ही विषय है कि गैर कानूनी सत्ता रोडेशिया मे शासन कर रही है। भूटान के प्रतिनिधि ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा, "हमारा विश्वास है कि समस्त देश जो शान्ति, प्रेम की भावना पर विश्वास करते हैं तथा स्वतन्त्रता, समानता व मानवीय गरिमा के सिद्धान्तो के समर्थक राष्ट्र रोडेशिया मे हो रहे अन्याय पर कोई न कोई प्रतिबन्ध लगाने की पुष्टि करेंगे। पुर्तगाली सरकार की दमन नीति शान्ति व सुरक्षा के लिए एक खतरा है। उसका उपचार व विकल्प ढूंढना अति आवश्यक है। भूटान स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष का समर्थन करता है। भूटान ने अपने प्रतिनिधियो के माध्यम से अपने विचारों की अभिव्यक्ति दक्षिण अफ्रीका के विभिन्न क्षेत्रों में हो रहे अन्याय व अत्याचार के बारे मे व्यक्त किये हैं। उक्त समस्याओं के समाधान के लिए एक समग्र अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास की आवश्यकता होगी और वे प्रयास सयुक्त राष्ट्र संघ के मंच से ही सम्भव है। भूटान उन देशो के साथ है जो यह चाहते हैं कि दक्षिण अफ्रीका मे हो रहे रंग-भेद व शोषण की नीति को न केवल वैचारिक स्वर पर ही आलोचना हो बल्कि एक प्रभावशाली तथा व्यावहारिक हल ढूंढ निकालने में सक्षम हैं। 8 अक्टूबर, 1976 की साधारण सभा के अधिवेशन मे भूटान के प्रतिनिधि ने दक्षिण अफ्रीका की समस्या के बारे मे चिन्ता को दुहराया और कहा, "संयुक्त राष्ट्रसंघ की समस्त ताकत एक ऐसे हल निकालने मे लगा दें जिससे कोई देश उन बुराइयों से पीड़ित न हो जो इस समय व्याप्त हैं। अपने विचारो को आगे बढ़ाते हुए कहा, "यदि दक्षिण अफ्रीका मे शक्ति तथा स्थायित्वता कायम करना है तो यह आवश्यक होगा कि वहां हो रहे अन्याय, अत्याचार तथा शोषण को एकदम समाप्त करना होगा। इसके साथ एक नये समाज, मूल्य तथा प्रशासन का जन्म होगा जहां समानता, स्वतन्त्रता तथा राजनैतिक संतुलन होगा।

30 नव., 1982 को 37वें अधिवेशन में बोलते हुए भूटान के प्रतिनिधि ने फिलिस्तीन की समस्या के बारे में अपने विचार व्यक्त किये। भूटान के प्रतिनिधि ने कहा, मध्य पूर्व में सभी को एकमात्र प्रयास में जुट जाना चाहिए कि किस प्रकार सर्वभौमिक स्वतन्त्र फिलीस्तीन के देश की स्थापना हो। अरब में हुए सम्मेलन की प्रगति काफी सन्तोषजनक है। अपने विचारों में यह बात भी कही कि सभी को ऐसा हल निकालना चाहिए जिसमें P. L. O. के दर्जे की सभी की ओर से मान्यता मिले और साथ में समझौते का हल निकालने की प्रक्रिया में P. L. O. पूरी तरह सहयोगी हो। भूटान के प्रतिनिधि ने इजराइल के सम्बन्ध में बोलते हुए कहा कि इजराइल को उन सभी भूमि खंड से हट जाना चाहिए जो उनके कब्जे में है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की साधारण सभा के 38वें अधिवेशन में भूटानी प्रतिनिधि ने निरस्त्रीकरण के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत किये। 38वाँ अधिवेशन 20 अक्टूबर, 1983 को प्रारम्भ हुआ। प्रतिनिधि ने कहा, "संयुक्त राष्ट्र संघ के निरस्त्रीकरण से सबंधित उठाये गये कदमों की कुछ देशों ने खुले रूप में अवहेलना की। हथियारों की होड़ जिस गति से बढ़ी है और राष्ट्रीय बजटों की समीक्षा के बाद इस तथ्य की पुष्टि होती है कि सुरक्षा की दृष्टि से सभी देश भयभीत हैं और अस्त्र-शस्त्रों का पारस्परिक आयात निर्यात या निर्माण का दौर बड़े जोरों से शुरू हो गया है। इस प्रकार की होड़ किसी भी देश के लिए हितकारी नहीं है।

भूटान के प्रतिनिधि ने निरस्त्रीकरण पर बोलते हुए अपना विश्वास प्रकट किया कि निरस्त्रीकरण से ही समस्त विकासशील देशों का विकास सम्भव है। निरस्त्रीकरण का शुभ आरम्भ बड़ी शक्तियों से होना चाहिए जिससे वे अन्य देशों के समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत कर सकें। बार-बार आणविक हथियारों को कम करने की दुहाई दी जाती रही है परन्तु उसका व्यावहारिक पक्ष ठीक विपरीत सामने आता रहा है। एक से एक बढ़कर नष्टकारी हथियारों का निर्माण हो रहा है तथा अपने मित्र राष्ट्रों तक पहुँचाने की प्रक्रिया निरन्तर जारी है। यह तभी सम्भव हो सकता है जब महाशक्तियां उक्त सिद्धान्त पर ईमानदारी से अमल कर सकें।

भूटान ने एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लिया जो नामिबिया के लोगों के समर्थन में बुलाया गया था। यह सम्मेलन 25 अप्रेल, 1983 से 29 अप्रेल, 1983 तक चला। इस सम्मेलन में लगभग 136 सदस्यों ने भाग लिया जिसमें भूटान एक था। भूटान ने उन सदस्यों के साथ दक्षिण अफ्रीका की कठोर आलोचना की जिसने नामिबिया पर गैरकानूनी तरीके से

अधिकार कर रखा है। नामविया की सीमा से लगे अंगोला मोजांबिक, जिम्वावे तथा अन्य प्रान्तों मे दक्षिण अफ्रीका की आक्रामक नीति की भी कड़ी आलोचना की गई। भूटान के प्रतिनिधि दाशो दोरजी ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में बोलते हुए कहा, "भूटान एक गुटनिरपेक्ष तथा शान्तिप्रिय देश है जिसने हर अन्तर्राष्ट्रीय जटिल समस्या के हल के लिए शान्ति के ही मार्ग का समर्थन किया है। नामबिया की समस्या भी एक ऐसी समस्या है जिसका हल शान्ति के ही मार्ग से होगा। दाशो दोरजी ने अपने भाषण में कहा कि नामविया की समस्या तथा उस क्षेत्र में अन्य समस्याओं ने ऐसा विकट रूप धारण कर लिया है जो अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा के लिए खतरा वनता जा रहा है। ऐसी गम्भीर समस्या निःसंदेह संयुक्त राष्ट्र संघ का ध्यान आकर्पित करती है तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्था से यह अपेक्षा करती है कि उक्त समस्याओं का समाधान शीघ्र होना चाहिए।

6 दिसम्बर, 1982 को संयुक्त राष्ट्र सघ के 37वें अधिवेशन मे बोलते हुए भूटान के प्रतिनिधि दाशो ओम प्रधान ने मध्य पूर्वी समस्या की ओर संकेत किया और कहा कि मध्यपूर्वी समस्या भी अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा के लिए खतरा बनती जा रही है। दाशो ओम प्रधान ने इजराइल के सैनिक आक्रामक प्रवृत्ति की आलोचना की और कहा कि ईराक पर ध्वंसात्मक आक्रमण एक शर्मनाक बात है।

भूटान के प्रतिनिधि ने ईरान-ईराक के बीच कभी समाप्त न होने वाले युद्ध की आलोचना की तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकारी वर्ग से अपील की कि दोनो देशो के बीच युद्ध का समाधान निकट भविष्य मे निकलना चाहिये।

फिलिस्तीन की समस्या पर बोलते हुए भूटान के प्रतिनिधि ने कहा कि अन्तर्राष्ट्रीय संस्था ने मध्य पूर्व में फिलिस्तीन की गभीर समस्या को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। इस समस्या के समाधान में फिलीस्तीन लोगों को अपने राष्ट्र की सार्वभौमिकता की अखण्डता के लिए उचित अधिकार मिलने चाहिए। भूटान ने यह आशा व्यक्त की P.L.O. को भविष्य में वैध अधिकार प्राप्त होगे तथा फिलिस्तीन की समस्या समाप्त हो जाएगी।

भूटान के प्रतिनिधि ने बैरुत मे फिलीस्तीन शरणार्थियो की निर्मम हत्याओ की कड़ी आलोचना की और कहा कि जो लोग ऐसे जघन्य कार्य के लिए जिम्मेदार हैं उनके विरुद्ध कड़ी से कड़ी कार्यवाही हो।

भूटान तथा गुटनिरपेक्ष सम्मेलन में जो अलजीरिया में हुआ था

1973 में हुए गुटनिरपेक्ष । । इस सम्मेलन में भूटान के स्थायी
भूटान नरेश शामिल नहीं हो पाये थे किया जिन्होंने अपने भाषण में यह स्पष्ट
सदस्य साम्ये पेन्जोर ने प्रतिनिधित्व। शामिल होना भूटान के आधुनिक इति-
किया कि "भूटान का गुटनिरपेक्ष में इससे भूटान की जनता की आशाओं की
हास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।ि साथ कदम से कदम साथ चलने की
पूर्ति हुई है तथा विकासशील देशों ।
क्षमता भी बढ़ेगी।"

ान कोलम्बो में हुआ जिसमें पहली बार

1976 में गुटनिरपेक्ष सम्मे शामिल हुए। भूटान नरेश ने अपने
भूटान के राजा जिसमें लिये वांगचुआों पर प्रकाश डाला। जिन मुद्दों पर
भाषण में समस्त अन्तर्राष्ट्रीय समस्, वे इस प्रकार हैं--
भूटान नरेश ने अपने मत व्यक्त वि निरन्तर प्रयास से एक बात जो सम्भव होती

"गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के भिन्न अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं से उत्पन्न
हुई दिखाई देती है वह यह कि वि इसी सस्था को दिया जाता है। शान्ति
तनावों को कम करने का श्रेय मलती जा रही है। विभिन्न देशों में चल
शक्तियों को धीरे-धीरे सफलता नि निर्णयात्मक सफलता मिली है। विदेशी
रहे राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों को रहे संघर्ष को जहां-तहां सफलता मिली है
शक्तियों के वर्चस्व के विरुद्ध चलई महत्वपूर्ण सम्मेलन विशेष रूप से संयुक्त-
और मिलने की आशा रखते है। प अधिवेशन का होना गुट निरपेक्ष आन्दो-
राष्ट्रसंघ का छठा या सातवा वि क्योंकि उक्त अधिवेशन सस्था के आग्रह
लन की ही सफलता मानी जायगीक्ष आन्दोलन धीरे-धीरे विश्व पटल पर
से ही बुलाया गया था। गुटनिर। ऐसी विपरीत स्थिति में जब प्रगतिशील
एक शक्ति के रूप में उभर रहा हैखुले आम चुनौती दे रहीं हैं। गुट निरपेक्ष
शक्तियाँ शान्ति तथा सुरक्षा को जरूरी है।"
देशों में एकता का होना और भी राइल संघर्ष में बोलते हुए कहा कि पश्चिमी

भूटान नरेश ने अरब-इजराइल नहीं हो सकती जब तक इजराइल अपनी
एशिया क्षेत्र में शान्ति सुरक्षा का पीछे नहीं हटायेगा जो उसने 1967 में
सेना को अरब देशों की सीमा से
अपने अधिकार में कर ली थी। हुए भूटान नरेश ने कहा कि विश्व में अस्त्र-

निरस्त्रीकरण पर बोलते पैदा किया है। चारों ओर सदेह तथा
शस्त्रों की होड़ ने अशान्ति कोमी के कारण हुआ है। निरस्त्रीकरण पर बल
अविश्वास का भाव सुरक्षा की क विश्व में निरस्त्रीकरण का एक आन्दोलन
देते हुए भूटान नरेश ने कहा कि

होना चाहिए जिससे शान्ति-सुरक्षा का भाव जागृत हो तथा तीसरी दुनियां के देश विकास की ओर उन्मुख हों।

1983 मार्च को दिल्ली में हुए गुट निरपेक्ष शिखर सम्मेलन में भूटान नरेश न केवल शामिल हुए अपितु उन्होंने अपने भाषण के माध्यम से सशक्त व तटस्थ विचार प्रस्तुत किये, उन्होंने अपने भाषण में कहा—

"आज विश्व विघटनकारी शक्तियों के कारण टूटा व बिखरा हुआ दिखाई देता है। लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय यथार्थ से हम मुख नही मोड़ सकते। हम ईमानदारी व निष्ठा से बिगड़ी हुई स्थिति में सुधार ला सकते हैं। यह हमारा अटूट विश्वास है कि सच्चे रूप में माधुर्य तथा स्थायित्व का वातावरण तभी पैदा होगा जब हर देश की स्वतन्त्र नीति का मुख्य आधार सहअस्तित्व की भावना हो। गुट निरपेक्ष आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य दासता, निर्भरता, हस्तक्षेप आदि बुराइयों की समाप्ति। उक्त आन्दोलन उन सभी दबावों, चाहे आर्थिक हो या राजनीतिक या सांस्कृतिक, का विरोध करना है। सभी देशों में स्वतन्त्रता, समानता तथा बंधुत्व की भावना को जगाना है। आन्दोलन की सफलता चार मुख्य उद्देश्यों की पूर्ति करने में समझी जायगी। वे चार मुख्य सिद्धान्त हैं—पहला, हस्तक्षेप न करने का सिद्धान्त, दूसरा, अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग का विकास जिसका मूल आधार होगा समानता। तीसरा समस्त गुट निरपेक्ष देशों की अखण्डता तथा स्वतन्त्रता के प्रति आदर और अन्तिम उद्देश्य स्वयं को निर्भय करने की स्वतन्त्रता जो देश बाहरी देश से शासित हैं।

भूटान ने 'मनीला घोषणा' का स्वागत किया जिसमें विवादों को शान्तिपूर्वक समाधान करने का प्रावधान था। आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य था शान्ति को स्थापित करना और सुरक्षा की भावना में वृद्धि करना। 'मनीला घोषणा' की विशेष बात यही थी कि यह उद्देश्यों में अमल करने की क्षमता को बढ़ाने वाली थी।

अत. 1980 से पूर्व तक भूटान की विदेश नीति में जो वर्षों से जड़ता आ गई उसमें परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देने लगे। अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर अधिकांश चुप रहने वाला भूटान अब उन्हीं समस्त मंचों से खुले विचार प्रस्तुत करने की क्षमता बढ़ा चुका है। कभी भारतीय प्रेस से इस प्रकार की टिप्पणियों के समाचार आने लगे कि भूटान पर भारत का प्रभाव घट रहा है या भूटान का दृष्टिकोण भारत के प्रति उदासीन हो रहा है। परन्तु छोटे राष्ट्र की विवशताएँ कुछ ऐसी विचित्र प्रकार की होती हैं जिनको कहने में हास्यास्पद तथा स्वयं में सीमित रखने में संदेह तथा रहस्य लगते हैं। केवल भूटान के

प्रशासक ही अपनी पीड़ा को समझ सकते हैं और उस पीड़ा से मुक्त होने के प्रयास में विकल्पों की खोजबीन करते रहते हैं। भूटान की विदेशनीति में परिवर्तन करना उसकी ठेठ विवशता के अलावा और कुछ नहीं। प्रत्येक विकासशील देश की इसी प्रकार की मजबूरियाँ हैं लेकिन उन सभी को आवश्यक बुराइयों को स्वीकार करना पड़ता है। उदाहरण के लिये, बंगलादेश ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता तथा अखंडता को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से बहुराष्ट्रीय नियोजनों पर अपने देश मे प्रतिबन्ध लगा दिया था। परन्तु यथार्थ के निकट आते ही यह अहसास किया कि देश के विकास के लिये MNC का प्रवेश अनिवार्य बुराई है। इसी प्रकार भूटान की निजी इच्छा तो अन्य राष्ट्रों से अलग-थलग रहने की थी जिसको शताब्दियों से निर्वाह करने का प्रयास भी किया लेकिन अन्त में अन्य राष्ट्रों की तरह वही मार्ग अपनाना पड़ा जिससे छुटकारा नही था। मध्ययुग के काल में रहने की किसी भी राष्ट्र की इच्छा नही है।

इसी सामान्य स्वरूप को ग्रहण करने की इच्छा ने भूटान की अन्तर्राष्ट्रीय आकांक्षाओं मे वृद्धि की जिसने आगे चलकर उसी व्यवहार को साकार रूप प्रस्तुत किया जैसा अन्य राष्ट्रों ने अब तक किया था। अन्तर्राष्ट्रीय संबंध का सामान्य तथा स्थूल सिद्धान्त यही है कि प्रत्येक राष्ट्र के व्यवहार उसके राष्ट्रीय हितों के इर्द-गिर्द नाचते हैं। जब भूटान को 'राष्ट्रीय हितों' का धीरे-धीरे ज्ञान हुआ तो उसके ठीक अनुरूप उसकी अभिव्यक्तियाँ भी स्पष्ट सामने आई जिन पर आश्चर्य करना या चौकन्ने होना उसी के प्रति अन्याय करना है। कुछ एक मुद्दों पर भूटान ने अन्तर्राष्ट्रीय मंचो पर भारत का विरोध किया या उसके विरुद्ध अपनी राय प्रस्तुत की। जैसे कंपूचिया, अफगानिस्तान, तथा आणविक शक्ति के मुद्दे—ऐसे गम्भीर प्रश्न थे जिन पर भूटान ने भारत के विरोध मे अपनी राय सामने रखी। यदि हम भारतीय दृष्टिकोण तथा राष्ट्रवाद या राष्ट्रीय हितों को एक ओर हटाकर दक्षिण एशिया के सबसे छोटे राष्ट्र की मजबूरियों पर ध्यान दें तथा सहानुभूति रखें तो भूटान के प्रति अधिक उचित राय का निर्माण कर सकेंगे। जनतापार्टी के शासन में जब भारतीय जनतापार्टी के नेता श्री अटलबिहारी बाजपेयी विदेशमन्त्री बने तभी उन्हें यथार्थ के दर्शन हुए तथा भारतीय विदेशनीति के निर्माता पं. जवाहरलाल नेहरू की विदेशनीति मे दूरदर्शिता का अहसास हुआ। उससे पूर्व वे विरोधी नेता के रूप में संसद में अनेकों बार भारतीय विदेशनीति की आलोचना कर चुके थे। कहने का अर्थ यही है कि हर राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के बहु-

आयामी दवावों के अनुरूप अपने व्यवहार को ढालने का प्रयास करता है और उस प्रक्रिया में अपने विचार-मत तथा निर्णयों को तै करता है। भूटान आज, यू. एन. ओ, एन. ए. एम तथा सार्क का सक्रिय सदस्य है। अन्तर्राष्ट्रीय घटना-चक्रों को समझकर तथा राष्ट्रीय हितों को दृष्टि मे रखकर अपनी स्वतन्त्र राय बनाता है और अन्तर्राष्ट्रीय मचों पर उसी के अनुरूप व्यवहार देने का प्रयास करता है। सार्क का सक्रिय सदस्य हो जाने के बाद अपने ही देश में दो तीन बार अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों की मेजबानी भी की है। पहली बार तो तमिल समस्या के समाधान के प्रयास मे तथा दूसरी बार सार्क का सम्मेलन। कहने का अर्थ है कि भूटान मे आधुनिकीकरण तथा आर्थिक विकास की प्रक्रिया उस स्तर पर पहुँच गई है जिसको देखकर भूटान को पिछडे हुए देश की संज्ञा देना अब उसका अपमान करना होगा। भारत की आर्थिक सहायता शत-प्रतिशत से घटकर 87% रह गई है। पहले यू एन. ओ. से आर्थिक सहायता मात्र 3 प्रतिशत थी लेकिन अब बढकर 18% हो गई है। यद्यपि इन सभी का विश्लेषण 'भूटान आर्थिक विकास की ओर' के शीर्षक में हो चुका है। यहाँ कहने का तात्पर्य यही है कि भूटान दक्षिण एशिया क्षेत्र मे तथा अन्तर्राष्ट्रीय मंचों से अपनी अन्तर्राष्ट्रीय आकांक्षाओं तथा राष्ट्रीय अस्तित्व को ऊपर लाने में सतत प्रयत्नशील है।

यद्यपि भूटान नरेश तथा उसके सहयोगी प्रशासकों को अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका को निभाने में एक दृष्टि से संतोष है लेकिन दूसरी ओर अपने ही घर की स्थिति को देखकर चिन्ता भी होने लगी है। हर राष्ट्र आधुनिकीकरण तथा आर्थिक विकास की इच्छा पूर्ति मे एक महत्त्वपूर्ण चीज को उत्तरोत्तर खोने लगता है जो उसकी मूल निधि कभी थी। वह मूल निधि उसकी संस्कृति तथा पावन परम्पराएँ हैं जिन पर शनैः शनैः प्रहार होते देखकर चिन्ता होती है। यदि भूटान से मात्र प्रकाशित साप्ताहिकी बुलैटिन की ओर दृष्टिपात करें तो हर प्रति में यह पढ़ने को मिलेगा कि 'भूटान की संस्कृति की सुरक्षा' को प्राथमिकता दी जायगी। उक्त बुलैटिन मे यही शिकायत पढ़ने को मिलेगी कि 'देश की संस्कृति खतरे मे है।' उसमे यह भी पढ़ने को मिलेगा कि 'भूटान के युवा वर्ग की देश के बौद्ध धर्म के प्रति उदासीनता बढ़ रही है।' या यह भी ज्ञान होगा कि 'देश मे मठों के धार्मिक नेताओ का सार्वजनिक रूप से अपमान करना देश की संस्कृति का अपमान करना है'। दूसरे शब्दों में यह कहना पर्याप्त होगा कि भूटान यदि आधुनिकीरण तथा आर्थिक विकास की ओर बढ़ता

है तो उससे संलग्न उत्पन्न हुई बुराइयों को भी झेलना होगा जिनका होना अपरिहार्य है। सुखवाद तथा भोगवाद के समाज का सृजन तथा उससे लिपटी हुई बुराइयाँ साथ-साथ चलती हैं। भारत भी इन्ही बुराइयों का शिकार हो चुका है—उससे बचना मुश्किल है। इसीलिये महात्मागांधी ने 1947 में ही कहा था कि "औद्योगीकरण की व्यवस्था को लाना कोई बुरी बात नहीं है लेकिन स्वदेशी कुटीर उद्योगों की कीमत पर लाया जायेगा तो उस भारत को पहिचानना मुश्किल हो जायगा जिसके लिये यह देश पश्चिमी देशों में जाना जाता रहा है"। यह बात सही है कि राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण तभी होता है जिस देश के नागरिक भोगवाद या सुखवाद की ओर न्यूनतम उन्मुख होते हैं।

यह जानकर आश्चर्य होगा कि भूटान में आर्थिक विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ होने से मठो के युवा धार्मिक नेता आधुनिकीकरण की चमक-दमक को देखकर गृहस्थ जीवन को बिताने के लिये लौट रहे हैं जिससे 'सुखवाद' की स्थिति से वंचित न रह जायें। ☐☐

भूटान में नेपालियों की समस्या

अल्पसंख्यकों की समस्या न केवल दक्षिण एशिया में ही सीमित है अपितु यह एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या बन गयी है। अन्तर केवल इतना है कि उच्च स्तर के विकसित देशों में राजनीतिक व्यवस्था का स्वरूप शालीन होने के कारण उक्त समस्याओं को सार्वजनिक रूप से अधिक नहीं उछाला जाता जबकि ठीक इसके विपरीत विकासशील देशों में अल्पसंख्यकों की समस्या उनके राजनीतिक व्यवस्था के लिए निरन्तर चुनौती सी बन गयी है। दक्षिण एशिया के देश तो इस समस्या से निःसन्देह अधिक पीड़ित हैं। चाहे वह श्रीलंका हो या बांग्लादेश, चाहे पाकिस्तान हो या नेपाल-भूटान, समस्त क्षेत्रों में यह समस्या अधिक गहरी होती जा रही है। जिनके कारण भारत पर अधिक दबाव पड़ता है। साथ में समस्या के समाधान में भारत की भूमिका निर्णायक एवं महत्वपूर्ण होती है।

इसी सन्दर्भ में भूटान की अल्पसंख्यकों की समस्या से परेशान है चूंकि भूटान वर्षों तक ऐसा पर्वतीय राज्य रहा है जिसको बाहरी परिवर्तनशील वातावरण से अलग-थलग रखा गया। इसलिए भूटान की आन्तरिक समस्याओं के बारे में अधिकांशतः लोग अनभिज्ञ हैं। 1961 के बाद से ही भूटान ने अपनी विदेश नीति में धीरे-धीरे परिवर्तन करना प्रारम्भ किया जिसके फलस्वरूप उसकी आन्तरिक समस्याओं से सम्बन्धित सूचनाएं अब मालूम होने लगी हैं। भूटान में अल्पसंख्यकों की समस्या अपना भयंकर रूप धारण करती जा रही है।

भूटान के निवासी

भूटान दक्षिण एशिया का एक छोटा सा पर्वतीय राज्य है। जिसका क्षेत्रफल 18,000 वर्गमील तथा जनसंख्या 13-14 लाख के आस-पास है। यह माना जाता है कि भूटानी जनता का विशाल बहुमत भारतीय मंगोल

जाति से निर्मित है तथापि दक्षिण भाग में नेपालियों (नेपाल मूल के लोग) का अधिपत्य है। जिन स्थानों पर नेपाली बसे हुए हैं, वह है—चिराग तथा सामची। नेपाली मूल के निवासी प्रारम्भ से भूटान के राजतन्त्र के लिए चुनौती बने हुए हैं जिसके कारण उनको वहां के अधिकारी वर्ग ने बसने का स्थान भी अलग रखा। नेपाली निवासियों की अपनी व्यक्तिगत समस्याएं हैं। जिनका समाधान वहां का प्रशासन अभी तक नही कर पाया है। वे अपने आप भूटान के निवासी हैं उनको नम्बर 2 का दर्जा प्राप्त है। जिसके कारण उनमे असन्तोष व विद्रोह की भावना इतने वर्षों से पल रही है। भूटान की जनता का विभाजन मोटे रूप से तीन भागो में किया जा सकता है—(a) पुरोहित, (b) अधिशासी वर्ग (c) किसान एव श्रमिक वर्ग। नेपाली लोगो की गणना किसान या श्रमिक वर्ग मे की जाती है।

नेपाली लोगों की भी उपजातियां हैं जैसे रिचाए, गुरंग, लिम्बु, छेत्री तथा थारस, ये लोग 19वी शताब्दी के प्रारम्भ में असम एव बगाल से भूटान की तराई के क्षेत्रों में बसते चले गए। नेपालियों में गुरखा जाति अपेक्षाकृत विद्रोही तथा क्रान्तिकारी समझी जाती है। भूटान के नेपाली भाग (दक्षिण भूटान) चिरांग व सामची मे नेपाली बसे हुए हैं। इनका व्यवसाय कृषि एवं शारीरिक श्रम है। नेपाली लोग भूटान के मूल निवासी भूटिया, लैंप्चा, दुकयास एवं दोयास, से अधिक मेहनती होने के कारण भूटान मे नागरिकता प्राप्त करते गए। भूटान के प्रशासन ने यद्यपि अपने स्वार्थ के लिए नेपालियों को प्रवेश होने दिया एवं नागरिकता भी प्रदान की लेकिन उनको सम्मानीय दर्जा नही दिया। भूटान के आधुनिक निर्माण में नेपालियों का सर्वाधिक योगदान होने के बावजूद भी उनको दो स्थानों के अतिरिक्त बसने की स्वतन्त्रता नहीं दी। यही नही इतने लम्बे अर्से से बसे हुए लोगों को भूमि खरीदने का अधिकार भी नही दिया। भूटान के प्रशासन मे नेपालियो को कहीं भी प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है। नेपाली जाति में एक पुरुष को कई-कई शादियाँ एव पत्नियाँ रखने का अधिकार है जिसके कारण उनकी जनसंख्या वहां के मूल निवासियों के मुकावले भविष्य में अधिक हो जाने की सम्भावना है। 1971 की जनगणना के अनुसार नेपालियों की जनसंख्या 20% से 30% आकी गई है परन्तु अनौपचारिक रिपोर्ट के अनुसार नेपालियो की जनसंख्या लगभग 30% से 40% है। यदि इस प्रतिशतता पर विश्वास किया जाये तो निःसन्देह भूटान के राजतन्त्र प्रशासन के लिए एक गम्भीर समस्या ही नही अपितु खतरा भी कहा जा सकता है।

भूटान के प्रशासन का नेपालियों के प्रति भेदभाव का व्यवहार शंकाओं के कारण हुआ, जिसमें अभी भी परिवर्तन नहीं हो पाया है, यह एक संक्षिप्त इतिहास है जिसे हम इस प्रकार स्पष्ट रूप से समक्ष सकते हैं।

1952 में डी. बी. गुरंग, डी. वी. छेत्री तथा जी. जी. शर्मा के नेतृत्व में एक राजनीतिक दल का निर्माण हुआ जिसका नाम भूटान स्टेट कांग्रेस दल (Bhutan State Congress Party) रखा गया। प्रारम्भ में उक्त दल के मुख्य उद्देश्य केवल उन नेपाली शरणार्थियों की दिक्कतों तथा समस्याओं का समाधान करना था जो गोलपारा तथा जलपाईगुरी में बस गये थे। बाद में इस दल के उद्देश्यों का विस्तार राजनीतिक सुधारों तक हो गया था। भूटान कांग्रेस दल का सीधा सम्पर्क भारत के उन नेताओं से था जिनसे दल को पूरा-पूरा सहयोग, मदद मिलने की अपेक्षा थी। दल ने अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अहिंसात्मक आन्दोलन करने की घोषणा कर दी थी। मुख्य उद्देश्य केवल भूटान सरकार की भेदभावपूर्ण नीति का उन्मूलन करना था जिससे नेपाली लोग वर्षों से पीड़ित थे। नेपाली लोगों को भूटानी सरकार से निम्न शिकायतें थीं—

(A) भूटान में नेपाली निवासियों को नागरिकता प्रदान करने के बावजूद भी आवश्यक सुविधाओं से क्यों वंचित कर रखा है ?

(B) भूमि पर स्वामित्व एवं भूमि पर खेती करने से नेपालियों को क्यों वंचित एवं वर्जित कर रखा है।

(C) नेपालियों का मूल निवासियों एवं अधिकारी वर्ग द्वारा क्यों शोषण किया जाता रहा है।

उक्त समस्याओं को हल करने हेतु 22 मार्च, 1954 भूटान के दक्षिण भाग सारभाग (जहां सर्वाधिक नेपाली बसे हुए हैं) में सत्याग्रह करने का अभियान प्रारम्भ किया। दल के नेताओं ने भारतीय नेताओं से समर्थन प्राप्त करने का भरसक प्रयास किया। परन्तु उस संकटकाल में इस दल को कोई भी सहायता प्राप्त नहीं हो सकी। जिसके परिणामस्वरूप भूटान के राजा को एक मात्र दल को कुचलने का पूरा-पूरा मौका मिला। भूटान में यह सब से प्रथम व अन्तिम आन्दोलन था, इस आशा में कि क्या सिक्किम की तरह भूटान में भी नेपाली समस्या की पुनरावृत्ति होगी। इस घटना से यह स्पष्ट होता है कि भारत सरकार की नीति राजतन्त्र को समर्थन देने वाली थी जिसके कारण भूटान में आज तक जनतान्त्रिक शक्तियाँ उभरने नहीं पाई हैं।

भूटान संसद का जन्म

उक्त आन्दोलन ने भूटान के राजा को झकझोर कर रख दिया। वह जनतान्त्रिक शासन के पूर्णत: खिलाफ होने के बावजूद भी जनतन्त्र का आडम्बर करने के लिए अवश्य बाध्य हुआ। भूटान की 1953 में एक संसद को जन्म दिया जिसका संविधान बनाया गया। भूटानी भाषा में संसद को 'शोगदू' (Tsongdu) कहते हैं। यद्यपि चुनाव की व्यवस्था तथा पद्धति भारतीय व्यवस्था से भिन्न रखी गयी। लेकिन उनमें सदस्यों को राष्ट्रीय मुद्दों पर खुलकर बहस करने का मौका अवश्य मिला। आज भूटान संसद में 150 सदस्य हैं, जिनमें से 100 सदस्यों का जनता द्वारा सीधा चुनाव होता है। शेष सदस्य भूटान के राजा द्वारा मनोनीत होते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि भूटान की संसद में नेपालियों का प्रतिनिधित्व तो है लेकिन उनकी संख्या नहीं के बराबर है।

भूटान के प्रशासन से नेपाली निवासियों की मुख्य मांगें इस प्रकार हैं–

(A) भूटान में राजतन्त्र को समाप्त कर जनतान्त्रिक व्यवस्था हो।

(B) भूटान में भाषायी नीति भेदभावपूर्ण है, भूटानी भाषा जोनखा (DZONKHA) अनिवार्य रूप से लागू करना अन्याय है।

(C) देश में नेपाली भाषा को उचित स्थान दिया जाए।

(D) भूटानी पोशाक (गाडो को अनिवार्य रूप से पहनना प्रजातन्त्र के खिलाफ है) इसलिए पोशाक पहनने पर छूट हो।

(E) भूटान में बौद्ध धर्म को मानना मानवीय भावनाओं के विरुद्ध है।

(F) भूटान में इस प्रकार के साहित्य पर पाबन्दी है जो जनतान्त्रिक भावनाओं को जगाता है, नेपाली निवासियों की यह मांग है कि हर तरह के साहित्य को पढ़ने की छूट होनी चाहिए।

(G) देश में दोहरी चुनाव की पद्धति को लागू करना जनतांत्रिक भावनाओं के खिलाफ है। भूटान के दक्षिणी भाग मे जहां नेपाली निवासी हैं। वहां सीधा चुनाव करने की व्यवस्था है, जबकि अन्य स्थानों पर अपरोक्ष चुनाव पद्धति का प्रावधान है।

उक्त आपत्तियों, दिक्कतों के अलावा नेपाली निवासियों का रहन-सहन परम्पराएँ व मूल्य भूटान के मूल निवासियों से भिन्न हैं। नेपाली लोग किसी भी प्रकार से भूटानी संस्कृति में आत्मसात नहीं कर पाये हैं। जिनके कारण उनको वे सरकारी सुविधाएँ प्राप्त नहीं हैं जितनी अन्य निवासियों को। इसके अतिरिक्त भूटान भी इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं है कि नेपाली निवासियों के पारस्परिक सम्बन्धी रिश्तेदार या तो नेपाल में हैं, या भारत में हैं। इस कारण से भी भूटान के अधिकारी वर्ग नेपालियों पर सन्देह भरी नजरों से

निगरानी रखते हैं। नेपालयों की भूटान राष्ट्र के प्रति निष्ठा पर आज तक सन्देह है। भूटान सरकार को अच्छी तरह जानकारी है कि नेपाली निवासी भारत के आदर्श परम्परा तथा रहन-सहन से अधिक प्रभावित हैं और उनके व्यवहार में उक्त लक्षणों की पूरी झलक मिलती है। भूटान में नागरिकता प्राप्त करने से पूर्व नेपाली लोगों की शिक्षा भी भारत के खुले वातावरण में मिली है इसलिए ऐसा विश्वास किया जाता है कि वे या तो जनतान्त्रिक मूल्यों को मानने वाले हैं या उनका झुकाव साम्यवाद की ओर हैं। वह भी मार्क्स साम्यवाद। नेपाली निवासी आज तक अपने आपको भावनात्मक एकता के सूत्र में हिमालयी राज्य भूटान से बंध नहीं पाये हैं। ऐसा अनुमान है कि यदि भूटान की नीति में परिवर्तन होता है तो वे प्रशासन के अंग बन जायेंगे, और उनकी शिकायतें, माँगें, दिक्कतें, समस्याएँ समाप्त हो जाएँगी। परन्तु वर्तमान स्थिति इसके बिल्कुल ठीक विपरीत होने के कारण अल्पसंख्यक की समस्या भूटान में अन्य दक्षिण एशियाई देशों की तरह अभी जीवित है। भूटान स्टेट कांग्रेस दल जिसका गठन 1952 में हुआ था उस पर आज तक पाबन्दी लगी हुई है।

भूटान के अधिकारी वर्ग में नेपालियों के प्रति कुछ सन्देह में अधिक बल पड़ गये हैं। जिसके कारण उनके प्रति संभावित घटनाओं के बारे में सोचना काल्पनिक नहीं कहा जा सकता है। भूटान के मूल निवासी यह सोचने लगे हैं कि नेपाली निवासी जो कि दक्षिण भाग में बसे हुए हैं। भविष्य में भूटान के लिए चुनौती ही नहीं अपितु खतरा बन सकते हैं। उनका यह सोचना गलत तो नहीं है क्योंकि नेपाली निवासियों का सामाजिक एवं राजनीतिक सम्बन्ध भारत के मैदानी नेताओं से बराबर बना रहा हैं। तथा 1954 में राजनीतिक दल पर लगाए गये पाबन्दी का उन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ है। भूटान स्टेट कांग्रेस दल के नेता यद्यपि अभी शान्त दिखाई देते हैं लेकिन वे इस मौके की तलाश में हैं कि जब वे उसका फायदा ले सकें। उनके मस्तिष्क में सिक्किम का उदाहरण हमेशा के लिए बस गया है और उम्मीद है कि शायद कभी सिक्किम की घटना भूटान में भी दोहराई जाए। इसलिए नेपाली निवासी यदाकदा भूटान के राजा से अपनी शिकायतें रखते हैं। भौगोलिक दृष्टि से भी नेपाली निवासी, असम, पश्चिमी बंगाल के मार्क्सवादी नेताओं से निकट सम्पर्क बनाये हुए हैं, और वहाँ के वरिष्ठ नेताओं से निर्देशन लेते रहे हैं। कभी-कभी नेपाली नेता भारत सरकार से भी यह शिकायत करते हैं कि नई दिल्ली अपनी नीति को बदले जिससे उनके प्रति किया गया भेदभावपूर्ण व्यवहार हमेशा के लिए समाप्त हो।

भारत की भूमिका

1949 से वर्तमान तक भारत ने जिस तरीके से अपनी नीति को व्यावहारिक रूप से प्रस्तुत किया, उससे भूटान के राजा पूर्णतः आश्वास्त हैं कि सिक्किम की कहानी दुहराई नहीं जायेगी। यह शंका सिक्किम के उदाहरण को लेकर कही तो जा सकती है, परन्तु सिक्किम के साथ भारत ने 1950 में सन्धि जो की थी, उसका स्वरूप भूटान से भिन्न है। सिक्किम 1950 की सन्धि के अनुसार एक आरक्षित राज्य था, जबकि 1949 की संधि भूटान की अखण्डता व सार्वभौमिकता स्वतन्त्रता पर किसी भी प्रकार से आँच नहीं आने देती है। इसलिए सिक्किम के उदाहरण को प्रस्तुत करना निराधार है। भारत की नीति विशेष रूप से भूटान के साथ पारस्परिक सहयोग तथा सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार की रही है। ऐसा डर या शंका तो की जा सकती है, परन्तु उसको व्यावहारिक रूप देना असंभव है।

आज भूटान का अन्तर्राष्ट्रीय दर्जा 1949 से कही ज्यादा ऊँचा है। यद्यपि सन्धि तो यों की त्यों बरकरार है और उसका सफलतापूर्वक निर्वाह हो रहा है। नेपाली निवासियों की समस्या को भारत ने भूटान की आन्तरिक समस्या समझा है और उसमें कभी भी हस्तक्षेप करने की सोचा भी नहीं है। भूटान के राष्ट्रीय हितों की पूर्ति करने में कभी नही रहेगा। पिछले 7 वर्ष से भूटान के अधिकारी वर्ग इस बात से परेशान हैं कि आर्थिक क्षेत्र में भारत से शत-प्रतिशत सहायता लेना कहाँ तक उचित है? भारत ने उसकी परेशानी को अन्य दृष्टिकोण से समझा और तुरन्त ही आर्थिक सहायता धीरे-धीरे कम कर दी। उसके विकल्प के लिए भूटान अन्य देशों से आर्थिक सहायता लेने लगा, जिसका अर्थ पड़ौसी देशों ने कुछ और ही लिया। हाल ही में भूटान नेपाल सम्बन्धों के स्थापित हो जाने से यह शंका अवश्य उठ खड़ी हुई है कि क्या भूटान में नेपाली निवासी अपनी समस्याओं का समाधान नेपाल की सहायता से कर सकते हैं। यदि हाँ, तो दोनों के बीच नए सम्बन्धों का क्या भविष्य होगा?

इस सम्बन्ध मे दो सम्भावनाएँ व्यक्त की जा सकती हैं--(1)-भूटान सम्भवतः नेपाली निवासियों को अपने प्रशासन मे उचित स्थान देना प्रारम्भ कर देगी। (2) नेपाल भूटान में इस समस्या को अधिक प्रज्ज्वलित कर सकता है जिसके फलस्वरूप भूटान नेपाल के सम्बन्धों मे कटुता आ सकती है। ऐसी परिस्थितियों से भारत अवश्य समस्या के निराकरण के लिए हस्तक्षेप करे और वह हस्तक्षेप भूटान के ही पक्ष मे होगा और नेपाल को दब जाना पड़ेगा।

□□

पूर्वांचल की समस्या

कहा जाता है कि भारत का पूर्वांचल भाग मुख्य धारा से बंध नहीं पाया। यह भी निरन्तर आक्षेप दिल्ली के प्रशासन पर रहा कि उत्तरी-पूर्वी सीमा खंड पूर्णतया उपेक्षित रखा गया तथा लाभ का हिस्सा उनको नहीं मिल पाया। यह मत या पक्ष अपने आप में पूर्ण नहीं लगता। दूसरा पक्ष जो उभर कर आया है या प्रस्तुत किया जा सकता है वह यह कि उसकी भौगोलिक परिस्थितियों ने उनको मुख्य धारा मे आने से रोके रखा तथा पारस्परिक विरोध तथा संघर्षों के कारण आपस की सीमा से सटे प्रान्तों को एक सूत्र में बंधने से रोके रखा। इसका ज्वलंत उदाहरण उनके दलीय गठन तथा पारस्परिक हितों की टकराहट से स्पष्ट होता है। उत्तर-पूर्वी सीमा के क्षेत्रीय दलों की स्थिति अत्यधिक दयनीय लगती है। दयनीय स्थिति का मात्र कारण आपस के हितों की टकराहट तथा प्रतिस्पर्धा।

1978 के बाद जब से पूर्वांचल लोक परिषद का गठन हुआ जिसके अन्तर्गत बराबर प्रयास किये गये कि उक्त सीमा खंड के लोग एक होकर काम करें तथा उत्तरी सीमा के विभिन्न प्रान्तों के बीच माधुर्य का वातावरण कायम रहे। ऐसा विश्वास किया जाता है कि पूर्वांचल लोक परिषद के गठन मे भूतपूर्व समाजवादी नेता निवारन बोरा की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। श्री बोरा ने उत्तर-पूर्वी सीमा के प्रान्तों को एक सूत्र मे बांधने का अथक प्रयास किया। इसके पीछे एक मात्र उद्देश्य यही था उत्तर-पूर्वी सीमा के प्रान्त जो अब तक सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक दृष्टि से भारत की मुख्य धारा से नहीं जुड़ पाये हैं–अब लोकपरिषद के गठन के बाद जुड़ पायेंगे तथा उन सभी लाभों को प्राप्त कर सकेंगे जिनसे अब तक वंचित रहे।

पूर्वांचल लोक परिषद को जिन क्षेत्रों में पर्याप्त रूप से सक्रिय होना था वे थे–असम, मेघालय, नागालैंड, मनीपुर, मिजोरम, अरुणाचल तथा त्रिपुरा।

परन्तु आगे चलकर लोक परिषद का व्यावहारिक स्वरूप उद्देश्यों की विपरीत दिशा में सक्रिय दिखाई दिया। असम की ब्रह्मपुत्र घाटी तक ही लोक परिषद की सक्रियता धीरे-धीरे सीमित होती गई और अन्य छोटे-छोटे प्रान्तों के हितों की उपेक्षा का भाव स्पष्ट होता गया।

पूर्वांचल लोक परिषद (PLP) की प्रतिबद्धता समग्र उत्तर-पूर्वी राज्यों की न होकर अपने छोटे से दायरे मे धीरे-धीरे बंधती गई जिसके परिणाम-स्वरूप उन उद्देश्यों की प्राप्ति में कोई उपलब्धि न हो पाई जिस आधार पर उसका गठन हुआ था। यद्यपि प्रय.स फिर भी चलते रहे जिससे सम्पूर्ण पूर्वांचल का भाग लाभान्वित हो सके। सबसे बड़ा मुद्दा था--आर्थिक पिछड़ेपन का। लोक परिषद ने उन मांगो को रखा जिससे स्थानीय आर्थिक दरिद्रता को दूर किया जा सके। वहां के आदिवासियो की आर्थिक स्थिति को भी सुधारने का उद्देश्य सन्निहित था। लोकपरिषद के नेताओं का केन्द्र पर आरोप था कि उत्तर-पूर्वी भाग का खुले आम शोषण किया जा रहा है। नेताओं के आंकड़ों के आधार पर केन्द्र को स्पष्ट किया कि बाघ्य तत्व स्थानीय लोगों का आर्थिक दृष्टि से शोषण करते रहे है। लोक परिषद ने स्थानीय आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिये सुझाव दिया कि यदि समस्त उत्तर-पूर्वी प्रान्त पारस्परिक आर्थिक सहयोग की योजना कार्यान्वित कर सकें तो उनका आर्थिक शोषण भी नहीं होगा और परस्पर सहयोग की बुनियाद पर उनकी स्थिति में सुधार हो सकता है। सामूहिक नेतृत्व की भावना ही इस क्षेत्र में न केवल आर्थिक सुधार लायेगी अपितु इसकी अपनी अलग से अहमियत भी उभरेगी। उद्देश्य कितने भी अच्छे क्यों न हों, उनकी व्यावहारिकता उतने अंश में ठीक नही होती। यही बात पूर्वांचल लोक परिषद के साथ हुआ। यदि हम समस्त पूर्वांचल के प्रान्तों की क्षेत्रीय दलों की स्थिति का विश्लेषण करें तो लगता है कि पी. एल.पी. तथा क्षेत्रीय दलों के बीच निरन्तर गतिरोध उत्पन्न होते गये। परिणामत स्वरूप उन उद्देश्यों की प्राप्ति में व्यवधान सामने आये जिन्होंने उनकी स्थिति में सुधार ला पाने मे रुकावट डाली। धीरे-धीरे PLP के उद्देश्य केवल असम तक ही सीमित होकर रह गये।

क्षेत्रीय दलो की भूमिका—असम आन्दोलन जिसकी पराकाष्ठा अगस्त, 1979 मे विदेशी नागरिकों के मुद्दे को लेकर प्रारम्भ हुयी थी उसमे PLP एक महत्त्वपूर्ण इकाई के रूप में उभरा। AAGSP (All Assam Ganga Sangram Parishad) को शक्ति प्रदान करने वाले और भी तत्व थे। उसमे उत्तर पूर्वी क्षेत्र के क्षेत्रीय दलों को शामिल किया जा सकता है। जब असम

का आन्दोलन आगे बढ़ रहा था उस समय मेघालय में बांगलादेश से आये विदेशी नागरिकों की समस्या भी धीरे-धीरे पनप रही थी। मेघालय, मणिपुर, अरुणाचल तथा नागालैंड के क्षेत्रीय दलों ने असम आन्दोल को पूर्ण सहयोग दिया तथा PLP के गठन का महत्व उक्त समस्या को देखकर और भी बढ़ता गया। ऐसा अनुभव होने लगा कि PLP के माध्यम से क्षेत्रीय एकता में और भी वृद्धि होगी। 'Cut-off' की मांग पर सभी उत्तर-पूर्वी प्रान्तों ने असम आन्दोलन को शक्ति प्रदान की। इस प्रकार की एकता से सभी को अनुभव होने लगा कि पारस्परिक सहयोग की भावना भविष्य में और भी बढ़ेगी तथा PLP के उद्देश्यों की प्राप्ति मे कोई व्यवधान नहीं आयेगा। असम आन्दोलन के दौरान क्षेत्रीय दलों की वार्षिक सभा होती थी और पारस्परिक आर्थिक तथा राजनीतिक मुद्दों पर खुलकर बहस होती थी। इस प्रकार की सभाओं को बुलाने का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करना तथा विभिन्न प्रान्तों को अधिक से अधिक स्वायत्तता प्राप्त करने की रही। क्षेत्रीय दलों की तीसरी सभा इंफाल में अक्टूबर, 1984 को हुई। इस सभा में 'पूर्वांचल' की अखडता तथा एकता को कायम करने के लिये इसका 'दिवस' मनाने का निश्चय किया। इस मीटिंग मे लगभग ग्यारह क्षेत्रीय दलों ने भाग लिया जिसमें (a) Mani-Pur Peoples Party, (b) Naga National Democratic Party (c) Peoples Conference of Mizoram, (d) The Hill People Democratic Party, (e) P.L.P.

इस मीटिंग मे पूर्वांचल क्षेत्रीय दलों की एक (Action Committee) का भी गठन किया गया। एक्शन कमिटी का अध्यक्ष मेघालय के पूर्व मुख्य मंत्री श्री बी. बी Lyndoh को चुना गया। PLP के Pabendra Deka को Action Committee का महामंत्री नियुक्त किया गया।

जब असम गण परिषद का अक्टूबर, 1985 मे गठन हुआ तो PLP ने अपने मुख्य उद्देश्यों को इसमे विलय कर दिया, उनके सभी प्रोग्रामों को AGP मे समाहित कर दिया। इस नये क्षेत्रीय दल मे PLP के पूर्व सचिव अतुल बोरा तथा पविन्द्र डेका को महत्त्वपूर्ण पद प्रदान किये गये। AGP के चुनाव अभियान में अन्य क्षेत्रीय दलों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। AGP की विजय तथा सरकार बनने से अन्य क्षेत्रीय दलों को और भी अधिक हिम्मत बंधी और इसी के साथ Concept of Regional Unity को भी अधिक उत्साहित किया। AGP की सरकार के गठन के तुरन्त बाद समस्त क्षेत्रीय दलो की एक सभा हुई जिसके अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार से उन सभी सुविधाओं को प्राप्त करने की योजना बनाई गई जिनसे अब तक वर्षों से वंचित थे।

सीमा उल्लंघन का आरोप लगाया है। असम नागालैंड के बीच सीमा विवाद को लेकर आपस में हिंसात्मक झगड़े हुए हैं। सबसे प्रमुख झगड़ा जून, 1985 को मीरापाणी पर हुआ जब नागालैंड तथा असम की पुलिस के बीच सीमा के मुद्दे को लेकर युद्ध हुआ। इस युद्ध मे दोनों ओर से कई लोग मारे गये तथा सैकड़ों व्यक्ति हताहत हुए। इसी प्रकार 1979 में असम-नागालैंड के बीच आपसी झगड़े हुए जब नागालैंड के हथियारयुक्त नागरिकों ने, जो
: नागालैंड की पुलिस के द्वारा अनुप्रेरित थे, असम के गांवों पर कई
हमला किया। जिन गांवों पर आक्रमण किया वे असम के दक्षिणी भाग
नामबोर, रैंनिगमा, तथा दिफू। दोनों के बीच विवाद 434 किलो मी.
...कर हुआ। नागालैंड ने सुंदरम कमीशन की सिफारिशों को
...इन्कार कर दिया जिसने 1925 के नियमों का समर्थन
...का कहना है कि 1925 के नियमों को न लेकर सुंदरम
के नियमों को नजर मे रखकर अपनी सिफारिशें
भी उक्त मसले को लेकर दोनों के बीच भारी तनाव

यद्यपि समस्त क्षेत्रीय दलों में एक समान दृष्टिकोण तथा विचारधारा न होते हुए भी उनको एकता के सूत्र में बंधने का अच्छा अवसर मिला जिसके आधार पर वर्षों से वंचित रहे उन लाभों को प्राप्त करने के लिये वचनबद्ध हो गये। असम तथा मिजोरम में क्षेत्रीय दल की सरकार का बन जाना तथा मणिपुर, अरुणाचल, नागालैंड तथा त्रिपुरा में सशक्त विरोधी क्षेत्रीय दल के होने से स्पष्ट होने लगा कि क्षेत्रीय दलों के बीच एकता तथा अखंडता बनी रहेगी। लेकिन अच्छे उद्देश्य तथा प्रोग्रामों को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करने की प्रक्रिया मे व्यवधान न आये यह भी सम्भव नही है। उल्लेखनीय है कि असम तथा त्रिपुरा को छोड़कर राष्ट्रीय स्तर के विरोधी दलों की भूमिका शेष उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों मे नगन्य सी रह गई। मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड तथा मणिपुर के प्रान्तो में यद्यपि कांग्रेस (आई) सरकार बनाने में समर्थ तो हुई लेकिन उसने कुछ तो अन्तः पारस्परिक विरोध का लाभ उठाया और कुछ केन्द्र के सहारे जोड़ तोड के माध्यम से सफलता प्राप्त की। इस मत मे कितनी विश्वसनीयता है, यह तो नही कहा जा सकता परन्तु व्यवस्था सिद्धान्त का व्यावहारिक पक्ष हर स्थान पर इन्हीं परिणामों को हमेशा प्रदान करता रहा है। उदाहरण के लिये मेघालय मे कांग्रेस (आई) तथा ए. पी. एच. सी. एल का गठबंधन तथा नागालैंड में कांग्रेस (आई) व एन. एन. ओ के तालमेल ने सत्ता मे ठहरे रहने के लिये सत्ता पक्ष को मदद दी। साथ में केन्द्र के द्वारा पहाड़ी क्षेत्रों को थोक मे अनाप-सनाप आर्थिक सहायता ने भी कांग्रेस (आई) को सत्ता मे ठहरे रहने मे सहायता दी है। कांग्रेस (आई) की राजनीतिक चतुराई बरकरार रही कि मेघालय, नागालैंड तथा अरुणाचल के बीच सीमा विवाद हमेशा जिन्दा रहे जिसका लाभ उसे निरन्तर मिलता रहा।

लेकिन पिछले अनुभवों ने यह बात तो क्षेत्रीय दलों को अवश्य सिखा दी है कि वे बिना कांग्रेस (आई) से गठबंठन किये बिना अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कायम रख सकते हैं। साथ मे क्षेत्रीय दलो के बीच एक उलझन परेशान किये हुए है कि पारस्परिक सीमा विवाद का विकल्प क्या है जिसके फलस्वरूप यथार्थ लाभ कांग्रेस (आई) को मिल जाता है। इस तथ्य का ज्ञान होते हुए भी सीमा विवाद के मुख्य मुद्दे का हल क्षेत्रीय नही निकाल पाये हैं।

सीमा विवाद—समस्त क्षेत्रीय दलो को पारस्परिक सीमा विवाद परेशान करता रहा है। जब कभी भी एकता के नाम पर क्षेत्रीय दल एक मंच पर एकत्रित हुए हैं तो मेघालय, नागालैण्ड तथा अरुणाचल प्रदेश ने असम पर

सीमा उल्लंघन का आरोप लगाया है। असम नागालैंड के बीच सीमा विवाद को लेकर आपस में हिंसात्मक झगड़े हुए हैं। सबसे प्रमुख झगड़ा जून, 1985 को मीरापाणी पर हुआ जब नागालैंड तथा असम की पुलिस के बीच सीमा के मुद्दे को लेकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में दोनों ओर से कई लोग मारे गये तथा सैकड़ो व्यक्ति हताहत हुए। इसी प्रकार 1979 मे असम-नागालैंड के बीच आपसी झगड़े हुए जब नागालैंड के हथियारयुक्त नागरिको ने, जो संभवतः नागालैंड की पुलिस के द्वारा अनुप्रेरित थे, असम के गांवों पर कई बार हमला किया। जिन गांवों पर आक्रमण किया वे असम के दक्षिणी भाग थे जैसे नामबोर, रेंनिगमा, तथा दिफू। दोनों के बीच विवाद 434 किलो मी. की सीमा को लेकर हुआ। नागालैंड ने सुंदरम कमीशन की सिफारिशो को मानने से साफ इन्कार कर दिया जिसने 1925 के नियमो का समर्थन किया था। नागालैंड का कहना है कि 1925 के नियमों को न लेकर सुंदरम कमीशन को 1867 के नियमों को नजर में रखकर अपनी सिफारिशें पेश करनी थी। आज भी उक्त मसले को लेकर दोनों के बीच भारी तनाव चल रहे हैं।

इसी प्रकार असम तथा अरुणाचल प्रदेश के बीच सीमा विवाद बड़े तनाव की स्थिति मे है। इस विवाद में अरुणाचल ने लगभग एक हजार कि. मी. की जमीन पर अपने अधिकार का दावा कियाहै जो असम को मान्य नही है। दोनों प्रान्तो के बीच एक और विवाद जुड़ जाने से तनाव और बढ़ गया है। वह विवाद सब- सिदी हाइडल प्रोजेक्ट को लेकर है जिसे असम के लखीमपुर में प्रारम्भ करना है जबकि अरुणाचल चाहता है कि उक्त प्रोजेक्ट उनके भूखण्ड मे शुरू हो। केन्द्र ने प्रोजेक्ट की स्वीकृति दे दी है क्योंकि अरुणाचल ने विरोध किया था।

इसके अतिरिक्त मिजोरम की 'वृहत मिजोरम' के निर्माण की मांग ने भी पारस्परिक सीमा विवाद को और आगे बढ़ाया है। यह भाग एम. एन. एफ. तथा पीपुल्स कोफ्रेंस ऑफ मिजोरम की ओर से प्रस्तुत की गई थी। एम. एन. एफ. के सत्ता में आ जाने के बाद से मांग में ढिलाई आई है परन्तु मांग को शान्त नही माना जा सकता। मिजोरम के मुख्यमन्त्री यह भी जानते हैं कि उनकी लोकप्रियता 'वृहद् मिजोरम' के मुद्दे को जब तब उठाने से ही बनी रह सकती है, लेकिन जब [illegible] आती है तो पीपुल्स कान्फ्रेन्स ऑफ मिजोरम उसको लाभ [illegible] लाने का प्रयास करते रहते हैं।

यद्यपि समस्त क्षेत्रीय दलों में एक समान दृष्टिकोण तथा विचारधारा न होते हुए भी उनको एकता के सूत्र मे बंधने का अच्छा अवसर मिला जिसके आधार पर वर्षों से वंचित रहे उन लाभों को प्राप्त करने के लिये वचनवद्ध हो गये। असम तथा मिजोरम मे क्षेत्रीय दल की सरकार का बन जाना तथा मणिपुर, अरुणाचल, नागालैंड तथा त्रिपुरा में सशक्त विरोधी क्षेत्रीय दल के होने से स्पष्ट होने लगा कि क्षेत्रीय दलों के बीच एकता तथा अखंडता बनी रहेगी। लेकिन अच्छे उद्देश्य तथा प्रोग्रामों को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करने की प्रक्रिया मे व्यवधान न आये यह भी सम्भव नही है। उल्लेखनीय है कि असम तथा त्रिपुरा को छोड़कर राष्ट्रीय स्तर के विरोधी दलो की भूमिका शेष उत्तर-पूर्वी क्षेत्रो मे नगन्य सी रह गई। मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड तथा मणिपुर के प्रान्तो मे यद्यपि कांग्रेस (आई) सरकार बनाने मे समर्थ तो हुई लेकिन उसने कुछ तो अन्तः पारस्परिक विरोध का लाभ उठाया और कुछ केन्द्र के सहारे जोड़ तोड के माध्यम से सफलता प्राप्त की। इस मत में कितनी विश्वसनीयता है, यह तो नही कहा जा सकता परन्तु व्यवस्था सिद्धान्त का व्यावहारिक पक्ष हर स्थान पर इन्ही परिणामों को हमेशा प्रदान करता रहा है। उदाहरण के लिये मेघालय मे कांग्रेस (आई) तथा ए. पी. एच. सी. एल का गठबंधन तथा नागालैंड में कांग्रेस (आई) व एन. एन. ओ के तालमेल ने सत्ता मे ठहरे रहने के लिये सत्ता पक्ष को मदद दी। साथ में केन्द्र के द्वारा पहाड़ी क्षेत्रो को थोक मे अनाप-सनाप आर्थिक सहायता ने भी कांग्रेस (आई) को सत्ता मे ठहरे रहने मे सहायता दी है। कांग्रेस (आई) की राजनीतिक चतुराई वरकरार रही कि मेघालय, नागालैंड तथा अरुणाचल के बीच सीमा विवाद हमेशा जिन्दा रहे जिसका लाभ उसे निरन्तर मिलता रहा।

लेकिन पिछले अनुभवों ने यह बात तो क्षेत्रीय दलों को अवश्य सिखा दी है कि वे बिना कांग्रेस (आई) से गठबंठन किये बिना अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कायम रख सकते हैं। साथ मे क्षेत्रीय दलो के बीच एक उलझन परेशान किये हुए है कि पारस्परिक सीमा विवाद का विकल्प क्या है जिसके फलस्वरूप यथार्थ लाभ कांग्रेस (आई) को मिल जाता है। इस तथ्य का ज्ञान होते हुए भी सीमा विवाद के मुख्य मुद्दे का हल क्षेत्रीय नही निकाल पाये हैं।

सीमा विवाद—समस्त क्षेत्रीय दलों को पारस्परिक सीमा विवाद परेशान करता रहा है। जब कभी भी एकता के नाम पर क्षेत्रीय दल एक मच पर एकत्रित हुए हैं तो मेघालय, नागालैण्ड तथा अरुणाचल प्रदेश ने असम पर

सीमा उल्लंघन का आरोप लगाया है। असम नागालैंड के बीच सीमा विवाद को लेकर आपस में हिंसात्मक झगड़े हुए हैं। सबसे प्रमुख झगड़ा जून, 1985 को मीरापाणी पर हुआ जब नागालैंड तथा असम की पुलिस के बीच सीमा के मुद्दे को लेकर युद्ध हुआ। इस युद्ध मे दोनों ओर से कई लोग मारे गये तथा सैकड़ों व्यक्ति हताहत हुए। इसी प्रकार 1979 में असम-नागालैंड के बीच आपसी झगड़े हुए जब नागालैंड के हथियारयुक्त नागरिको ने, जो संभवतः नागालैंड की पुलिस के द्वारा अनुप्रेरित थे, असम के गावों पर कई बार हमला किया। जिन गांवों पर आक्रमण किया वे असम के दक्षिणी भाग थे जैसे नामबोर, रंगिगमा, तथा दिफू। दोनों के बीच विवाद 434 किलो मी. की सीमा को लेकर हुआ। नागालैंड ने सुंदरम कमीशन की सिफारिशों को मानने से साफ इन्कार कर दिया जिसने 1925 के नियमों का समर्थन किया था। नागालैंड का कहना है कि 1925 के नियमों को न लेकर सुंदरम कमीशन को 1867 के नियमों को नजर में रखकर अपनी सिफारिशें पेश करनी थी। आज भी उक्त मसले को लेकर दोनो के बीच भारी तनाव चल रहे हैं।

इसी प्रकार असम तथा अरुणाचल प्रदेश के बीच सीमा विवाद बड़े तनाव की स्थिति मे है। इस विवाद में अरुणाचल ने लगभग एक हजार कि. मी. की जमीन पर अपने अधिकार का दावा कियाहै जो असम को मान्य नही है। दोनों प्रान्तों के बीच एक और विवाद जुड़ जाने से तनाव और बढ़ गया है। वह विवाद सब- सिंदी हाइडल प्रोजेक्ट को लेकर है जिसे असम के लखीमपुर में प्रारम्भ करना है जबकि अरुणाचल चाहता है कि उक्त प्रोजेक्ट उनके भूखण्ड में शुरू हो। केन्द्र ने प्रोजेक्ट की स्वीकृति दे दी है क्योंकि अरुणाचल ने विरोध किया था।

इसके अतिरिक्त मिजोरम की 'वृहत मिजोरम' के निर्माण की मांग ने भी पारस्परिक सीमा विवाद को और आगे बढ़ाया है। यह भाग एम. एन. एफ. तथा पीपुल्स कोफ्रेंस ऑफ मिजोरम की ओर से प्रस्तुत की गई थी। एम. एन. एफ. के सत्ता में आ जाने के वाद से मांग में ढिलाई आई है परन्तु मांग को शान्त नहीं माना जा सकता। मिजोरम के मुख्यमन्त्री यह भी जानते हैं कि उनकी लोकप्रियता 'वृहद् मिजोरम' के मुद्दे को जब तब उठाने से ही बनी रह सकती है, लेकिन जब उक्त मांग में [illegible] आती है तो पीपुल्स कान्फेन्स ऑफ मिजोरम उसका लाभ लेकर [illegible] लाने का प्रयास करते रहते हैं।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि नागालैंड, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश तथा मिजोरम के क्षेत्रीय दलों को अपने-अपने प्रान्तों में लोकप्रियता नही मिल पायेगी। यदि वे सभी असम से कोई भी समझौता करते हैं। यहाँ तक कि कांग्रेस (आई) भी इन प्रान्तों मे असम के साथ सीमा विवाद पर समझौता करने के लिए बाध्य नही हो सकती क्योंकि ऐसा करने पर उसे वहाँ के विद्यार्थी तथा युवको को नाराज करना होगा जिसका खतरा वह मोल लेने के लिये तैयार नही। उल्लेखनीय है कि जब 1985 मे असम-नागालैंड सीमा विवाद युद्ध हुआ था तब नागा स्टूडेन्ट फैडरेशन ने आसाम के आक्रमण की कठोर आलोचना की थी तथा नागालैंड सरकार को उनके साहसी कार्यों के लिए बधाई दी थी।

उक्त पारस्परिक सीमा विवादों के आधार पर एक सभावना अवश्य व्यक्त की जा सकती है कि उत्तर-पूर्वी सीमा से सम्बन्धित क्षेत्रीय दलों की एकता का भाग्य अभी आशावान नहीं है। चूंकि पारस्परिक सीमा विवाद का सम्बन्ध ऐतिहासिक है तथा आपस मे बड़े हितों की पूर्ति के लिये छोटे हितों को त्यागने का ज्ञान नही है ऐसी स्थिति में एकता के सूत्र मे फिलहाल बंधने की कोई उम्मीद नही है।

जब तक समस्त पहाड़ी क्षेत्रो के लोगो में व्यापकता का भाव जागृत नही होगा, संघर्ष निरन्तर चलते रहेगे तथा केन्द्र हमेशा लाभ की स्थिति मे मे रहेगा।

□□

तिब्बत और भारत

आज लगभग 28 वर्ष हो रहे हैं, दलाई लामा अपने देश को छोड़कर भारत में शरण लेने आये थे। वे स्वयं अकेले नहीं थे। उनके साथ लगभग एक लाख अनुयायी समर्थक थे जिन्होंने अपने जीवन को दलाईलामा के साथ निर्वाह करने का संकल्प किया था। ऐसा कहा जाता है कि दलाई लामा के शरण देने से चीन का रुख भारत के प्रति बदल गया था और 1962 का युद्ध उसी का परिणाम था।

इतने लम्बे अन्तराल के दौरान तिब्बत में क्या हुआ, यह एक लम्बी कहानी है जिसका जिक्र करना अधिक उचित नही है। केवल यह कहना ही पर्याप्त है कि माओ व चाओ के प्रशासन ने तिब्बतियों को न केवल यातनाएँ ही दीं अपितु उनके धर्म व संस्कृति पर पर्याप्त कुठाराघात किया। यद्यपि भारत में रह रहे धार्मिक नेता दलाई लामा चीन के प्रशासन से निरन्तर एक प्रार्थी के रूप मे तिब्बत के स्वतन्त्रता की माँग करते रहे थे लेकिन उस दिशा में कोई सक्रिय कार्य किया गया हो या ऐसा कुछ भी दिखाई दिया। धार्मिक नेता दलाईलामा की स्वयं की भी सीमाएँ थीं जिनसे वे नैतिक दृष्टि से बंधे हुए थे। भारत सरकार ने दलाई लामा को एक लाख शरणार्थियों के साथ तभी शरण दी थी जब उनसे यह साफ कह दिया था कि वे भारत की भूमि से कोई राजनीतिक कार्यवाही नही करेंगे।

अमरीकी सीनेट का रुख:—6 अक्टूबर, 1987 को अमरीकी सीनेट ने एक संशोधन पारित किया जिसमें चीन के द्वारा किये गये मानवीय अधिकारों के उल्लंघन की कटु आलोचना की गई। संशोधन को सदन मे पेश करने वाले सीनेटर्स थे जैसी हैल्मस क्लाई बौर्न पैल। संशोधन 98-0 के मतों से पास हुआ।

न केवल आवाज उठाई अपितु हजारों की संख्या में एक प्रदर्शन किया तथा चीन के अत्याचारी प्रशासन के खिलाफ नारे लगाये जिसके परिणामस्वरूप 5 धार्मिक कार्यकर्त्ताओं की मृत्यु हो गई तथा सैंकड़ों घायल हो गए। इस प्रदर्शन को हजारों विदेशियों ने अपनी आंखों से देखा और अपनी प्रतिक्रियाएँ अपने तरीके से विश्व में समाचार पत्रों के माध्यम से व्यक्त कीं।

यद्यपि 1980 से चीन की तिब्बत के प्रति नीति में परिवर्तन दिखाई दिया है। माओ और चाओ के अन्यायपूर्ण प्रशासन को नये नेतृत्व ने उदार-पूर्वक स्वीकार भी किया है। अतीत में जो कुछ भी तिब्बत के धार्मिक लोगों पर कठोरता से व्यवहार हुआ उसकी क्षति पूर्ति के लिए हजारों रुपये तिब्बत में नष्ट हुए मठों के पुनर्निर्माण के लिए खर्च किये जा चुके हैं। तिब्बत के विकास के लिए चीन का नया नेतृत्व बहुत कुछ कर रहा है। चीन के अधिकारी वर्ग को तिब्बती भाषा सीखने के लिए आवश्यक कर दिया है।

पिछले माह चीन की सरकार ने मिलियन डालर तिब्बत के आर्थिक विकास के लिए स्वीकृत किये हैं। तिब्बत को नि.सदेह नई नीतियों से लाभ हुआ है। तिब्बत मे 6000 नष्ट हुए मठों का निर्माण होना शुभ चिन्ह अवश्य है लेकिन तिब्बती संस्कृति तथा धर्म की सुरक्षा के लिए बहुत कुछ करना बाकी है। शायद चीन की नई व उदार नीति ने धार्मिक तिब्बतियों को एक बार फिर से विद्रोह का झंडा खड़ा करने के लिए प्रोत्साहित किया

एक अमरीकी वकील का कहना था कि पारित किया गया बिल यदि राष्ट्रपति अपनी अनुमति दे दें तो यह राष्ट्र का कानून बन जायेगा। यदि अनुमति नहीं देते हैं तो एक बार फिर से संयुक्त रूप से दोनों सदनों के समक्ष रखा जायेगा। यदि दूसरी सुनवाई में दोनों सदनों में स्वीकृति दे दी तो राष्ट्रपति की अनुमति न भी हो तो भी यह विधेयक कानून हो जायेगा। विधेयक का सार निम्न रूप से रखा जा सकता है—

(i) अमरीका के चीन से सम्बन्ध का स्वरूप अब इस प्रकार का होगा जो तिब्बती लोगों के साथ व्यवहार का निर्धारण करेगा।

(ii) राष्ट्रपति को दलाई लामा से मिलकर तिब्बतीवासियों की समस्या को शान्तिपूर्वक हल करने में प्रयत्न करने होंगे।

(iii) अमरीका को चीन से यह आग्रह करना चाहिए कि वह दलाई लामा के साथ बात करे तथा तिब्बत के बारे में भावी दर्जा क्या हो उसके सिलसिले में भी सौहार्द्रपूर्ण वातावरण में वार्तालाप करे।

(iv) अमरीका राज्य सचिव के जरिये तिब्बती लोगों के अधिकारों तथा उनके अस्तित्व के बारे में ध्यान आकर्षित करे। तिब्बती धर्म तथा संस्कृति की रक्षा के लिए भी प्रयास किया जाये।

(v) कांग्रेस का प्रतिनिधि मण्डल तिब्बत जाकर (खाय और आमदो भी) यह जानकारी प्राप्त करें कि तिब्बतियों की वास्तविक समस्या क्या है और उसका कैसे समाधान हो सकता है।

(vi) राष्ट्रपति चीन में नियुक्त राजदूत को निर्देश दे कि वे भारत के साथ मिलकर किस प्रकार समस्या का विकल्प ढूंढ़ सकते हैं।

यद्यपि अमरीकी सीनेट ने विधेयक के संशोधन के माध्यम से न केवल चीन की आलोचना की है अपितु तिब्बत के दर्जे को ऊंचा करने के लिए प्रयास की दिशा भी सन्निहित है। परन्तु कूटनीतिज्ञों की दृष्टि भी विचित्र ही होती है जिनका यह कहना है कि अमरीकी सीनेट ने चीन की आलोचना चीन की सहमति से की है। विश्व राजनीति में कोई भी बात किस आवरण में कही जाती है इसको भी पढ़ लेना एक ठोस पक्ष है।

एक ओर सीनेट के सदस्य बहुमत से तिब्बती लोगों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं और दूसरी ओर सरकारी बयानों में चीन के प्रति वही दृष्टिकोण है जो अमरीका के राष्ट्रीय हितों की पूर्ति करता है।

हाल ही में 27 सित., 87 को 1959 के बाद पहली बार तिब्बत के सीमा तथा धार्मिक नेताओं ने ल्हासा में अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए

न केवल आवाज उठाई अपितु हजारों की संख्या में एक प्रदर्शन किया तथा चीन के अत्याचारी प्रशासन के खिलाफ नारे लगाये जिसके परिणामस्वरूप 5 धार्मिक कार्यकर्त्ताओं की मृत्यु हो गई तथा सैकड़ों घायल हो गए। इस प्रदर्शन को हजारों विदेशियों ने अपनी आंखों से देखा और अपनी प्रतिक्रियाएँ अपने तरीके से विश्व में समाचार पत्रों के माध्यम से व्यक्त कीं।

यद्यपि 1980 से चीन की तिब्बत के प्रति नीति में परिवर्तन दिखाई दिया है। माओ और चाओ के अन्यायपूर्ण प्रशासन को नये नेतृत्व ने उदार-पूर्वक स्वीकार भी किया है। अतीत में जो कुछ भी तिब्बत के धार्मिक लोगों पर कठोरता से व्यवहार हुआ उसकी क्षति पूर्ति के लिए हजारों रुपये तिब्बत में नष्ट हुए मठों के पुनर्निर्माण के लिए खर्च किये जा चुके हैं। तिब्बत के विकास के लिए चीन का नया नेतृत्व बहुत कुछ कर रहा है। चीन के अधि-कारी वर्ग को तिब्बती भाषा सीखने के लिए आवश्यक कर दिया है।

पिछले माह चीन की सरकार ने मिलियन डालर तिब्बत के आर्थिक विकास के लिए स्वीकृत किये हैं। तिब्बत को निःसंदेह नई नीतियों से लाभ हुआ है। तिब्बत में 6000 नष्ट हुए मठों का निर्माण होना शुभ चिन्ह अवश्य है लेकिन तिब्बती संस्कृति तथा धर्म की सुरक्षा के लिए बहुत कुछ करना बाकी है। शायद चीन की नई व उदार नीति ने धार्मिक तिब्बतियों को एक बार फिर से विद्रोह का झंडा खड़ा करने के लिए प्रोत्साहित किया होगा। चीन की 'सांस्कृतिक क्रान्ति' (1966-76) ने तिब्बत के संपूर्ण समाज को बदल देने का अभियान शुरू किया था। लेकिन डैंग के नये नेतृत्व ने बुनि-यादी आदर्शों को ध्यान में रखकर पुरानी नीतियों मे परिवर्तन किया। डैंग तथा नई पीढ़ी के नये प्रशासक यह अच्छी तरह जानते हैं किसी भी धर्म या संस्कृति को लौकिक दृष्टि से नष्ट तो किया जा सकता है लेकिन उसकी आत्मा को नष्ट नहीं किया जा सकता। 28 वर्ष की दबी हुई भावनाएँ 27 सित., 87 को फिर से उठकर सामने आई। यह इसका ज्वलंत उदाहरण है।

विश्व की राजनीति

तिब्बत की समस्या को विश्व राजनीति के परिधि में रखकर ठीक प्रकार से समझा जा सकता है। विश्व के सभी बड़े देश दबी या खुली जबान से धार्मिक नेता दलाई लामा का समर्थन करते हैं परन्तु उनको वास्तविक अधिकार दिलाने मे सभी राष्ट्रों की विवशता है। यदि हम अपने प्यार से ही

चनें अर्थात भारत सरकार की नीति को ही ध्यान से देखें तो यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत चाहते हुए भी तिब्वत को एक स्वतन्त्र राष्ट्र का समर्थन नही दे सकता। उसकी विवशता यही है कि 1950 में भारत सरकार तिब्वत को चीन का अंग मान चुका है। अपने दिये हुए अभिव्यक्तियों को आज के सन्दर्भ में बदलने का साहस नहीं। भारत चीन के साथ संबंध बिगाड़ने की स्थिति में नहीं है। अमरीका-चीन की समीकरण भी तिब्वत के भविष्य के लिए कर्म के दृष्टिकोण से कुछ नहीं कर सकता। अमरीका की विदेश नीति के अन्तर्गत केवल तिब्वतियों के लिए सहानुभूति ही शेष है। 27 सितम्बर, 87 को ल्हासा में जो कुछ हुआ उसकी प्रतिक्रिया के रूप में अमरीका के समाचार पत्रों ने चीन की आलोचना की है तथा तिब्वती लोगों के प्रति सहानुभूति के शब्दों का प्रयोग किया है परन्तु इस दिशा में करने के नाम कुछ नही दिखाई देता। कहने का अर्थ यही है कि बड़े देशों की राजनीति में तिब्वतियों की ओर से यू एन. ओ. में कोई बोलने वाला नहीं।

सामान्य दृष्टि से तिब्वत की वर्तमान दयनीय स्थिति के लिये तत्कालीन राजनीतिज्ञ तथा निर्णयकर्ताओं को दोषी ठहराया जाता है। दोषी ठहराना आसान है लेकिन उसके लिए न्याययुक्त पक्षों को ढूंढना अधिक मुश्किल है। तत्कालीन परिस्थितियों का विश्लेषण करें तो लगता है कि ऐसा होना अनिवार्य बुराई थी लेकिन स्थगित कर पाना आसान नही थी नेहरू-पटेल के समीकरण को गौर से देखें तो तस्वीर स्पष्ट होती है कि नेहरू जी की परिधि में जो मामले थे वे एक मात्र निर्णयकर्ता थे और उनके दृष्टिकोण और दूरदर्शिता को आज के सन्दर्भ में टीका-टिप्पणी की जा सकती है लेकिन 'विवशता' को भी प्रशासन के अन्तर्गत स्थान देना होगा। भारत की समग्र पर्वतीय राज्यों के प्रति नीतियां भी कुछ इस प्रकार की थीं जिनका हल या समाधान राष्ट्रीय हितों के परिप्रेक्ष्य में दिखाई नही देता। आज भारत का तिब्वत के प्रति अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण विदेश नीति का अग भी है और साथ में राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा के अनिवार्य भी उचित व अनुचित का निर्णय किसी न किसी व्यवस्था से जोड़कर ही कर सकते हैं। जो नैतिकता की दृष्टि से ठीक लगता है वह राष्ट्रीय हितो की दृष्टि से उचित न हो। गांधीजी को कभी कभी इस सन्दर्भ मे जोड़ दिया जाता है और उनके कहे हुए वाक्यों को अधिकांश उद्धत कर देते हैं जो नैतिक दृष्टि से ठीक नही वह राजनीतिक दृष्टि से ठीक नही हो सकता"। गांधीजी के कुछ आदर्श व्यवस्था से स्वतन्त्र

अस्तित्व रखने वाले हैं इसलिए यह आम बात कह दी जाती है। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को संतुलन में रखने के लिये राजनीतिक दृष्टि ही अनिवार्य हो जाती है। 1947 के बाद से प्रशासकों पर चारों ओर से कितने दवाव थे, इसकी भी कल्पना करना जरूरी है। निर्णय देने से पहले समग्र दृष्टि का होना भी अति आवश्यक है।

'तिब्बत' के प्रति भारत सरकार आज सहानुभूति रख सकती है परन्तु चीन के सन्दर्भ में यह स्पष्ट नहीं कह सकती कि 'तिब्बत' एक स्वतन्त्र प्रदेश है। तिब्बत के लोग ही अपने तरीके से ही चीन से अपनी मांगें मनवाने में सक्षम होंगे। यह बात दूसरी है कि तिब्बतियों की अपने संघर्ष की शैली क्या होगी। अपने अस्तित्व को फिर से ऊपर लाने के लिए तिब्बती लोग स्वयं प्रयास करेंगे। कोई बाहरी हस्तक्षेप अधिक स्थायी नहीं हो सकता। बंगला देश की स्वतन्त्रता में अधिकांश क्रेम वहां के निवासियों का है जिन्होंने संघर्ष का जिहाद छेड़ दिया था, भारत तो केवल निमित्त मात्र था। यदि बंगालियों ने कटिबद्ध होकर संघर्ष का अभियान अपने हाथ में नही लिया होता तो भारत भी कुछ नहीं कर सकता था। तिब्बत के धार्मिक लोग बौद्ध धर्म के बुनियादी आदर्शं का अक्षरशः पालन कर रहे हैं। सहिष्णुता या अहिंसा का अर्थ आज के सन्दर्भ में कभी भी नही होता कि वे अन्याय के विरुद्ध अपनी आवाज को बुलन्द न करें। संघर्ष की शैली उन्हें स्वयं ढूंढनी होगी। तभी स्वतन्त्र तिब्बत का स्वप्न साकार हो सकता है।

निष्कर्ष

पिछले समस्त निबंधों में प्रयास किया गया है कि पर्वतीय राज्यों में भूटान के ऐतिहासिक अनुभव तथा राजनीतिक यथार्थ ने उसे वर्षों बाद आश्वस्त किया कि उसकी सीमा से जुड़े पर्वतीय क्षेत्रों की राजनीति ने उसे अपने राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर को उठाने में अधिक मदद नही दी। नैपाल तथा सिक्किम अपने राष्ट्रीय स्तर को ऊपर लाने में सतत प्रयत्नशील रहे तथा भूटान के साथ प्रतिस्पर्धा का भाव रखा। यही नहीं भारत की सीमा से जुड़े हिमालयी क्षेत्रों की भी अपने हितों मे संलग्न अपनी राजनीति में बराबर चलती रही। भूटान का नेपाल तथा सिक्किम से अपेक्षाकृत पिछड़ापन भी इसी राजनीति का परिणाम था। उल्लेखनीय है कि सिक्किम मे आर्थिक विकास का क्रम भूटान की तुलना में कई वर्ष पहले प्रारम्भ हो गया था। इस तथ्य को ध्यान में रखकर ही सिक्किम के चोगियाल (राजा) ने भारत सरकार से निरन्तर यही मांग की थी कि 'सिक्किम को भूटान के बराबर दर्जा प्रदान किया जाय'। यह बात दूसरी है कि उसका परिणाम किस ओर मुड गया। दूसरे शब्दों में समस्त पर्वतीय क्षेत्रों की राजनीति मात्र अपने हितों की पूर्ति करने तक सीमित रह गया था। भारत सरकार की नीति क्या

थी, यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्व की बात यह है कि तीनों पर्वतीय राज्यों ने पारस्परिक हितों की पूर्ति के लिये एकता के सूत्र में बंधकर कभी भी ऐसी योजना नहीं बनाई जिससे भारत पर सामूहिक रूप से एक दबाव पड़ता। यहां यह कहना अनुचित नही होगा कि पर्वतीय क्षेत्रों में एकता का भाव कभी जागृत ही नहीं हो पाया जिसके परिणाम स्वरूप भूटान उस राजनीति से अनभिज्ञ रहा जिसका उस पर निरन्तर प्रभाव रहा।

इसी प्रकार भारत से लगे हुए उत्तर-पूर्वी सीमा के पर्वतीय क्षेत्रों के बीच पारस्परिक समझ न होने के कारण पूर्वांचल के दल में दरार पड़ गई और एकता के प्रयास विफल हो गये। उत्तर-पूर्वी सीमा के पर्वतीय स्थानों पर रहने वाले के व्यक्तिगत तथा सामूहिक हितों में भिन्नता होने के कारण उन लोगों में एकता का भाव जागृत होते-होते रुक जाता है। कभी आर्थिक हितों को लेकर तो कभी सीमा विवाद को लेकर संघर्ष लगातार होते रहते हैं जिसमें व्यक्तियों की जानें भी चली जाती हैं। कहने का अर्थ यही है कि पर्वतीय क्षेत्र, चाहे भारत की सीमा में हों या उसके बाहर, उसकी भौगोलिक स्थिति कुछ इस प्रकार की है जिसके कारण बाहर तथा अन्दर के पर्वतीय स्थानों पर रहने वाले लोगों में एकीकरण की भावना का अंकुर फूट ही नहीं पाया है। अपनी-अपनी समस्याओं से इस प्रकार से उलझ गये हैं कि उनमें आपसी एकता का निर्माण होना सम्भव नही लगता। गोरखालैंड की समस्या अपने किस्म की अलग ही उभर कर आई है जिसमें नेपालियों ने विभिन्न स्थानों पर बसे नेपालियों को आह्वान किया है कि व्यवस्था उनके साथ वर्षों से अन्याय व अत्याचार करती आ रही है जिसके विरुद्ध कटिबद्ध होकर विरोध करना है। भूटान में बसे नेपालियों ने राजतन्त्रीय व्यवस्था के विरुद्ध 1950 से ही आन्दोलन कर रखा है। सिक्किम के अन्तिम भविष्य का निर्णय भी वहां के नेपालियों ने ही किया था। यह कहना पर्याप्त होगा कि पर्वतीय क्षेत्रों की एक दूसरे से गुथी राजनीति ने भूटान को यदा कदा भयभीत तथा सशंकित किया है। भूटान को बाहरी राजनीति ने उसे हमेशा भय तथा शंका की स्थिति में रखा जिसके परिणाम स्वरूप भूटान ने बाहरी देशों से अपने आप को अलग थलग रखा। भूटान पर्वतीय क्षेत्रों की राजनीति से अत्यधिक प्रभावित रहा। 1975 में सिक्किम की ऐतिहासिक घटना ने उसकी आँखें खोल दी और तब से ही भूटान अपने राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर को ऊँचा उठाने में भरसक प्रयत्न करता रहा है। आज तो भूटान के अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार से स्पष्ट लगने लगा है कि भूटान निसदेह भारत के सशक्त प्रभाव से लगभग बाहर निकल चुका है। ऐसा हर उठते हुए देश के साथ होता है—भूटान कोई अपवाद नही है।

□□□

है। भूटान को बाहरी राजनीती ने उसे हमेशा भय तथा शंका की स्थिति में रखा जिसके परिणाम स्वरूप भूटान ने बाहरी देशो से अपने आप को अलग थलग रखा। भूटान पर्वतीय क्षेत्रों की राजनीति से अत्यधिक प्रभावित रहा। 1975 में सिक्किम की ऐतिहासिक घटना ने उसकी आँखें खोल दी और तब से ही भूटान अपने राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर को ऊँचा उठाने में भरसक प्रयत्न करता रहा है। आज तो भूटान के अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार से स्पष्ट लगने लगा है कि भूटान निसंदेह भारत के सशक्त प्रभाव से लगभग बाहर निकल चुका है। ऐसा हर उठते हुए देश के साथ होता है–भूटान कोई अपवाद नहो है।

□□

परिशिष्ट 1.

गोरखालंड समस्या से सम्बन्धित प्रकाशित समाचारों के कुछ अंश (सभी प्रकाशित अंश विभिन्न समाचार पत्रों से लिये गये हैं। इसमें प्रमुख अंग्रेजी समाचार पत्र हैं—टाइम्स ऑफ इण्डिया, हिन्दुस्तान टाइम्स, स्टेट्समैन, इण्डियन एक्सप्रेस, पैट्रियट आदि।)

पश्चिमी बंगाल उन छपे हुए पर्चों को पढ़कर अधिक चिंतित है जिसमे 'गोरखालैंड' की मांग को जिस भाषा मे छापा है। पर्चे अंग्रेजी में छपे हैं और अंग्रेजी भाषा भी उच्चस्तरीय है जिसको पढकर संदेह होता है कि इतनी उच्चस्तरीय भाषा नेपाली आन्दोलनकारियों की नहीं हो सकती। यह भाषा या तो दिल्ली में तैयार हुई है या उन पढ़े-लिखे ईसाइयों के द्वारा तैयार की गई है जो प्रारम्भ से ही गोरखालैंड की मांग का समर्थन करते रहे हैं। पश्चिमी बंगाल प्रशासन को यह मालूम करना है कि उक्त पर्चे कहां से छपे हैं उससे सन्देह का समाधान हो पायेगा।

एक प्रकार के पर्चे का शीर्षक 'गोरखा डायरी' है जिसमें लिखा है कि गोरखा नेपालियों का किस प्रकार केन्द्रीय सरकार व पश्चिमी बंगाल सरकार शोषण करती रही है। पर्चे में यह भी लिखा हुआ है कि सरकार गोरखा सैनिकों को उत्तर-पूर्वी सीमा पर आन्दोलनों को दबाने व कुचलने के लिए प्रयोग करती है जिसके परिणामस्वरूप गोरखा सैनिको के दिल में घृणा पैदा हो गई है। यही नहीं सम्पूर्ण क्षेत्र में गोरखा नागरिकों के लिए जीवन मुश्किल हो गया है।

पर्चे में आगे लिखा है "क्या यही तरीका है गोरखाओं के साथ वर्ताव करने का?"

उक्त पर्चों के जवाब में पश्चिमी बंगाल सरकार ने अंग्रेजी व नेपाली भाषा में पर्चे छापने और गोरखा लोगों के बीच बाटने की योजना बनाई है जिससे वे लोग समझ सकें कि वामपंथी सरकार ने अब तक उनके लिए क्या किया है?

(2) प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने सिक्किम के मुख्यमंत्री श्री नर-बहादुर भंडारी को पूर्ण आश्वस्त किया कि उन्होंने उन निराधार आरोपों

पर कोई ध्यान नहीं दिया है। जो भंडारी पर यह कहकर लगाये गये हैं कि वो GNLF के आन्दोलन को बढ़ाने के लिए सहायता दे रहे हैं।

जिस समय भंडारी प्रधानमंत्री से मिले उस समय वे बड़े उत्तेजित थे और उसी उत्तेजना के भाव से जोर देकर कहा कि प्रधानमंत्री तुरंत एक जाँच समिति बैठाये और फैसला करें कि उक्त आरोपों में कुछ सत्यता है कि नहीं।

मुख्यमंत्री भंडारी ने पश्चिमी बंगाल के एक CPM सांसद के बारे में जिक्र करते हुए कहा कि उन्होंने उनके खिलाफ समाचार पत्रों में यह प्रकाशित किया है कि सिक्किम में ऐसे कैम्पों का आयोजन किया है जिसमे GNLF के आन्दोलन को और भी भड़काने की योजना बनाई गई है। क्या सिक्किम मे ऐसी कोई Central Agency नहीं है जो इस बात का ध्यान रखे कि सिक्किम मे क्या हो रहा है?

पत्रकारो से बातचीत करते हुए श्री भंडारी जी ने कहा कि "हमको दार्जिलिंग नही चाहिए। हम उसको प्राप्त करने की क्यों इच्छा करें? सिक्किम की जनसंख्या 3 लाख है और दार्जिलिंग की 14 लाख। हम भारत में मिल गये, लेकिन दार्जेलिंग मे मिल जाने का अर्थ होगा हमारा अस्तित्व लगभग समाप्त।"

भंडारी ने आगे कहा, "सिक्किम भारत का अंग है और एक पूर्ण राज्य है। दार्जिलिंग में शामिल होकर वे एक जिले का भाग नही बनना चाहेंगे। क्या मुझे राष्ट्रीय हितो की रक्षा नही करनी है?"

भंडारी ने अपनी बातचीत में यह भी कहा कि प्रधानमंत्री ने उनकी दो महत्वपूर्ण मांगो को स्वीकार करने के लिए आश्वासन दे दिया है। पहली मांग तो 30,000 नेपाली निवासियों की है जिनको कानूनी नागरिकता प्राप्त नही है और दूसरी नेपाली बोलने वाले लोगों के लिए विधानसभा में सीट का आरक्षण। भंडारी ने कहा कि उक्त दोनों ही मांगें शीघ्र ही स्वीकार कर ली जायेंगी।

(3) पश्चिमी बंगाल के मुख्यमंत्री ज्योति बसु ने कहा कि 'गोरखालैंड' का आन्दोलन जल्दी समाप्त होने वाला नही। आन्दोलन की छुटपुट घटनाओं से यह स्पष्ट जाहिर है कि GNLF धन व हथियारों के आधार पर एक लम्बी अवधि तक आन्दोलन चलायेंगे। इसलिए यह आवश्यक है कि ऐसे आन्दोलन के लिए सतर्कता से निवटा जाए और उसके लिए तैयारी भी की जाय।

पत्रकारों से बात करते हुए ज्योति बसु ने कहा कि GNLF के आन्दोलन के लिए धन कहां से आ रहा है, यह तो नही कहा जा सकता

लेकिन उनका घीशिंग से मिलने का कोई इरादा नहीं है जो 'राष्ट्र-विरोधी कार्यवाहियों' में जुटे हुए हैं और बाहरी शक्तियों से अपने आन्दोलन के लिए सहायता ले रहे हैं।

ज्योति बसु ने दार्जिलिंग की घटनाओं के बारे में केन्द्र को सूचना दे दी है और GNLF के आन्दोलन से निबटने के लिए अतिरिक्त पुलिस की सहायता मांगी है।

श्री बसु ने अपनी पार्टी (CPM) की नीति को स्पष्ट करते हुए कहा कि दार्जिलिंग को 'स्थानीय स्वायत्तता' प्रदान कर देनी चाहिये। चूंकि गोरखा लोग कबीले (Tribals) नहीं है इसलिए संविधान में उसी के अनुसार संशोधन होना चाहिए। श्री बसु ने यह भी कहा कि संविधान में 8वीं धारा में नेपालियों के लिये नेपाली भाषा को सम्मिलित कर लेना चाहिए।

मुख्यमंत्री बसु ने प्रेस से भी यह अनुरोध किया कि वह इस प्रकार के समाचार प्रकाशित न करें जिससे राज्य में अकारण उपद्रव हो और लोगों में आग भड़के।

(4) दार्जलिंग पहाड़ी क्षेत्र में एक नये प्रकार का विद्रोह उठ खड़ा हुआ है। वहां के ठेकेदारों ने जिला प्रशासकों को एक नोटिस में स्पष्ट कर दिया है कि स्थानीय समस्त ठेकेदार 9 सितम्बर, 1986 से रास्ता रोको 'आन्दोलन' प्रारम्भ कर देंगे यदि उनके बिलों का भुगतान नहीं किया गया।

विश्वस्त सूचनाओं के आधार पर यह कहा गया कि ठेकेदारों को भुगतान इसलिए नहीं हो पाया क्योंकि इंजिनियर्स हड़ताल पर चले गए थे जो बिलों का असली भुगतान करते थे।

(5) 13 सित०, 1986 'GNLF' के आंदोलनकारी नेताओं ने अचानक (बिना किसी घोषणा के) 'टिंबर रोको' आंदोलन शुरू कर दिया और GNLF के अध्यक्ष सुभाष घीशिंग ने कहा कि 'टिंबर रोको' कदम उनके आंदोलन का एक हिस्सा है। घीशिंग का कहना था कि वे मैदानी लोगों को पहाड़ी क्षेत्र में व्यापार नहीं करने देंगे और न पहाडी लोगों का शोषण बर्दास्त करेंगे। घीशिंग ने आगे कहा कि वर्षों से भ्रष्ट मैदानी व्यापारियों ने दार्जिलिंग तथा जलपायगुड़ी के जंगलों का गलत तरीके से शोषण किया जिसे भविष्य में नहीं होने देंगे। 'टिंबर रोको' आंदोलनकारी नेताओं ने टिंबर से भरे ट्रक को खाली करवा लिया।

उक्त आंदोलन के परिणामस्वरूप दार्जलिंग घाटी के पर्यटक होटल जो 'पूजा-मौसम' में भरे रहते थे, वे इस समय लगभग खाली हैं।

(6) दार्जलिग, कलिंगपोंग तथा कुरसींग (Kurseong) में जीवन अस्तव्यस्त रहा। एकदिन पहले सी० पी० एम० के कार्यकर्ताओं ने GNLF के आन्दोलनकारियों पर हिंसात्मक कार्यवाही की, उसके फलस्वरूप पहाडी क्षेत्रों में काम-काज ठप्प रहा।

घटनाओं के सिलसिले मे एक नया मोड़ दिखाई दिया वह यह कि लेप्चा नेपालियो के लोगों ने 'गोरखालैंड' की मांग का विरोध करने का निश्चय किया। लेप्चा नेपालियो का कहना है कि वे दार्जलिग के मूलनिवासी हैं और वे नही चाहते कि दार्जलिग को पश्चिमी बगाल से अलग कर दिया जाय। इस घटनाचक्र के मोड ने साम्प्रदायिक तनाव को जन्म दिया है। इस प्रकार का तनाव कलिगपोंग मे भी घटित होने की सभावना है क्योकि कलिगपोग में लेप्चा नेपाली अधिक सख्या मे हैं। लेप्चा नेपालियो के एक प्रतिक्रियात्मक कार्यवाही से सिक्किम के लेप्चा नेपालियो पर प्रभाव पड़ने का आशा है।

(7) पश्चिमी बगाल कांग्रेस विधायक दल की कमेटी दो घटे विमर्श करने के बाद भी यह निर्णय नही कर पाई कि क्या 'गोरखालैंड' की म. . की आलोचना करनी चाहिये जब कि वे भी जानते हैं कि इस प्रकार की माग राष्ट्र विरोधी है। इस प्रकार का प्रस्ताव प्रान्तीय विधान मे रखा जा चुका है। कांग्रेस विधायक दल ने इसलिए भी अभी आलोचना नही की है क्योंकि प्रधानमत्री राजीव गांधी ने अपने बयान में यह स्पष्ट कहा था कि **गोरखालंड की मांग किसी भी प्रकार से** राष्ट्रविरोधी नही है। परन्तु कांग्रेस प्रदेश कमेटी के अध्यक्ष श्री प्रियरंजनदास मुंशी ने उस प्रस्ताव पर अपने हस्ताक्षर कर दिये जो 'गोरखालैंड' आन्दोलन को राष्ट्रविरोधी घोषित कर रहा था। श्री दास मुंशी के हस्ताक्षर करने में अन्य कांग्रेसी विधायकों ने उनको आड़े हाथ लिया और कहा कि उन्होंने प्रस्ताव पर अपने हस्ताक्षर बिना केन्द्र के संकेत प्राप्त किए क्यों किये।

मुंशी ने इस बात का खंडन करते हुए कहा कि उन्होने उन विधायको को किसी प्रकार से गुमराह नही किया है। अपना स्पष्टीकरण देते हुए कहा कि 'गोरखालैंड' की समस्या के बारे मे श्री अर्जुनसिंह से खुलासा बात कर ली थी तथा श्री बूटासिंह ने भी उन्हे सर्वदलीय समिति की बैठक में शामिल होने के लिए अनुमति दे दी थी। श्री दास मुंशी ने आगे यह भी कहा कि वे प्रधानमन्त्री राजीव गांधी की राय तथा संभावित बयानों के बारे में

पूर्णतया अनभिज्ञ थे। कांग्रेस विधायक दल के मुख्य सचेतक श्री सुब्रत मुखर्जी श्री मुंशी के अधिक आलोचक लगे।

श्री दास मुंशी ने अपनी राय को दुहराते हुए पुनः वही बात कही कि 'GNLF' का आन्दोलन राष्ट्र विरोधी है। यह जानते हुए कि प्रधानमंत्री की राय उससे विपरीत है। दास मुंशी ने अपने बयान में यह भी कहा कि उन्हे पहले ही धमकी मिल चुकी है कि अगले चुनाव में कांग्रेस सीट नहीं मिलेगी।

(7) गोरखालैंड से आन्दोलन के बारे में निम्न विभिन्न संदेह प्रकाशित किए गये।

1. गोरखालैंड की मांग के पीछे बाहरी शक्तियों का हाथ है विशेष रूप से चीन।
2. सुभाष घीशिंग ने अपनी मांग को पूरा होने के लिए चीन, नेपाल पाकिस्तान पत्र भेजे हैं। यहां तक संदेह है कि उसने पत्र इंग्लैंड तथा अमरीका भी भेजे है जो राष्ट्रविरोधी हरकत है।
3. ऐसा अनुमान है कि गोरखा आन्दोलन का लाभ नेपाल के उठता हुआ बुर्जुआ वर्ग ले रहा है। नेपाल का उठता हुआ बुर्जुआ वर्ग गोरखा आन्दोलन का प्रयोग इसलिए भी कर रहे हैं क्योंकि वहां भारतीय व्यापारी वर्ग जिसने बाजार को पूर्णतया नियंत्रण कर रखा है उनके सामने कमजोर पड़ते हैं।

. नेपाली, बुर्जुआ वर्ग तथा भारतीय बुर्जुआ वर्ग मे एक निरन्तर संघर्ष है।

(8) सुभाष घीशिंग गोरखालैंड के आन्दोलन को निरन्तर रूप से चलाने में अब असमर्थ पाते हैं। उनके नेतृत्व की शक्ति धीरे-धीरे कम होती जा रही है। अपने सशक्त समर्थकों पर नियंत्रण ढीला पड़ रहा है। आन्दोलन के समर्थकों के बीच संघर्ष पैदा हो गया है जिसके फलस्वरूप लोग दो भागों में विभाजित हो गये है। एक ओर उग्रवादी नेता जिनकी मात्र एक ही मांग है कि 'गोरखालैंड' एक अलग से प्रान्त हो और केन्द्र से समझौता करने को तैयार नहीं। दूसरी ओर घीशिंग के समर्थक है जो धीरे-धीरे कम होते जा रहे है, केन्द्र से किसी ठोस हल की तलाश में हैं वे उग्रवादी समर्थक जिनका अत्यधिक प्रभाव कलिमपोंग, मिरिक (Mirick) तथा अन्य स्थानों पर अधिक है। घीशिंग ने सार्वजनिक बयानों मे यह स्वीकार किया

है कि वे अपना प्रभाव धीरे-धीरे खो रहे हैं। उग्रवादियों का कहना है कि पहाड़ी क्षेत्र का दायरा सिलीगुड़ी तथा अन्य द्वारों तक बढ़ाना है। उनकी यह धारणा है कि अपनी मांगों की पूर्ति के लिए एक ही रास्ता है वह यह कि उन्हें अपनी शक्ति बढ़ानी है।

(9) सुभाष घीशिंग के अतिरिक्त और भी महत्वपूर्ण नेता हैं जिनमें से कुछ तो निरन्तर आन्दोलन में सक्रिय हैं और कुछ उसमें से मारे गये।

आर. पी. वधवा, सी. के. प्रधान, छितेन शेरपा, (छात्र सभा), एन. डी. मोक्तन, के. बी. राय, निर्मल खालिंग, बी. बी. गुरंग तथा रुद्रकुमार प्रधान, महिलाओं में श्रीमती इन्द्रकला प्रधान जो अब तक फरार है। आर. पी. वधवा (रामप्रसाद वधवा) को सभी आक्रमणों के पीछे मास्टर माइंड कहा जाता है सीक्योरिटी फोर्सेस्, पर जितने भी आक्रमण हुए उसमें श्री वधवा की सक्रिय भूमिका रही। वधवा इस समय नेपाल में बताये जाते हैं। वधवा अवकाश प्राप्त नेवी आफीसर रह चुके हैं जो 1930 में थे। 1982 तथा 1986 के बीच दो बार गिरफ्तार भी किये गये जो कि 'चुनाव बहिष्कार' का मामला था। लेकिन दोनों बार उनको रिहा कर दिया गया। औपचारिक दृष्टि से इन्हें गोरखा आन्दोलन फ्रन्ट से निकाल दिया गया है। 9 फरवरी, 1987 को मिरिक पुलिस स्टेशन तथा आर्मरी पर आक्रमण करने का दोषी वधवा को ठहराया गया था। तीन सुरक्षा सैनिकों की हत्या के दोषी भी वधवा हैं जिनकी पुलिस को तलाश है।

ऐसा कहा जाता है कि वधवा गुरिल्ला ट्रेनिंग केम्प का संचालन कर रहे हैं जिसका केन्द्र नेपाल के इस्लाम तथा लातरा के जिले में है। वधवा श्री हांडा (डी. आई. जी) पर आक्रमण करने के दोषी ठहराये गये थे।

उक्त घटनाओं के बाद घीशिंग ने घोषणा की कि वधवा अकेले ही काम कर रहे हैं तथा वधवा का हांडा पर आक्रमण सिर्फ व्यक्तिगत मतभेदों का परिणाम था और इनका आन्दोलन से कोई संबन्ध नहीं है।

सी. के प्रधान आन्दोलन से संबंधित कलिंगपोंग इकाई के संयोजक कहे जाते हैं। लगभग 35 वर्ष की उम्र है तथा उनको कोपरेटिव बैंक से बर्खास्त कर दिया गया था क्योंकि उन्होंने धन का गैरकानूनी दुरुपयोग किया था। प्रधान एक अच्छे वक्ता है तथा अपने भाषण के माध्यम से भीड़ को अपने समर्थन मे बहा ले जाने की क्षमता है। प्रधान अपने साथ हमेशा कुछ अंगरक्षक भी रखते हैं जिनमें चार महिलाएं भी हैं। कलिंगपोंग के मेलाग्राउन्ड पर प्रधान ने ही भीड़ का नेतृत्व किया था जहां भारत-नेपाल

संधि (1950) को जलाने का आह्वान था। यह प्रदर्शन काफी उग्र हो गया था जिसने पुलिस कर्मचारियों पर प्रहार भी किया था। यहाँ पुलिस फाइरिंग से 18 व्यक्तियों की मृत्यु भी हुई थी जिसमें आधी महिलाएँ थीं। इस प्रदर्शन में एक पुलिस जवान की मृत्यु हो गई थी तथा कमाल मजमूदार (डी. आई. जी. सी. आई. डी.) गंभीर रूप से घायल हो गये थे। कहा जाता है कि इस समय प्रधान गंगटोक (सिक्किम) में है और वहाँ से अपनी रणनीति का संचालन कर रहे हैं।

छितेन शेरपा लगभग 40 वर्ष से ऊपर हैं और नागालैंड के निवासी हैं। शेरपा नागालैंड के पूर्व मुख्यमंत्री के अंगरक्षक भी रह चुके हैं। शेरपा को भी श्री हाडा (डी आई जी) पर आक्रमण करने का दोषी ठहराया गया है।

बी बी. गुरुंग लगभग 50 से ऊपर हैं। एक कुशल पैराट्रूपर्स हैं जिन्होंने वर्मा युद्ध में सक्रिय भूमिका निभाई थी। गुरुंग एक नाटकीय तरीके से कवि का आवरण लिए (1947) माइकल मधुसूदन के रूप में अपने आपको दूसरों के सामने प्रस्तुत करते रहे। इसके बाद गुरुंग पूर्वी पाकिस्तान चले गये। बाद में एक तिब्बती महिला के साथ शादी कर तिब्बत मे रहे। तिब्बत के बाद भारत मे पुनःप्रकट हुए। गुरुंग एक प्राइवेट इन्श्योरेंस कम्पनी में फील्ड-एजेन्ट रहे और तब तक काम करते रहे जब तक 1985 मे गोरखा आन्दोलन में शामिल नही हो गये।

इन्द्रकला प्रधान (35 वर्ष) जो अभी फरार हैं। ये टरवुल वॉइज हाई स्कूल में अध्यापन का काम कर चुकी हैं। गोरखा आन्दोलन की सचिव हैं तथा रुद्र कुमार प्रधान की पत्नी हैं।

□□

सिचुला की सन्धि, 1865

अनुच्छेद 1—ब्रिटिश सरकार और भूटान सरकार के मध्य में अब से चिरस्थायी शान्ति और मित्रता रहेगी।

अनुच्छेद 2—क्योंकि भूटान सरकार ने बारम्बार आक्रमण किए और बदले में हरजाना देने से इन्कार कर दिया; और क्योंकि सपरिषद् महामहिम गवर्नर जनरल ने जिन अधिकारियों को दोनों राज्यों के मध्य वर्तमान मतभेदों का सौहार्द्रपूर्ण समायोजन प्राप्त करने के प्रयोजन से भेजा था, उनके साथ भी अपमानजनक व्यवहार किया गया। अतः ब्रिटिश सरकार सशस्त्र सेना की सहायता से सम्पूर्ण बंगाल दुअर्स-क्षेत्र और भूटान में प्रवेश करने वाले दर्रों की रक्षक कुछेक पहाड़ी चौकियों को जीत लेने के लिए विवश हो गई और चूंकि अब भूटान सरकार ने अपने पिछले दुराचरण पर खेद प्रकट किया है तथा ब्रिटिश सरकार के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा जाहिर की है, अतः एतद् द्वारा यह तय किया जाता है कि रंगपुर-जिला, कूचविहार और असम की सीमा से लगा हुआ वह सम्पूर्ण इलाका जो अठारह-दुअर्स के नाम से प्रसिद्ध है तथा उसके साथ-साथ अम्बारी फालकोटा ताल्लुका एवं तीस्ता नदी के बाँये तट पर स्थित पर्वतीय प्रदेश भूटान सरकार द्वारा चिरकाल के लिए ब्रिटिश सरकार को अर्पित किया जाता है। तीस्ता नदी के बाँये तट का पर्वतीय प्रदेश तथा अम्बारी फालकोटा तालुक्का उस सीमा तक ही दिया जायेगा जो कि इसी काम के लिए नियुक्त किए गए ब्रिटिश आयुक्त द्वारा निर्धारित की जाएगी।

अनुच्छेद 3—भूटान सरकार इस सन्धि द्वारा यह स्वीकार करती है कि वह उन तमाम ब्रिटिश नागरिकों तथा उनके साथ-साथ सिक्किम व कूच-बिहार के सरदारों के उन नागरिकों को भी समर्पित कर देगी जो कि इस समय भूटान में अपनी इच्छा के विरुद्ध हैं; और वह इससे भी सहमत है कि ऐसे समस्त व्यक्तियों या किसी भी व्यक्ति की ब्रिटिश प्रदेश मे वापसी के दौरान उनकी राह मे कोई रुकावट खड़ी नही की जाएगी।

अनुच्छेद 4—भूटान सरकार ने इस सन्धि के अनुच्छेद 2 मे जिन प्रदेशों का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है, उनका अर्पण कर दिया है, कि उसने अपने भूतकालीन दुराचरण पर खेद प्रकट किया है, कि वह एतद् द्वारा भविष्य के लिए वचनबद्ध हो गई है कि सभी दुराशयी व्यक्तियों को ब्रिटिश

प्रदेश में, तथा सिक्किम या कूचविहार के राजाओं के प्रदेश में अपराध-कर्म करने से रोका जाएगा; तथा यह स्वीकार किया है कि उसके आदेशों की अवहेलना करते हुए इस प्रकार के जितने भी अपराध होंगे उन सबके लिए तत्काल पूर्ण हरजाना दिया जाएगा। इसलिए इसके बदले में ब्रिटिश सरकार इस बात पर राजी हो गई है कि भूटान सरकार को प्रतिवर्ष पचास हजार रुपयों के बराबर भत्ता देगी, उससे ज्यादा नहीं। इस भत्ता राशि का भुगतान जुंगपेन के पद से नीचे के पदाधिकारी को नहीं किया जाएगा तथा वह इस प्रयोजन से भूटान सरकार द्वारा प्रतिनियुक्त होगा और इसके अतिरिक्त एतद्द्वारा हम इसके प्रति भी सहमत हैं कि भुगतान निम्नलिखित प्रकार से किया जाय—

भूटान सरकार द्वारा सन्धि की शर्तों की पूर्ति किए जाने पर पच्चीस हजार रुपया (25,000 रुपया)।

प्रथम भुगतान के बाद आने वाली 10 जनवरी को पैंतीस हजार रुपया (35,000 रुपया)

आगामी 10 जनवरी को पैंतालीस हजार रुपया (45,000 रुपया)।

परवर्ती प्रत्येक 10 जनवरी को पचास हजार रुपया (50,000 रुपया)।

अनुच्छेद 5—यदि भूटान की ओर से दुर्व्यवहार किया गया अथवा वह अपनी प्रजा की ओर से होने वाले आक्रमणों को रोकने में असफल रहेगी अथवा कि यदि वह इस सन्धि के उपबन्धों का पालन नहीं करेगी तो उस स्थिति में ब्रिटिश सरकार स्वयं के इस अधिकार को सुरक्षित रखती है कि वह क्षतिपूर्ति राशि के पूर्ण अथवा आंशिक भुगतान को किसी भी समय स्थगित कर देगी।

अनुच्छेद 6—ब्रिटिश सरकार एतद्द्वारा सहमत है कि भूटान सरकार यदि 1854 के सप्तम अधिनियम के अन्तर्गत लिखित रूप से विधिवत् माग करेगी तो उन सभी भूटानी नागरिकों का अभ्यर्पण कर दिया जाएगा जिनके द्वारा ब्रिटिश अधिकार क्षेत्र में शरण ली गई है तथा जिन पर निम्नलिखित अपराध-कर्मों का दोषारोपण किया गया है। सन् 1854 के सप्तम अधिनियम की एक प्रतिलिपि भूटान सरकार को दे दी जाएगी। वे अपराध इस प्रकार हैं—हत्या, हत्या का प्रयत्न करना, बलात्कार, अपहरण, व्यक्तिगत भयंकर मारपीट, अंग-भंग करना, डकैती, ठगी, लूटमार या चोरी, मवेशियों की चोरी किसी के घर में सेंध मारकर घुसना तथा उसमें चोरी करना, आगजनी, किसी ग्राम, घर या कस्बे में आग लगा देना, जालसाजी करना या जाली दस्तावेज तैयार करना, प्रचलित सिक्कों के जैसे ही जाली सिक्के बनाना, जानबूझ कर

खोटे या जाली सिक्के जारी करना, झूठी कसम खाना, झूठी कसम दिलाना सार्वजनिक अधिकारियों या अन्य व्यक्तियों द्वारा गबन तथा उपरोक्त अपराधों में से किसी भी एक अपराध में सहायक होना।

अनुच्छेद 7—भूटान सरकार एतद्द्वारा सहमत है कि बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा अथवा उसके प्राधिकार के आधार पर विधिवत् मांग किये जाने पर वह उस किसी भी ब्रिटिश नागरिक का अभ्यर्पण कर देगी जिस पर कि पूर्वोक्त अनुच्छेद में वर्णित किसी भी अपराध का दोषारोपण किया गया है तथा जिसने भूटान सरकार के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आने वाले प्रदेश मे शरण ली है। इसके अलावा भूटानी सरकार भूटानी नागरिकों का भी यदि उन्होने उक्त अपराधों में से कोई सा भी अपराध ब्रिटिश भूमि पर किया है और तदुपरान्त भूटान में भाग आए हैं-अभ्यर्पण कर देगी; बशर्ते कि उनके अपराध का ऐसा साक्ष्य प्रस्तुत किया जाए जो कि जिस जिले में अपराध घटित हुआ हो उसके स्थानीय न्यायालय को सन्तुष्ट कर सके।

अनुच्छेद 8—भूटान सरकार एतद्द्वारा सहमति प्रकट करती है कि वह सिक्किम और कूचबिहार के राजाओ के विरुद्ध अपनी शिकायतों के तमाम कारणों को अथवा अपने विवादों को ब्रिटिश सरकार के विवाचन के लिए सुपुर्द करेगी एवं उसके द्वारा दिए निर्णय का पालन करेगी और ब्रिटिश सरकार भी एतद्द्वारा प्रतिज्ञा करती है कि वह ऐसे तमाम विवादो और शिकायतों के बारे में पता लगा कर उन पर न्याय की अपेक्षाओ के अनुरूप निर्णय देगी तथा इस बात पर जोर देगी कि सिक्किम और कूचबिहार के राजा भी उस निर्णय का पालन करें।

अनुच्छेद 9—दोनो सरकारों के बीच मुक्त व्यापार और वाणिज्य की व्यवस्था होगी। ब्रिटिश भू-भाग में निर्यातित की जाने वाली भूटानी वस्तुओ पर कोई शुल्क वसूल नही किया जाएगा और न ही भूटान सरकार भूटान में निर्यातित अथवा भूटान में से होकर गुजरने वाले ब्रिटिश माल से किसी भी प्रकार का शुल्क वसूल करेगी। ब्रिटिश भू-भाग में रहने वाले भूटानी नागरिको को ब्रिटिश नागरिकों के समान ही न्याय सुलभ होगा और इसी प्रकार से भूटान में रहने वाले ब्रिटिश नागरिकों को भूटान सरकार की जनता के समान ही न्याय सुलभ होगा।

अनुच्छेद 10—प्रस्तुत 10 अनुच्छेदों वाली यह सन्धि तारीख 11 नवम्बर 1865 को तदनुसार भूटिया वर्ष शिमलुंग के नवम् माह के 24 वें दिन को सिंचुला में की गई है। इस पर लेफ्टिनेंट कर्नल हरबर्ट ब्रूस सी.बी.

पुनाखा की सन्धि, 1910

क्योंकि दिनांक 11 नवम्बर, 1865 तद्नुरूप भूटानी वर्ष शिगलोंग के नवम् माह के 24 वें दिन को सिचुला में ब्रिटिश और भूटान सरकार के बीच सम्पन्न हुई सन्धि के चतुर्थ और अष्टम अनुच्छेद को संशोधित करना वांछनीय है अतः निम्नलिखित संशोधनों के प्रति एक ओर से तो सिक्किम के राजनीतिक अधिकारी श्री सी. ए. बेल सहमत हैं; उनके द्वारा सहमति इस आधार पर दी गई है कि परममान्य सर गिल्बर्ट जॉन इलियट-मुरे-किनिमोंड पी. सी., जी एम. एस. आई. ई, जी. सी. एम. जी., अर्ल आफ मिन्टो, वाइसराय और भारत के सपरिषद् गवर्नर जनरल ने उनमे सम्पूर्ण शक्तियां इसी आशय से निहित की थी। दूसरी तरफ से महामान्य सर उग्येन वान्चुक, के.सी. आई.ई. भूटान के महाराजा ने इसे स्वीकार किया है।

सन् 1965 की सिचुला-सन्धि के चतुर्थ अनुच्छेद मे निम्नलिखित परिवर्धन किया गया है :

ब्रिटिश सरकार ने तारीख 10 जनवरी, 1910 से भूटान-सरकार को दी जाने वाली वार्षिक भत्ता धनराशि को पचास हजार रुपयों (रु 50,000) से बढ़ाकर एक लाख रुपया (रु. 1,00,000) कर दिया है।

सन् 1865 की सिचुला-सन्धि के अष्टम अनुच्छेद को संशोधित कर दिया गया है; संशोधित अनुच्छेद इस प्रकार है :

भारत भूटान सन्धि 1949 Article 2

"ब्रिटिश सरकार विश्वास दिलाती है कि वह भूटान के आन्तरिक प्रशासन में हस्तक्षेप नहीं करेगी। अपनी ओर से भूटान सरकार यह मन्जूर करती है कि वह अपने विदेश-सम्बन्धो के मामले में ब्रिटिश सरकार की सलाह से मार्गदर्शन प्राप्त करेगी। कूचबिहार और सिक्किम के महाराजा के साथ [illegible] उत्पन्न होने पर अथवा उनके विरुद्ध शिकायत का कारण पैदा होने [illegible] मामले ब्रिटिश सरकार के विवाचन के लिए सुपुर्द किये जायेंगे। [illegible] इस तरह के विवादो का निपटारा न्यायिक अपेक्षाओ के अन-

एवं सम्दोजय देव जिम्पे तथा देमसेरेन्से दोनाई ने हुस्ताक्षर किये हैं तथा मुहर अंकित की है। सत्यांकन एक ओर तो महामहिम वाइसराय एवं गवर्नर जनरल द्वारा किया जायेगा तथा दूसरी ओर महामान्य देवराजा और धर्मराजा द्वारा किया जाएगा एवं इस तारीख से लगाकर एक महीने के भीतर सन्धि का उनके मध्य परस्पर आदान-प्रदान किया जाएगा।

एच० ब्रुस
लेफ्टिनेंट कर्नल
प्रमुख सिविल और राजनीतिक अधिकारी
देवनागरी में,
भूटानी भाषा में,

इस सन्धि को मेरे द्वारा कलकत्ता में 29 नवम्बर, 1865 को सत्यांकित किया गया।

दिनांक 25 जनवरी, 1866

जॉन लॉरेन्स
गवर्नर जनरल

पुनाखा की सन्धि, 1910

क्योंकि दिनांक 11 नवम्बर, 1865 तद्नुरूप भूटानी वर्ष शिगलांग के नवम् माह के 24 वें दिन को सिंचुला में ब्रिटिश और भूटान सरकार के बीच सम्पन्न हुई सन्धि के चतुर्थ और अष्टम अनुच्छेद को संशोधित करना वांछनीय है अतः निम्नलिखित संशोधनों के प्रति एक ओर से तो सिक्किम के राजनीतिक अधिकारी श्री सी. ए. बेल सहमत हैं; उनके द्वारा सहमति इस आधार पर दी गई है कि परममान्य सर गिल्बर्ट जॉन इलियट-मुरे-किनिमोंड पी. सी., जी एम. एस आई. ई, जी. सी. एम जी, अर्ल आफ मिन्टो, वाइ-सराय और भारत के सपरिषद् गवर्नर जनरल ने उनमे सम्पूर्ण शक्तियां इसी आशय से निहित की थी। दूसरी तरफ से महामान्य सर उग्येन वाग्चुक, के सी. आई.ई. भूटान के महाराजा ने इसे स्वीकार किया है।

सन् 1965 की सिंचुला-सन्धि के चतुर्थ अनुच्छेद मे निम्नलिखित परि-वर्धन किया गया है :

ब्रिटिश सरकार ने तारीख 10 जनवरी, 1910 से भूटान-सरकार को दी जाने वाली वार्षिक भत्ता धनराशि को पचास हजार रुपयों (रु 50,000) से बढ़ाकर एक लाख रुपया (रु. 1,00,000) कर दिया है।

सन् 1865 की सिंचुला-सन्धि के अष्टम अनुच्छेद को सशोधित कर दिया गया है; सशोधित अनुच्छेद इस प्रकार है :

भारत भूटान सन्धि 1949 Article 2

"ब्रिटिश सरकार विश्वास दिलाती है कि वह भूटान के आन्तरिक प्रशासन में हस्तक्षेप नही करेगी। अपनी ओर से भूटान सरकार यह मन्जूर करती है कि वह अपने विदेश-सम्बन्धो के मामले मे ब्रिटिश सरकार की सलाह से मार्गदर्शन प्राप्त करेगी। कूचबिहार और सिक्किम के महाराजा के साथ विवाद उत्पन्न होने पर अथवा उनके विरुद्ध शिकायत का कारण पैदा होने पर ऐसे मामले ब्रिटिश सरकार के विवाचन के लिए सुपुर्द किये जायेंगे। ब्रिटिश सरकार इस तरह के विवादों का निपटारा न्यायिक अपेक्षाओं के अनु-रूप करेगी तथा वह इस बात पर जोर देगी कि उसके निर्णयों का नामित महाराजाओं द्वारा अनुपालन किया जाय।"

पुनाखा, भूटान मे इसकी चार प्रतिया दिनांक 8 जनवरी, 1910 तद्-नुरूप भूटानी धरा-पक्षी (सा-जा) वर्ष के ग्यारहवें महीने की 27वीं तारीख को तैयार की गई।

सी. एल. बेल सिक्किम के
सिक्किम-स्थित राजनीतिक अधिकारी
राजनीतिक अधिकारी की मुद्रा
दिनांक 8 जनवरी, 1910

धर्मराजा की मुद्रा
महामान्य भूटान-नरेश की मुद्रा
तात्सांग लामाओं की मुद्रा
टांग्सा पेनलोप की मुद्रा
पारो पेनलोप की मुद्रा
जुंग ड्रौनिर की मुद्रा
थिम्बु जोंगपेन की मुद्रा
पुनाका जोंगपेन की मुद्रा
वाग्डु पोटांग जोंगपेन की मुद्रा
टाका पेनलोप की मुद्रा
देव जिम्पोन की मुद्रा

भारत का मिन्टो वाइसराय और गवर्नर-जनरल इस सन्धि को भारत के वाइसराय और सपरिषद् गवर्नर-जनरल ने फोर्ट विलियम नामक स्थान पर 24 मार्च, 1910 को सत्यांकित किया था।

एस. एच. बटलर
सचिव, विदेश-विभाग, भारत सरकार

राष्ट्रीय-सभा का संविधान
सभा-बैठकों के नियम-विनियम

---

*निम्नलिखित नियमों को आदेश के रूप में प्रसारित करते हुए महा-*गरिमामय नरेश को प्रसन्नता अनुभव होती है। इन नियमों का पालन राष्ट्रीय सभा के सदस्यों द्वारा किया जाता है (शाही सलाहकार परिषद् के सदस्यों से निर्मित)।

अपने इस सुहाने और आकर्षक देश का राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्र में नवोत्थान करना सभी देशवासियों का एक पवित्र कर्तव्य है। जब हमारा देश विकसित होगा तो हरेक जोंग और उसमें रहने वाली जनता भी सुखी और समृद्ध होगी।

हमारा संविधान शायद उतना बडा नहीं है जितने कि अन्य देशों के संविधान हैं। किन्तु क्योंकि जनता की जीवन-दशाओं के उत्थान और कल्याण को ध्यान में रखते हुए सभी सदस्यों ने जरूरी उपायों को हाथ में लेने के प्रति अपनी सहमति प्रकट की, अतः महागरिमामय ड्रुक ग्याल्पो ने कृपापूर्वक राष्ट्रीय-सभा की स्थापना की है।

कई बुद्धिजीवियों के परामर्श से किसी निर्णय (अपने देश की उन्नति के लिए) पर पहुँचना सदैव ही अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण है, बनिस्पत इसके कि सिर्फ एक व्यक्ति द्वारा एकान्त मे वह निर्णय किया जाय। ऐसा करना न सिर्फ समकालीन युग के लिए लाभदायक सिद्ध होगा अपितु इससे भावी पीढ़ियों को भी लाभ होगा, राष्ट्रीय-सभा की स्थापना इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर की गई है।

राष्ट्रीय सभा द्वारा लिये गए निर्णयों के अनुसार ही देश के प्रशासन का संचालन किया जायगा। ईश्वर की अनुकम्पा और हमारे पूर्ववर्ती शासकों द्वारा उठाए गए सही कदमों के परिणामस्वरूप हम अपने देश की स्वाधीनता और राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने में सफल रहे हैं। यद्यपि स्वाधीनता रत्न का परिरक्षण करने में तो हम सफल रहे हैं, लेकिन शिक्षा की कमी के कारण हम अभी भी पिछड़े हुए हैं। शैक्षणिक पिछड़ेपन के कारण हम बहुत अधिक उन्नति करने में असमर्थ रहे हैं।

शिक्षा मे तेज प्रगति के कारण विश्व के दूसरे देशों ने तेजी के साथ उन्नति की है। वर्तमान परिस्थितियों में हमें भी स्वयं को विकसित राष्ट्रों की

समकक्ष स्थिति [illegible] हो [illegible]। अतः हमें राष्ट्रीय विकास पर ज्यादा जोर देना चाहिए। [illegible] राष्ट्रीय विकास के लिए प्रयत्न करना ही हम सबका प्रमुख ध्येय एवं कर्तव्य होना चाहिए।

अतः सभी सदस्यों को देश की उन्नति के लिए संस्कृति, धार्मिक विरासत और अतीत की परम्पराओं को ध्यान में रखते हुए एकता और सहयोग की भावना के साथ काम करना चाहिए। हमें अपनी स्वार्थी मनोवृत्तियों को एक ओर ढकेल कर राष्ट्रीय निर्माण के कार्य के प्रति स्वयं को समर्पित कर देना चाहिए। हमे भूतकाल की भूलो से पाठ सीखना चाहिए। उपर्युक्त निर्देशक सिद्धान्तो को ध्यान मे रखते हुए 18 नियम-विनियमों का राष्ट्रीय-सभा द्वारा अनुसरण किया जाएगा।

नियम 1 : महागरिमामय नरेश द्वारा सरकारी कर्मचारियों में से शाही सलाहकार परिषद के सदस्य मनोनीत किये जाएँगे। बौद्ध भिक्षुओ के समूह द्वारा केन्द्रीय बौद्ध भिक्षु-संस्था मे से अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन किया जाएगा तथा जन-प्रतिनिधि जनता द्वारा निर्वाचित किये जायेंगे।

नियम 2 : शाही सलाहकार परिषद् के सदस्यो को महा गरिमामय द्वारा परिचय-पत्र दिए जाएँगे। बौद्ध-भिक्षु-समूह के सदस्यों को केन्द्रीय भिक्षु संस्था द्वारा परिचय-पत्र जारी किए जाएँगे। जन-प्रतिनिधियों को जन-निकाय द्वारा परिचय-पत्र जारी किए जाएँगे।

नियम 3 : जो सदस्य बीमारी अथवा किसी अन्य कारण से राष्ट्रीय-सभा के अधिवेशनो मे उपस्थित होने मे असमर्थ होगे वे अपनी ओर से किसी अन्य व्यक्ति को नही भेज सकेंगे। अपनी अनुपस्थिति की सूचना अध्यक्ष को लिखित रूप मे दी जानी चाहिए।

नियम 4 : भूटान विधि-ग्रन्थ ए (12) अध्याय द्वितीय के अनुसार निम्नलिखित प्रकार के व्यक्ति राष्ट्रीय सभा की सदस्यता के लिए पात्र नही माने जाएँगे :

(1) वह व्यक्ति जो कि भूटानी नागरिक नही है।

(2) वह व्यक्ति जिसकी आयु 25 वर्ष से कम है।

(3) वह व्यक्ति जो कि मानसिक रूप से निर्योग्य (Mentally Disabled) है।

(4) दोषसिद्ध व्यक्ति (A Convict)।

(5) वह व्यक्ति जो कि कारागार की सजा भुगत चुका है।

नियम 5 : एक सदस्य अपने पद पर तीन वर्ष तक बना रहेगा; लेकिन

यदि सदस्य को बदलना आवश्यक हो जाए तो अध्यक्ष को आवेदन-पत्र दिया जाना चाहिए।

नियम 6 : यदि कोई सदस्य के रूप में काम करने के अयोग्य पाया जाए तो राष्ट्रीय-सभा उसे पदच्युत करने के पक्ष में निर्णय ले सकती है।

नियम 7 : राष्ट्रीय सभा की सदस्य संख्या हर पाँच साल में एक बार स्वयं राष्ट्रीय सभा निर्धारित करेगी। जो संख्या निश्चित की जाएगी, वह स्थिर होगी, उसे कम ज्यादा नही किया जाएगा।

नियम 8 : प्रति तीन वर्ष के बाद राष्ट्रीय सभा अपने अध्यक्ष का निर्वाचन करेगी। यदि अध्यक्ष रुग्णता अथवा किसी अन्य कारण से उपस्थित होने में असमर्थ हो तो ऐसी स्थिति मे राष्ट्रीय सभा के पास दूसरे अध्यक्ष को निर्वाचित करने का अधिकार सुरक्षित रहेगा।

नियम 9 : अध्यक्ष को सभा भवन में उचित व्यवस्था बनाए रखने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। कोई भी सदस्य उसके विरुद्ध आपत्ति नहीं कर सकेगा।

नियम 10 : अध्यक्ष द्वारा राष्ट्रीय-सभा के अधिवेशनो की तिथि निर्धारित की जाएगी। वर्ष में दो अधिवेशन होंगे। किन्तु संकटकाल और असाधारण परिस्थितियों में महागरिमामय नरेश के राजसी आदेश पर अध्यक्ष द्वारा किसी भी समय बैठक बुलाई जा सकती है।

नियम 11 : प्रत्येक सदस्य को यह अधिकार और विशेषाधिकार प्राप्त होगा कि वह राष्ट्रीय-सभा में अपने विचारों को व्यक्त कर सके। कोई भी नियम अथवा कानून सदस्य के अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य मे हस्तक्षेप नहीं कर सकेगा।

नियम 12 : राष्ट्रीय-सभा में प्रत्येक सदस्य की समान स्थिति होगी और सभी सदस्य किसी भी विषय पर तब तक बहस कर सकेंगे जब तक कि वे किसी उपयुक्त निर्णय पर नही पहुँच जाते।

नियम 13 : किसी भी सदस्य द्वारा सभा-भवन में कोई भी इस तरह की प्रकृति का विषय नही उठाया जा सकेगा जो कि उसके निजी स्वार्थों या रिश्तेदारों के स्वार्थों की पूर्ति करने की इच्छा से प्रेरित हो। ऐसे मामलों पर बहस करने की इजाजत नही दी जाएगी।

नियम 14 : सदस्यगण राष्ट्रीय-सभा द्वारा लिए गए किसी निर्णय का न तो खण्डन कर सकते हैं और न ही उस निर्णय से वैयक्तिक लाभ उठा सकते हैं। यदि कोई सदस्य निर्णय मे दोष खोजने की कोशिश करेगा, झगड़ा शुरू

करेंगे अथवा मामले को न्यायालय में घसीटेंगे तो उसे दोषसिद्ध अपराधी घोषित कर न केवल सदस्यता से बल्कि समाज और अन्ततोगत्वा देश से भी निष्कासित कर दिया जाएगा।

नियम 15 : यदि कोई सदस्य ऐसा प्रश्न उठाना चाहता है जिसका सम्बन्ध किसी विशेष व्यक्ति के कल्याण से तो है, किन्तु उसका सम्बन्ध राष्ट्रीय सभा के किसी सदस्य के कल्याण से नहीं है तो वह सदस्य सभा में आ सकता है और अध्यक्ष को इस सम्बन्ध में प्रार्थना-पत्र दे सकता है। यदि अध्यक्ष चाहे तो उस पर विचार करने के बारे में अपनी स्वीकृति प्रदान कर सकता है।

नियम 16 : किसी भी सदस्य द्वारा बाहरी व्यक्ति के समक्ष सभा-सदन में हुए गोपनीय विचार विमर्श को प्रकट नहीं किया जायेगा।

नियम 17 : राष्ट्रीय-सभा की बैठकों की समस्त कार्यवाही (Proceedings) चाहे वह विस्तृत हो अथवा संक्षिप्त एवं मामूली, दो तिहाई बहुमत से पारित की जाएगी।

नियम 18 : राष्ट्रीय-सभा के समस्त निर्णय स्वयं राष्ट्रीय-सभा अथवा राजा द्वारा बदले जा सकते हैं। इन निर्णयों को किसी अन्य द्वारा संशोधित नहीं किया जा सकता।

भारत-भूटान सन्धि, 1949

एक ओर से तो भारत-सरकार तथा दूसरी ओर से महामान्य ड्रुक ग्याल्पो की सरकार दोनों ही पक्ष इस इच्छा से प्रेरित होकर कि भारत में ब्रिटिश-प्राधिकार की समाप्ति से जो स्थिति पैदा हुई है उसे मित्रतापूर्ण वास्तविक और टिकाऊ आधार पर विनियमित किया जाए एवं साथ ही अपनी अपनी जनता के कल्याण हेतु बेहद जरूरी मैत्री-सम्बन्धों और पड़ोस-धर्म के सम्बन्धों को प्रोत्साहित और विकसित किया जाए निम्नलिखित सन्धि करने को कृतसंकल्प है और इसी उद्देश्य से उन्होने अपने-अपने प्रतिनिधि नामित किये हैं, अर्थात् भारत-सरकार का प्रतिनिधित्व श्री हरिश्वर दयाल करेंगे जिन्हें कि भारत-सरकार की ओर से कथित सन्धि पर सहमत होने के पूर्ण अधिकार दिये गए हैं तथा भूटान-नरेश ड्रुक ग्याल्पो की सरकार का प्रतिनिधित्व श्री देब जिम्पोन सोनम तोब्गी दोर्जी, यांग-लोप सोनम, छो-जिम-थोण्डुप, रिनज़िंग टाण्डिन, हा-ड्रुंग जिग्मी एवं पाल्देन दोर्जी करेंगे जिन्हें कि भूटान सरकार की ओर से उस पर सहमत होने के पूर्ण अधिकार प्रदान किये गए हैं—

अनुच्छेद 1—भारत सरकार और भूटान सरकार के मध्य चिरस्थायी शान्ति और मित्रता रहेगी।

(पुनाखा संधि 1910-Article 2)

अनुच्छेद 2—भारत सरकार यह वचन देती है कि भूटान के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगी। अपनी ओर से भूटान सरकार भी यह स्वीकार करती है कि वह अपने विदेश कार्य के संचालन में भारत सरकार के परामर्श से मार्गदर्शन ग्रहण करेगी।

अनुच्छेद 3—सिन्चुला सन्धि के अनुच्छेद 4 के अन्तर्गत भूटान सरकार के लिए स्वीकृत मुआवजा तथा उसमे 8 जनवरी, 1910 की सन्धि द्वारा की गई वृद्धि एवं 1942 में स्वीकृत की गई एक लाख रुपयों के बराबर की वार्षिक आर्थिक-सहायता (Subsidy) के स्थान पर भारत सरकार भूटान सरकार को प्रतिवर्ष 5 लाख रुपया देना मन्जूर करती है। इसके अतिरिक्त एतद द्वारा यह भी स्वीकार करती है कि उक्त वार्षिक भुगतान हर साल 10 जनवरी को किया जाएगा। यह भुगतान तब तक जारी रहेगा जब तक सन्धि लागू रहेगी तथा इसकी शर्तों का यथोचित अनुपालन होता रहेगा।

अनुच्छेद 4—इसके अतिरिक्त कथित सरकारों के बीच की वर्तमान अविच्छिन्न मित्रता को व्यक्त और चिह्नित करने के लिए भारत सरकार इस

सन्धि पर हस्ताक्षर होने के एक वर्ष के भीतर भूटान सरकार को देवगिरि नाम के प्रसिद्ध क्षेत्र में लगभग 32 वर्गमील भू-भाग हस्तान्तरित कर देगी। भूटान सरकार को इस प्रकार से लौटाये जाने वाले क्षेत्र का सीमांकन करने के लिए भारत सरकार एक सक्षम अधिकारी अथवा अधिकारियों की नियुक्ति करेगी।

अनुच्छेद 5—भारत सरकार और भूटान सरकार के प्रदेशों के बीच पहले के समान ही मुक्त व्यापार और वाणिज्य होता रहेगा। भारत सरकार इसके प्रति भी सहमत है कि वह भूटान सरकार को अपनी उपज के लिए, भू अथवा जलमार्गों द्वारा सारे भारतीय भू भाग में परिवहन की हरेक सुविधा प्रदान करेगी, जिनमें ऐसे वन-मार्गों का उपयोग भी शामिल है जिनको समय-समय पर किये गए समझौतों द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाएगा।

अनुच्छेद 6—भारत सरकार इसके लिए भी सहमत है कि भूटान सरकार, भारत सरकार के सहयोग और अनुमोदन से अपने लिए जो भी शस्त्र, गोला-बारूद मशीनरी, युद्ध-सामग्री और युद्ध-भण्डार जरूरी होगा अथवा जो भूटान की मजबूती और कल्याण के लिए वांछित होगा, उसका भारत से अथवा भारत में से होकर आयात करने को स्वतन्त्र होगी और यह व्यवस्था तब तक लागू रहेगी जब तक भारत सरकार को यह सतोष अनुभव होता रहेगा कि भूटान सरकार के इरादे मैत्रीपूर्ण हैं और इस तरह के आयात से भारत को कोई खतरा नहीं है। दूसरी ओर भूटान सरकार यह वचन देती है कि इस प्रकार के शस्त्रों, गोला-बारूद इत्यादि का न तो भूटान सरकार द्वारा और न ही निजी व्यक्तियों द्वारा भूटान की सीमा के पार निर्यात किया जाएगा।

अनुच्छेद 7—भारत और भूटान की सरकार इस बात के लिए सहमत है कि भारतीय भू-भाग मे निवास कर रहे भूटानी नागरिको को भारतीय नागरिकों के समान ही न्याय सुलभ होगा और इसी प्रकार से भूटान मे रहने वाले भारतीय नागरिकों को भूटान सरकार के नागरिकों के समान ही न्याय प्राप्त होगा।

अनुच्छेद 8—भूटान सरकार द्वारा लिखित में विधिवत माग किये जाने पर भारत सरकार भारतीय प्रत्यर्पण अधिनियम, 1903 (जिसकी एक प्रति भूटान सरकार को सुलभ कराई जाएगी) के उपबन्धो के अनुसार उन समस्त भूटानी नागरिको के अभ्यर्पण की कार्यवाही करेगी जिन पर कथित अधिनियम की प्रथम अनुसूची में विनिर्दिष्ट किसी अपराध का अभियोग लगाया गया हो तथा जिनके द्वारा भारतीय भू-भाग मे शरण ली गई हो।

(2) भारत सरकार द्वारा विधिवत अधिग्रहण (Requisition) किये जाने पर अथवा भारत सरकार की ओर से प्राधिकृत किसी भी अधिकारी द्वारा माँग किये जाने पर भूटान-सरकार उन भारतीय नागरिकों या उन विदेशी-शक्तियों के नागरिकों का अभ्यर्पण करेगी जिनका प्रत्यर्पण भारत सरकार द्वारा कथित विदेशी शक्ति के साथ किये गए समझौते अथवा प्रबन्ध के अनुशीलन में आवश्यक होगा तथा जिन पर कि1903 के 15वें अधिनियम की प्रथम अनुसूची में विनिर्दिष्ट किसी अपराध का अभियोग लगाया गया है और भूटान सरकार के क्षेत्राधिकार के अधीन प्रदेश मे शरण ली है, और इसके अतिरिक्त भूटान सरकार उन भूटानी नागरिकों का भी अभ्यर्पण करेगी जो भारतीय भूमि पर कोई सा भी उल्लिखित जुर्म करने के उपरान्त भूटान में भाग जाएँगे बशर्ते कि उनके जुर्म के सम्बन्ध में ऐसा साक्ष्य प्रस्तुत किया जाए जो कि उस स्थानीय न्यायालय को सन्तुष्ट कर सके जिसमें कि सम्भवतः अपराध किया गया था।

अनुच्छेद 9—इस सन्धि को लागू करने और निर्वाचन के विषय मे जो भी मतभेद या विवाद पैदा होंगे वे सर्वप्रथम बातचीत द्वारा सुलझाए जाएँगे। यदि बातचीत आरम्भ होने के तीन माह के भीतर कोई समझौता नही हो सकेगा तो मामले को तीन विवाचको के हाथों मे विवाचन हेतु सौंपा जाएगा। ये विवाचक भारत या भूटान के राष्ट्रिय होंगे और उन्हे निम्नानुसार चुना जाएगा—

(1) एक व्यक्ति का मनोनयन भारत-सरकार द्वारा होगा।

(2) एक व्यक्ति भूटान सरकार द्वारा मनोनीत होगा।

(3) भारत के संघीय न्यायालय या उच्च-न्यायालय का एक न्यायाधीश जो कि भूटान सरकार द्वारा चुना जाएगा, इस अधिकरण (Tribunal) का अध्यक्ष होगा।

इस अधिकरण द्वारा दिया गया निर्णय अन्तिम होगा तथा दोनो पक्षों द्वारा उस निर्णय को अविलम्ब अमल में लाया जाएगा।

अनुच्छेद 10—यह सन्धि चिरकाल तक लागू रहेगी जब तक इसे परस्पर सहमति द्वारा संशोधित अथवा समाप्त न कर दिया जाए।

इस सन्धि की दो प्रतियाँ आज 8 अगस्त, 1949 को तद्नुसार भूटानी-वर्ष पृथ्वी-वृषभ (Earth-Bull) के छठे माह की 15 तारीख को दार्जिलिंग मे तैयार की गई।

हरिश्वर दयाल
सिक्किम स्थित
राजनीतिक अधिकारी
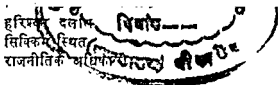
देब जिम्पोन सोनम
तोब्गी दोर्जी
यांग-लोप सोनम
छो जिम थोण्डुप
रिनजिम टाण्डिन
हा-ड्रंग जिम्पी
पाल्देन दोर्जी

अनुसमर्थन लेखपत्र
(Instruments of Ratification)

8 अगस्त, 1949 को मित्रता और प्रतिवेशी-धर्म (Neighbourliness) के सम्बन्धों का पोषण करने एवं उन सम्बन्धों को प्रोत्साहन देने से सम्बन्धित, जिस सन्धि पर दार्जिलिंग में भारत सरकार और परम महामान्य भूटान के महाराजा ड्रुक ग्याल्पो की सरकार के प्रतिनिधियों द्वारा हस्ताक्षर किये गए थे, वह सन्धि शब्दश निम्नानुसार है—

भारत सरकार पूर्वोक्त सन्धि पर विचार कर उसकी पुष्टि और उसका अनुसमर्थन करती है और उसमें अन्तर्विष्ट सभी अनुबन्धों को निष्ठापूर्वक पूरा करने और कार्यान्वित करने का वचन देती है।

जिसकी साक्षी के तौर पर यह अनुसमर्थन-लेखापत्र भारत के गवर्नर जनरल द्वारा हस्ताक्षरित और मुद्रांकित किया जाता है।

22 सितम्बर, 1949 को नई दिल्ली में यह विधि सम्पन्न हुई।

सी. राजगोपालाचार्य
भारत के गवर्नर जनरल

8 अगस्त 1949 को मित्रता और प्रतिवेशी-धर्म के सम्बन्धों का पोषण करने और उन सम्बन्धों को प्रोत्साहन देने से सम्बन्धित जिस सन्धि पर दार्जिलिंग में मेरी सरकार और भारत सरकार के प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर किये थे, वह सन्धि शब्दश: निम्नानुसार है—

मेरी सरकार ने पूर्वोक्त सन्धि पर विचार किया एवं वह एतद्द्वारा उस सन्धि की पुष्टि और उसका अनुसमर्थन करती है और उसके अन्तर्विष्ट सभी अनुबन्धों को पूरा करने और कार्यान्वित करने का वचन देती है।

जिसकी साक्षी के तौर पर मैंने इस अनुसमर्थन-लेखापत्र पर हस्ताक्षर किए हैं तथा इस पर मेरी मुद्रा अंकित है।

यह विधि 15 सितम्बर, 1949 को टोंग्सा में सम्पन्न हुई।

जे. वांग्चुक
ड्रुक ग्याल्पो

ग्रन्थ—सूची

1. 'भूटान एण्ड सिक्किम' भारत की सूचना-सेवा, राजनीतिक-कार्यालय, गंगटोक, सिक्किम द्वारा प्रकाशित (1967)।
2. कोएलो वी०एच०, सिक्किम एण्ड भूटान, सांस्कृतिक सम्बन्धों की भारतीय परिषद् द्वारा प्रकाशित (1967)।
3. ईडन एश्ले, 'रिपोर्ट ऑन दि स्टेट ऑफ भूटान' (1865)।
4. "फोरेन पोलिसी ऑफ इण्डिया, टेक्स्ट् ऑफ डोकुमेंट्स (1947-1959)" द्वितीय संस्करण, लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली।
5. जवाहरलाल नेहरू, इण्डियाज फोरेन पोलिसी, सिलेक्टेड स्पीचेज, सितम्बर, 1948 से अप्रैल 1961 तक, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
6. करन प्रद्युम्न पी०, एण्ड जेंकिन्स, विलियम एम० जूनियर, "दि हिमालियन किंगडम्स : भूटान, सिक्किम एण्ड नेपाल" केन्टुकी विश्वविद्यालय प्रेस, लेक्सिगटन (1967)।
7. करन, प्रद्युम्न पी०, "भूटान-ए फिजिकल ऐण्ड कल्चरल ज्योग्राफी", केन्टुकी विश्वविद्यालय प्रेस, लेक्सिगटन (1947)।
8. 'कुएन्सल' भूटान की शाही सरकार का अधिकृत साप्ताहिक बुलेटिन ग्रन्थ 6. अंडक 12, 14 नवम्बर (1971 से 1988 तक)।
9. भारत और चीन सरकार के मध्य हुए पत्रों और ज्ञापनों का आदान-प्रदान सितम्बर-नवम्बर 1959-वाइट पेपर संख्या 2, विदेश मंत्रालय(1959)।
10. लोकसभा डिबेट्स, 1960(66); कोल. 2711।
11. प्राइम मिनिस्टर ऑन साइनो इण्डियन रिलेशन्स ग्रन्थ 1, 'इन पार्लियामेंट' विदेश प्रचार डिवीजन, विदेश मंत्रालय, भारत सरकार।
12. राहुल, राम, दि हिमालयन बोर्डर लैंड, विकास पब्लिकेशन्स (196४)।
13. सर बेनेगल राव, "इण्डियाज कॉन्स्टिट्यूशन इन दि मेकिंग" (1960)।
14. रेनी डेविडफील्ड, भूटान ऐण्ड दि स्टोरी ऑफ दि दोअर वार" एल्बमार्कल स्ट्रीट लन्दन 1866 में सर्वप्रथम जॉन मुरे द्वारा प्रकाशित, बिबलिओथेका हिमालयिका द्वारा पुनर्मुद्रित, (सन् 1970)।
15. रोनाल्डशे, अर्ल ऑफ, "लैंड्ज ऑफ दि थण्डर वोल्ट" (1923)।
16. सैण्डबर्ग जी०, "भूटान-दि अननोन इण्डियन स्टेट" (1897)।
17. डॉ०एस०एन०सेन, 'प्राचीन बंगला पत्रिका संकलन' 1942 (कलकत्ता)।

18. *मनजीतसिंह 'हिमालयन आर्ट',यूनेस्को आर्ट्स बुक्स, न्यूयॉर्क ग्राफिक* सोसाइटी लिमिटेड द्वारा सन् 1868 में प्रकाशित।
19. ट्रेवेलियन जी० एम० ब्रिटिश हिस्टरी इन दि नाइन्टीन्थ सेन्चुरी (1782–190.)।
20. ट्रेवेलियन जी० एम०, "हिस्टरी ऑफ इंग्लैंड" (1934)।
21. "शोगदू-दि नेशनल असेम्बली ऑफ भूटान", भारत की सूचना-सेवा द्वारा प्रकाशित राजनीतिक कार्यालय, गंगटोक सिक्किम (1969)।
22. कप्तान सेमुअल टर्नर, "एकाउण्ट ऑफ एन एम्बेसी टु दि कोर्ट ऑफ दि तेशु लामा इन टिबेट" (1800)।
23. यू०एन०डोक०ए/पी वी./1934 ऑफ 21 9. 71.
24. यू०एन०डोक०आर.इ.एस/2751 (xxvi) ऑफ 24.9.71.
25. यू०एन०डोक०एस०/10109 ऑफ 9.2.71.
26. यू०एन०डोक०एस/पी.वी. 1566 ऑफ 10.2.71.
27. व्हाइट जॉन क्लॉडे, "सिक्किम एण्ड भूटान" भारत कार्यालय के प्रकाशक एडवर्ड अर्नोल्ड द्वारा प्रकाशित (1909)।

□□

लेखक के बारे में

डॉ० आर. सी. मिश्रा—एम.ए (अंग्रेजी) करने के बाद डॉ. मिश्रा ने 8 वर्ष विभिन्न संस्थाओं में आंग्ल भाषा का अध्यापन किया। तत्पश्चात राजनीति विज्ञान में एम.ए. किया और उसी में डॉक्टरेट की डिग्री हासिल की। इस समय डॉ. मिश्रा दक्षिण एशिया अध्ययन केन्द्र में कार्यरत हैं। आप शोध कार्य के लिए, राजस्थान विश्वविद्यालय की ओर से दो बार भूटान व सिक्किम रह आये हैं। डॉ. मिश्रा की पी.एच.डी. की डिग्री भी भूटान के विषय पर प्रदान की गई। आपकी विशेषज्ञता पर्वतीय राज्यों (नेपाल, भूटान, सिक्किम, तिब्बत) पर है और उसका गहन अध्ययन निरन्तर करते रहना है।

आपकी एक शोध पुस्तक 'सिक्किम' पर प्रकाशित हो चुकी है। इसके अतिरिक्त डॉ. मिश्रा के लगभग 20 शोधपत्र महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं में छप चुके हैं। आप राष्ट्रीय स्तर की 'सैमीनार' में कई स्थानों पर शोध पत्र प्रस्तुत कर चुके हैं। हाल ही में डॉ. मिश्रा ने एक शोध प्रबन्ध 'भूटान-चीन सम्बन्ध' को पूर्ण किया है और आजकल 'भूटान का संविधानिक विकास' पर गहन कार्य कर रहे हैं। डॉ. मिश्रा, 'साउथ एशियन रिपोर्टर' पत्रिका के सम्पादक भी हैं।

डॉ. मिश्रा के निर्देशन में दो छात्र भूटान के विभिन्न विषयों पर एम. फिल-डिग्री हेतु लघु-शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत कर चुके हैं।

●●